

ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से संबद्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख



संकलयिता—
युधिष्ठिर मीमांसक



अभिलेख-सूची

मूल्य ८-००

मुद्रक—
शान्तिस्वरूप कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस,
बहालगढ़ (सोनीपत)

073805



ऋ ... म्बद्ध





ऋषि दयानन्द और आर्य-समाज से सम्बद्ध

महत्त्व-पूर्ण अभिलेख





ऋषि दयानन्द और आर्य-समाज से सम्बद्ध महत्त्व-पूर्ण अभिलेख

ऋषि दयानन्द के नये उपलब्ध दो पत्र

गत मई मास (सन् १९८१) में 'पूना विद्यापीठ' के तत्त्वाधान में 'पाणिनि पर हुई विश्व विद्वद्गोष्ठी' (इण्टर नेशनल सेमिनार ओन पाणिनि) में भाग लेकर बम्बई गया था, उस समय आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई के वेदोपदेशक श्री पं० दयाशंकर जी ने मुझ से कहा था कि बम्बई में एक व्यक्ति के पास ऋषि दयानन्द के दो मूल पत्र हैं, मैं उन्हें प्राप्त करने का यत्न कर रहा हूं। सौभाग्य से दिसम्बर (१९८१) के आरम्भ में बम्बई जाने से पूर्व ही बहुत परिश्रम करके श्री पं० दयाशंकर जी ने उन पत्रों की फोटोस्टेट (झेरोक्स) कापी प्राप्त कर ली थी। उन्होंने मङ्गलवार ८ दिसम्बर १९८१ को उन दोनों पत्रों की फोटोस्टेट कापी मुझे प्रदान की। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये पं० दयाशंकर जी सम्पूर्ण आर्यजगत् के धन्यवाद के पात्र हैं।

प्रथम पत्र सं० १९३९ पौष सुदि १० बुधवार (=१४ जनवरी १८८३) का है। पत्र में 'कहां से लिखा गया' इस का निर्देश नहीं है, तथापि इस समय ऋ० द० उदयपुर में विराजमान थे। अतः यह पत्र उदयपुर से लिखा गया है। पत्र के मध्य भाग से भी इस की पुष्टि होती है। यह पत्र पं० गौरीशंकर को लिखा गया है। पं० गौरीशंकर का उल्लेख ऋ० द० के अन्य पत्रों में भी उपलब्ध होता है (द्र०—ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, संस्करण ३, भाग २, पृष्ठ ७७२, ७७३, ७७४)। इस पत्र के अन्त में तथा द्वितीय पत्र के आद्यन्त में ऋ० द० के पत्र से बहिर्भूत कुछ पंक्तियां विद्यमान हैं, जिन में मूल पत्र देखने का निर्देश है (हम इन्हें नीचे टिप्पणी में दे रहे हैं). उनके अन्त में **गौरीशंकर शर्मा** के हस्ताक्षर हैं। यह गौरीशंकर शर्मा पत्र में उल्लिखित पं० गौरीशंकर से भिन्न व्यक्ति है।

दूसरा पत्र सं० १९,९ चैत्र बदि १४, गुरुवार (=५ अप्रल १८८३) का है। इस में रामगढ़ (सीकर—जयपुर राज्य) के निवासी महात्मा कालूराम जी शर्मा को लिखे ऋ० द० के कुछ उपदेशों का उल्लेख है। प्रतीत होता है यह पत्र महात्मा कालूरामजी के किसी पत्र के उत्तर में लिखा गया है।

विशेष—प्रथम पत्र की तिथि 'पौष सुदि १० बुधवार' अङ्कित है। परन्तु बुधवार को हमारे पास विद्यमान दक्षिण भारतीय पत्रानुसार ९ नवमी थी। इसी पक्ष की ३-४ के सम्मिलित होने से उक्त भेद उपपन्न हो सकता है। इसी प्रकार द्वितीय पत्र में 'चैत्र वदि १४ गुरुवार' लिखा है परन्तु हमारे पत्रानुसार गुरुवार को १३ त्रयोदशी थी। इस पक्ष में भी ९-१० सम्मिलित है। अतः यह भेद भी न गण्य है। दोनों पत्र इस प्रकार हैं—

संख्या १॥[1] ओ३म्

पंडित गौरीशंकर जी आनन्दित रहो ॥[2]

पत्र आया समाचार जाना। जो तुमने लिखा सो ठीक है। कायस्थ और कारीगर लोग जो मंत्रोपदेश चाहते हों उनको (विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव) इस मन्त्र का उपदेश कर दिया करें। वेदों का अधिकार सब को है और जो उच्चारण करने में असमर्थ हों उनके लिये (नमः परमेश्वराय) इतना ही उपदेश कर देना॥

पहले से हम को यह सन्देह था कि जितनी राजनीति वेदशास्त्रों के अनुकूल हम जानते हैं सो कदाचित् शरीर के साथ ही न जावे। सो इसका जानना अब सफल हुआ और हमारा चित्त भी संतुष्ट हुवा। यहां श्री दरबार महाराणा जी सब राजनीति को पढ़ते सुनते और आचरण भी यथोचित करते हैं॥

तुम्हारे समाज का······[3] उन्नति सुनकर बड़ा आनन्द हुवा। शेष समाचार लिखने योग्य लिखा जावेगा। सब से हमारा आशीर्वाद कह देना॥

मिति पोष शुदि १० बुधवार॥

संवत् १९३९

(दयानन्द सरस्वती)[4]

---

१. यह संख्या पीछे से लिखी गई प्रतीत होती है क्योंकि कई मास पश्चात् लिखे गये अगले पत्र पर २ संख्या दी गई है।

२. इस पत्र की मूल प्रति पं० गौरीशंकर के पौत्र श्री सुधाकर दीक्षित के दामाद श्री जितेन्द्र जी आर्य, फोटो ग्राफर 'टाइम्स आफ इण्डियां' बम्बई के पास है।

३. यहां एक शब्द बहुत अस्पष्ट होने से पढ़ा नहीं गया।

४. इस के नीचे पत्र पर निम्न पङ्क्तियां लिखी मिलती हैं—

पूर्वोक्त पत्र श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज के हस्ताक्षरांकित पंडित गौरीशंकर निवासस्थान सूर्यपुर परगना बागपत जिला मेरठ के पास देखा है॥

गौरीशंकर शर्मा॥

ओ३म्[1]

उपदेश ।।[2]

१ सब मन्त्रों के पूर्व ओ३म्कार का प्रयोग करना ।।

२ त्रिवर्ण को तत्सवितुः० गायत्री मंत्र द्विजों कि स्त्रियो को (विश्वानि देव०) मन्त्र शूद्र और उनकी स्त्रियों को (विश्वानि देव०) मन्त्र और ईसाई मुसलमान आदि को भी विश्वानि देव० मन्त्र अन्त्यजादिको [3]परमात्मानमिति मंत्र ॥

३ नमस्ते शब्द सब आपस में बोलें । छोटा प्रथम बोले बड़ा पीछे बोले ।।

४ जो कोई ब्राह्मण हो उसको संन्यास देकर नाम के अन्त में सरस्वती शब्द होना चाहिये और क्षत्रिय वैश्य को आनन्द शब्दांत जैसे अच्युतानन्द और शूद्र को दास जैसे अच्युतदास ।।[4]

५ अंत्यज[5] सब स्वजाति के उपदेशक और अध्यापक हों ।।

६ वर्ण व्यवस्था गुण कर्म से होनी चाहिये धर्मव्यवहार में ।।

७ कोई पूछे तुम कौन ? सादर हो कहे कि (वेदानुयायी) तुम्हारा मत क्या ? तो कहे (वेदोक्त) तुम्हारा धर्म्म क्या ? (पक्षपातरहित न्यायाचरण सत्य है)

८ भगवां वस्त्र सब को[6] होना चाहिये ।।

९ (प्रायश्चित्त) जिस समय कोई मतमतांतरस्थ पुरुष वेदमत ग्रहण करना

---

१. इस पत्र के ऊपर निम्न लिखित पंक्तियां लिखी हैं—

पण्डित कालूराम जी महाराज निवास स्थान रामगढ़ जिला सीकर इलाके जयपुर को श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने नि[ज ह]स्त द्वारा निम्न लिखित उपदेश किया ।

२. इस पत्र की मूल प्रति पूर्व निर्दिष्ट श्री जितेन्द्र जी के पास है।

३. मूल पत्र में यहां पर चिह्न देकर नीचे निम्न पाठ अन्य के हस्ताक्षर से लिखा गया है—

ओं सर्वात्मानमंतर्यामिनं कृपामृतसागरं परमात्मानमहं शरणं प्रपद्ये ।।

४. यह ऋषि दयानन्द का स्वमत नहीं है । यतः महात्मा कालूराम जी के भक्त सभी वर्णों के थे । वे सभी को 'साधु' की दीक्षा देते थे । अतः उनकी दृष्टि से यह उपदेश लिखा गया प्रतीत होता है ।

५. 'अन्त्यज' यह शब्द किस अभिप्राय से लिखा है, हमारी समझ में नहीं आया ।

६. 'सब को' अर्थात् सब प्रकार के संन्यासी को ।

चाहे तभी पवित्र होगा ।। परन्तु पुनः वोह वेदमत छाड़ वेदविरुद्ध मत ग्रहण कभी न करे उसके लिये यही प्रायश्चित्त है ।।

१० सब लोग आचरण सत्यभाषणादि धर्मयुक्त ब्रह्मचारी रहैं और विद्या की उन्नति करैं ।।

मिति चैत्र बदि १४ गुरुवार सं० १९३९ (दयानन्द सरस्वती)[१]

विशेष—प्रथम पत्र के अन्त में तथा द्वितीय पत्र के आद्यन्त में लिखित पाठ(जो टिप्पणी में छापा है)से प्रतीत होता है कि जिन पत्रों की हमें फोटोस्टेट कापी प्राप्त हुई है वे मूल पत्रों की प्रतिलिपियां हैं । अन्यथा गौरीशंकर शर्मा द्वारा उन का सत्यापित(तस्दीक)करना उपपन्न नहीं होता । द्वितीय पत्र के अन्त में सत्यापन पाठ के अन्त में सीवनारायण और समर्थदान के दस्ताक्षर भी हमारे अनुमान में सहायक हैं । आश्चर्य की बात है कि इन पत्रों का लेख ऋ०द० के लेख से अद्भुत साम्य रखता है ।

एक अन्य अमुद्रित पत्र

[सम्पादक थियोसोफिस्ट][१]

[२]जब अजमेर में सभा हुई थी तो मैंने पादरी साहब को कहा था कि अगले दिन सभा में आओ और शास्त्रार्थ करो, परन्तु उन्होंने आना स्वीकार नहीं किया इसलिये अब हम उनके साथ शास्त्रार्थ करना उचित नहीं समझते । हां यदि कोई शिक्षित विशप इस प्रकार का शास्त्रार्थ आप के समाचार पत्र के द्वारा करने के लिये उद्यत हो तो हम निस्सन्देह शास्त्रार्थ करेंगे ।

बनारस, १० फरवरी सन् १८८० (स्वामी दयानन्द सरस्वती)

---

१. इसके आगे निम्न पङ्क्तियां लिखी हुई हैं —

पूर्वोक्त पत्र श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के हस्ताक्षरांकित पंडित कालूराम जी निवास स्थान सेठों का रामगढ़ जिला सीकर इलाके जयपुर के पास हमने अपने नेत्र से देखा है ।। गौरीशंकर शर्मा

ह० सीवनारायण मन्तरी वैदिक धर्म सभा रामगढ़

ह० समर्थदान, रामगढ़ माघ सुदी ९ सं० १९ (आगे संख्या त्रुटित है)

१. थियोसोफिस्ट पत्रिका खण्ड १, संख्या ६, मार्च सन् १८८०, पृष्ठ १४१ पर सम्पादक के नाम अजमेर के पादरी 'ग्रे' ने लिखा था—"यदि स्वामी जी उचित समझें तो आपके समाचार पत्र में अपने आक्षेपों का जिनका उत्तर सुनने के लिये वह अजमेर नहीं ठहरे-छपवा दिया करें और मेरे उत्तर के लिये इतना स्थान समाचार पत्र में दें तो मैं उस शास्त्रार्थ को जो अजमेर में अपूर्ण रह गया था प्रकाशित करूं ।" (हस्ताक्षर) ग्रे । २७ जनवरी सन् १८८० । (द्र० पं० लेखरामकृत जीवनचरित हिन्दी संस्क० पृष्ठ ७४५) ।

२. यह पत्र ऋ० द० ने थियोसोफिस्ट में छपे पादरी ग्रे के पत्र के उत्तर में लिखा था । द्र० पं० लेखराम कृत जीवनचरित, हिन्दी संस्क० पृष्ठ ७४५।।

आर्यसमाज-स्थापना की स्वीकृति देते हुए

ऋषि दयानन्द द्वारा प्रकटित भावी प्रबल आशङ्का

ऋषि दयानन्द अत्यन्त दीर्घद्रष्टा थे। इस विषय के अनेक प्रमाण ऋषि दयानन्द के पत्रों में उपलब्ध होते हैं। हमारी दृष्टि में निम्न तीन विषयों की ओर आर्यों का ध्यान आकृष्ट करना प्रमुख है--

१--अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भिक दिनों में जब मिडिल पास को भी सरकारी नौकरी सुगमता से मिल जाती थी, उस समय यह लिखना कि-'बहुत से पढ़े लिखे लोगों को नौकरी नहीं मिलती········। ऐसी अवस्था देखकर मैं एक कला कौशल के स्कूल की आवश्यकता विचारता हूँ'। (द्र० ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, संस्क० ३, भाग १, पृष्ठ ४५०)।

२--आज से सौ वर्ष पूर्व जब भारतीय घरों में अंग्रेजी भाषा का व्यवहार नव ईसाइमत दीक्षित भारतीयों तथा उंगलियों पर गिनने योग्य अन्य भारतीयों में मातृभाषा के रूप में होता था, उस समय इस दृश्य को देखकर ऋषि दयानन्द का हृदय भावी आशङ्का से कम्पायमान हो गया। वे २३ मई १८८१ के पत्र में लिखते हैं--'संस्कृतरूपी मातृभाषा की जगह अंग्रेजी लोगों की मातृभाषा हो चली है' (ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, संस्क० ३, भाग २, पृष्ठ ५०१)।

यदि आज ऋषि दयानन्द होते और भारतीय जनों के घरों में अंग्रेजी भाषा को मातृभाषा के रूप में व्यवहृत देखते तो उन्हें कितना मनस्ताप एवं खेद होता, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

३-- ऋषि ने सन् १८७५ में प्रथम आर्यसमाज (बम्बई) की स्थापना की स्वीकृति देते समय अपने नाम से मतवाद की जो प्रबल आशंका व्यक्त की थी, उसे हम ऋषि दयानन्द की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चेतावनी मानकर 'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' पुस्तक से नीचे उद्धृत करते है और ऋषि दयानन्द के सभी अनुयायियों से विनम्र प्रार्थना करते हैं कि वे इस पर गम्भीरता से विचार करें और देखें कि क्या सम्प्रति ऋषि दयानन्द की आशंका वास्तविकता का रूप धारण करके आर्यसमाज मतवाद की ओर तो नहीं बढ़ रहा है?

'मुम्बई आर्यसमाज नो इतिहास' पृष्ठ ८-९ से

'-- --···त्यार वाद (शास्त्रार्थ में जीवनजी के पराभव के पश्चात्) एमना निवास स्थान मा एमने माटे मान धरावता मुम्बई ना सम्भावित गृहस्थो ए जाई ने धार्मिक चर्चा करता करता मुम्बई मां आर्यसमाजस्थापन करवानी स्वामीजी ने विनंत्ति करी। त्यारे एमणे सर्वने उद्देशी ने स्पष्ट जणावी दीधुं के' (उसके बाद [शास्त्रार्थ में जीवन जी के पराजय के पश्चात्] इनके निवासस्थान पर इनके प्रति संमान रखनेवाले बम्बई के संभ्रान्त गृहस्थों ने जाकर धार्मिक चर्चा करते करते बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की स्वामी जी से प्रार्थनां की। इस पर उन्होंने सब को उद्देश करके स्पष्ट बता दिया कि--)

"भाई, हमारा कोई स्वतन्त्र मत नहीं मैं तो वेद के अधीन हुं और हमारे भारत

में पच्चीस कोटि आर्य हैं। कई कई बात में किसी किसी में कुछ कुछ भेद है, सो विचार करने से आप ही छूट जायेगा। मैं संन्यासी हुं और मेरा कर्त्तव्य यही है कि जो आप लोगों का अन्न खाता हुं इसके बदले जो सत्य समझता हुं उसका निर्भयता से ऊपदेश करता हुं। मैं कुछ कीर्त्ति का रागी नहीं हुं। चाहे कोई मेरी स्तुति करे, वा नीन्दा करे, मैं अपना कर्त्तव्य समझ के धर्म बोध कराता हुं, कोई चाहे माने वा न माने इसमें मेरी कोई हानि लाभ नहीं है।'[1]

त्यारे एक भाइ ए कह्युं के, अमे जो समाज स्थापन करीए, तो एमां कोई सार्वजनिक नुकसान छे? ते नो जवाब स्वामी जीए दीधो के—**एक भाई ने कहा कि हम जो समाज स्थापित करें तो इसमें सार्वजनिक नुकसान है? इसका जबाब स्वामी जी ने दिया कि)—**

"आप यदि समाज से पुरुषार्थ कर परोपकार कर सकते हो, समाज करलो इस में मेरी कोई मनाई नहीं। परन्तु इसमें यथोचित व्यवस्था न रखोगे तो आगे गडबडाध्याय हो जायगा। मैं तो मात्र जैसा अन्य को उपदेश करता हुं वैसा ही आपको भी करूंगा और इतना लक्ष में रखना कि कोई स्वतन्त्र मेरा मत नहीं है। और मैं सर्वज्ञ भी नहीं हुं। इस से यदि कोई मेरी गलती आगे पाइ जाए युक्तिपूर्वक परीक्षा करके इसी को भी सुधार लेना। यदि ऐसा कोई न करोगे तो आगे यह भी एक मत हो जायेगा, और इसी प्रकार से बाबावाक्यं प्रमाणं करके इस भारत में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित होके, भीतर भीतर दुराग्रह रखके धर्मान्ध होके लड़के नाना प्रकार की सद्विद्या का नाश करके यह भारतवर्ष दुर्दशा को प्राप्त हुआ है इसमें, यह भी एक मत बढ़ेगा। मेरा अभिप्राय तो है कि ईस भारतवर्ष में नाना प्रकार के मतमतान्तर प्रचलित है वौ भी वे सब वेदों को मानते है, ईस से वेदशास्त्ररूपी समुद्र में यह सब नदी नाव पुनः मिला देने से धर्म ऐक्यता होगी। और धर्म ऐक्यता से सांसारिक और व्यवहारिक सुधारणा होगी और ईससे कला कौशल्यादि सब अभीष्ट सुधार होके मनुष्यमात्र का जीवन सफल होके अन्त में अपना धर्म बल से अर्थ काम और मोक्ष मील सकता है।"[2]

---

१. ऋषि दयानन्द का यह कथन 'मुंबई आर्यसमाजनो इतिहास' में आर्यभाषा और नागरी लिपि में छपा है। भाषा ऋ० द० की अपनी गुजराती मिश्रित है।

२. यह अंश भी पूर्ववत् आर्यभाषा व देवनागरी लिपि में छपा है।

आर्यसमाज के आदिम २८ नियमों की

ऋषि दयानन्द कृत व्याख्या

वि० सं० १९३२ (गुजराती सं० १९३१) सन् १८७५ में प्रथम स्थापित आर्यसमाज के पहले २६ नियम निर्धारित किये गये थे। तत्पश्चात् उसमें दो नियम बढ़ाये गये। द्र० ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन (तृतीय सं०), पूर्णसंख्या २२ का पत्र—**उन नियमों में दो नियम बढ़ाये हैं**। भाग १, पृष्ठ ५७, पं० ३॥

पूर्णसंख्या २३ के पत्र में श्री गोपाल राव हरि देशमुख को लिखते हैं—**आर्य समाज और उसकी व्याख्या पुस्तक छपता है**। भाग १, पृष्ठ ५८, पं० २-३।

मैंने यह पङ्क्ति सन् १९४५ में, जब पत्र और विज्ञापन का प्रथम संस्करण छप रहा था, पढ़ी थी। तभी से मैं पत्र में उल्लिखित आर्यसमाज के नियमों की व्याख्या प्राप्त करने के लिये उत्सुक था यद्यपि यह व्याख्या सन् १९३३ में प्रकाशित 'मुम्बई आर्य समाजनो इतिहास' में छप चुकी थी, पुस्तक मेरे पास भी थी, परन्तु इस ओर मेरा ध्यान नहीं गया। पत्र और विज्ञापन के तृतीय संस्करण के प्रथम भाग के छप जाने के पश्चात् अचानक इस व्याख्या पर दृष्टि गई। इस व्याख्या को यद्यपि हम 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के द्वितीय भाग में पृष्ठ ९०८-९१८ तक छाप चुके हैं, तथापि 'पत्र और विज्ञापन' पुस्तक की पहुंच थोड़े पाठकों तक ही सीमित होने से हम वेदवाणी में भी छाप रहे हैं।

यह व्याख्या या व्याख्यान किस का किया हुआ है, यह उक्त इतिहास से ज्ञात नहीं होता, किन्तु व्याख्या की अन्तरङ्ग परीक्षा से हस्तामलकवत् स्पष्ट हो जाता है कि यह व्याख्या ऋषि दयानन्द कृत ही है। इसमें निम्न दो प्रमाण हैं—

१—आर्यसमाज के १७ वें नियम की व्याख्या में व्याकरण शास्त्र की **'असिद्धं बहिरङ्ग-मन्तरङ्गे'** महाभाष्यस्थ परिभाषा का उल्लेख किया है। उसको इस स्थान में घटाना ऋ० द० जैसे महाभाष्य के पारङ्गत वैयाकरण द्वारा ही संभव है।

२—आर्य समाज के १५ वें नियम की व्याख्या में 'पुंसवन संस्कार' का जो 'वीर्य रक्षा' प्रयोजन लिखा है वह भी ऋषि दयानन्द का विशिष्ट व्याख्यान है (द्र० संस्कार विधि ग्रन्थ)। अन्य सभी आचार्य इस संस्कार का प्रयोजन 'पुत्र' की उत्पत्ति मानते हैं। ऋ० द० पुत्र और पुत्री में भेद स्वीकार नहीं करते अतः उन्होंने पुंसवन शब्द की भी स्वतन्त्र, परन्तु व्याकरण सम्मत व्याख्या की है।

इस व्याख्या के ऋषि दयानन्दकृत होने में अन्य भी प्रमाण दिये जा सकते हैं, परन्तु ये दो ही इतने प्रबल प्रमाण हैं कि इनकी उपस्थिति में प्रमाणान्तर की आवश्यकता ही नहीं रहती।

मुम्बई आर्य-समाज के नियम[1] और उसका व्याख्यान[2]

मूल १. ओं सब मनुष्यों के हितार्थ आर्यसमाज का अवश्य होना चाहिये।

व्याख्यान--इस समाज से धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति मनुष्यों को यथावत् होगी। अतएव आर्यावर्तादि देशस्थ मनुष्य जातिमात्र का हित इस समाज से निश्चित होना है ॥१॥

मूल २. ईस समाज में मुख्य स्वतः प्रमाण वेदों का ही माना जायेगा। तथा साक्ष्यर्थ वेदों के विज्ञानार्थ और आर्य इतिहासार्थ, शतपथ ब्राह्मणादि ६ छः वेदों के जो अङ्ग, ४ चार उपवेद, ६ छः दर्शन, तथा ११२७ वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान, ये सब आर्य सनातन संस्कृत ग्रन्थों का गौण प्रमाण माना जायगा, जो कि वेदानुकूल।

व्याख्यान—मुख्य वेदों से उत्तम कोई ग्रन्थ माना न जायगा, किन्तु नीचे लीखे प्रमाणे साक्ष्यादिक प्रयोजन के लिये यथोक्त शतपथादि ग्रन्थ माने जायँगे, जितना जितना अंश वेदानुकूल। विरुद्धांस को न माना जायगा। स्वतः प्रमाण ग्रन्थान्तर प्रमाणानपेक्ष, कि वेदों के प्रमाण विषे वेदों का ही प्रमाण माना जायगा। और शतपथादि पूर्वोक्त ग्रन्थों का परतः प्रमाण, अर्थात् वेदों के प्रमाण से ही उनका प्रमाण होगा, स्वतः नहीं ॥२॥

मूल ३. इस समाज में प्रतिदेश के मध्य एक-एक प्रधान समाज होगा, और अन्य सब शाखोपशाखारुप होंगे।

---

१. यहां हम मुम्बई आर्यसमाज के नियमों का पाठ सन् १९३३ में छपे 'मुंबई आर्यसमाजनो इतिहास' के पृष्ठ १०-२१ पर छपे पाठ के अनुसार दे रहे हैं। श्री पं० लेखराम रचित जीवनचरित हिन्दी, सं० पृष्ठ २००-२०३ तथा पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवनचरित भाग १, पृष्ठ ३३२-३५ में नियमों का पाठ हिन्दी भाषानुसार संशोधित छपा है।

२. 'मुंबई आर्यसमाजनो इतिहास' में नियमों के मूल पाठ के साथ 'व्याख्यान' भी छोटे अक्षरों में छपा है। इस व्याख्यान की भाषा भी हिन्दी है (मूल नियम और व्याख्यान की भाषा हिन्दी होते हुए भी गुजराती लिपि में छपे हैं)।

'मुम्बई आर्यसमाजनो इतिहास' के लेखक श्री दामोदरदास सुन्दरदास ने आर्य समाज के नियमों और उसके व्याख्यान के पाठ के अन्त में पृष्ठ २१ पर टिप्पणी में लिखा है—"उपला जुना मुल २८ नियमो जे ढबमां छापेला प्राप्त थया तेवोने तेवाज ऊपर मुजेब आपेला छे. ते समयनी छपाई तथा भाषापण कांइक जुदी पड़ती जणाय छे. तेमा कोई सुधारो के फेरफार कर्या बगैर एमज आपवा उचित लागवाथी ते गुजराती टाईप मां ज असल मुजब छाप्या छे।"

व्याख्यान—सब को निकट परस्पर व्यवस्था प्रीति और उपकार के लिये तथा विद्या वृद्धयर्थ यह नियम जानना ॥३॥

मूल ४. प्रधान समाज के अनुकूल अन्य सब समाजों की व्यवस्था रहेगी।

व्याख्यान—उन्नति के लिये यह नियम जानना ॥४॥

मूल ५. प्रधान समाज से वेदोक्तानुकूल संस्कृत और आर्य भाषा में नाना प्रकार पुस्तक होंगे। सदुपदेश के लिये, और आठ आठवे दिन एक आर्यप्रकाश पत्र निकलेगा। ये सब समाजों में प्रवृत्त किये जायंगे।

व्याख्यान—विद्वान्, अविद्वान्, स्त्री, पुरुष इन सभों को सत्यासत्य कर्तव्याकर्तव्य और ईश्वरादि पृथ्वी पर्यन्त सब पदार्थों का यथावत् बोध और अत्यन्त सुखप्राप्त होगा ॥५॥

मूल ६. प्रत्येक समाज में एक प्रधान पुरुष और दूसरा मन्त्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री ये सब सभासद् होंगे।

व्याख्यान—जिस्से इस समाज की रक्षा और अत्यन्त उन्नति होय ॥६॥

मूल ७. प्रधान पुरुष इस समाज की यथावत् व्यवस्था पालन करेगा। और मन्त्री सब के पत्रों का प्रत्युत्तर तथा सब के नाम व्यवस्था लेख करेगा।

व्याख्यान—सब समाजस्थों को सब सभासदों का वर्तमान और प्रश्नोत्तर विदित रहने के लिये यह नियम है ॥७॥

मूल ८. इस समाज में सत्पुरुष सद्नीति सदाचरणी जनों के हितकारक समाजस्थ किये जायेंगे।

व्याख्यान—दुष्ट मनुष्य के सभासद होने से समाज को दोष लगता है। इसलिये दुष्ट को सभासद् शीघ्र नहीं करना किन्तु जो दुष्टता छोड़ने के लिये और सज्जनता ग्रहण करने के लिये निष्कपट होके सभासद हुआ चाहै सो हो सकता है ॥८॥

मूल ९. जो गृहस्थ गृहकृत्य से अवकाश प्राप्त होय, सो जैसा गृहकार्य में पुरुषार्थ करता है, उस्से अधिक पुरुषार्थ इस समाज की उन्नति के लिये करें। और विरक्त तो नित्य ही इस समाज की उन्नति ही करें अन्यथा नहीं।

व्याख्यान—जब परोपकार सर्वहित स्वहृदय की प्रीति होगी, तब यह कार्य बनता है जो इस नियम के अनुकूल आचरण करेगा, उसको धन्यवाद देना चाहीये। और परमात्मा की तर्फ से भी उसी को धन्यवाद अवश्य मिलेगा ॥९॥

मूल १०. आठ आठवें दिन प्रधान मन्त्री और सब सभासद समाज-स्थान में एकीठे होंय, सब काम से इस काम को मुख्य जानके।

व्याख्यान—क्योंकि ईस व्यवहार से इस लोक और परलोक तथा मोक्ष की निश्चित सिद्धि होती है, ईस्से इस काम को सर्वोत्तम अवश्य जानना ।।१०।।

मूल ११. ऐकिठे होके सर्वथा उचित होंय परस्पर प्रीति से प्रश्नोत्तर पक्षपात छोड़ के करें, सामवेदादि गान करैं। ईन विषयों में ही होय, कि परमेश्वर, सत्यधर्म, सद्नीति, सत्योपदेश विषयक ही वादित्रवादनपूर्वक गान, पूर्वोक्त विषयक मन्त्रों का अर्थ, ऐसा ही वक्तृत्व, पुनर्गान, पुनर्मन्त्रार्थ, पुनर्गान ईत्यादि।

व्याख्यान—सत्य प्रतिपादन असत्य का खण्डन जिस्से होय, ऐसा न होय, कि मेरा ही कथन अखण्डित जैसा होय, वैसा ही हठादी से दुसरे का सत्य का भी खण्डन करना अपने असत्य का भी मण्डन, करना इत्यादि सर्वथा छोड़ ही देना ।।११।।

मूल १२. प्रत्येक सभासदों को न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त होय, उसमें से आर्यसमाज आर्यविद्यालय तथा आर्यप्रकाश पत्र, ईन तीनों के प्रचार के लिये प्रीतिपूर्वक शतांश देवैं। अधिक देने से अधिक धर्मफल। ईस धन का व्यय इन तीन विषयों में ही होय, अन्यत्र व्यय नहीं किया जाय।

व्याख्यान—इस नियम के विना आर्यसमाजादि की स्थिर व्यवस्था और उन्नति नहीं हो सकती वारंवार सभासदों से जादा लेने से अच्छा नहीं। और धनाढ्य लोगों पर अत्यन्त भार होने से उनकी अरुची हो सकती है। इसलिये यह नियम होना ही चाहिये। परन्तु जो जो व्यापारी है और अपना व्यवहार गुप्त रखना चाहै वह एक वार इकिट्ठा धन देवै, यथासामर्थ्य और श्रद्धा, अथवा मासीक किंवा वार्षिक निवन्ध न कर देवे। तथैव राजालोगों की भी व्यवस्था रहै। और अन्य सब लोगों का शतांश देना ही ठीक है ।।१२।।

मूल १३. जो धन ईन कार्यो को उन्नति और प्रचार के लिये जितना प्रयत्न करै उसका यथायोग्य सत्कार उत्साह के लिये होना चाहिये।

व्याख्यान—परन्तु वह जन सत्कार की इच्छा किंवा दंभादि से कोई काम न करें, किन्तु इस काम को अपना ही समजे। मनुष्यों के उपकार और इश्वर की प्रसन्नता के लिये ही करें, अन्यथा नहीं। क्योंकि जैसे जैसे विनयादि मनुष्य में होते हैं वैसे वैसे मनुष्य का सत्कार आप से आप ही होता है, स्वेच्छा से नहीं। परन्तु आर्यसमाज का उपकार जन परमार्थ दृष्टि से ही करे और सब लोग उसकी प्रतिष्ठा करैं ।।१३।।

मूल १४. इस समाज में वेदोक्त आदि प्रकार से ही एक अद्वितीय परमेश्वर की ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करने में आवेगी।

व्याख्यान–निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, दयालू, सर्वजगत् पिता, सर्वजगन्माता, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त, सर्वव्यापक, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्यशुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव' अनन्त सुखप्रद, धर्मार्थ काम मोक्षप्रद ईत्यादि विशेषणों से परमात्मा ही स्तुति गुणकीर्तन प्रार्थना, उस्से सर्वश्रेष्ठ कार्यों में सहाय चाहना, उपासना, उसके आनन्द स्वरूप में मग्न हो जाना, सो पूर्वोक्त निराकारादि लक्षणवाला की ही भक्ति करनी। उस्से विपरीत की कभी नहीं करनी ॥१४॥

मूल १५. इस समाज में निषेकादि अन्त्येष्टि पर्यन्त संस्कार वेदोक्त किये जायंगे।

व्याख्यान--निषेक (१) वीर्यप्रदान, पुंसवन (२) वीर्यरक्षोपाय, सीमन्तोन्नयन (३) गर्भरक्षोपाय, जातकर्म (४) बालक और प्रसूत स्त्री की सम्यक् रक्षाकरण, नामकरण (५) देवदत्त, यज्ञदत्त, सुशील, सुवीर, यशस्वी इत्यादि पुत्रों का नाम रखना; कलावती यशोदा, शर्मदा, धर्मदा इत्यादि कन्याओं के नाम रखना, निष्क्रमण (६) शुद्ध प्रदेश में बालक को घुमाना आदि, (७) कर्णवेध, (८) चुडाकर्म मुण्डन करना, यज्ञोपवीत (६) विद्या-पठनार्थ विद्यार्थी का चिह्न धारण करना, विद्यारम्भ (१०) नियमपूर्वक ब्रह्मचर्याश्रम-पालन, गुरुसेवा और यथार्थ विद्याभ्यास करना, सत्यभाषण, सुशीलादि सद्गुण धारना, समावर्तन (११) यथावत् चौदह विद्या पढ़ने शिल्पादि हस्तक्रिया सीख के विवाह करने की इच्छा करके गुरु को प्रसन्न करके घर को आना, विवाह (१२) २५ वर्ष उपरान्त ४८ वर्ष पुरुषों को विवाह करने का नियम है, वेदादिशास्त्रों में, तथा स्त्री लोगों का नियम १६ वें वर्ष से आगे और २५ वा ३० वर्ष से पूर्व कन्याओं का विवाह होना चाहिये। परस्पर प्रसन्नता, तुल्य विद्या, स्वभाव, रूप, वल, पराक्रम, शरीर के गुण, तुल्य होना चाहिये परन्तु स्त्री का शरीर पुरुष से छोटा कुछ कम बल होना चाहिये। तब गृहस्थाश्रम में सुख और उत्तम होते हैं, अन्यथा कुछ सुख तो नहीं होता, किन्तु दुःख ही भोगना पड़ता है, गृहाश्रम कृत्य (१३) नाना प्रकार गृहस्थों के व्यवहार, पञ्चमहायज्ञ, सन्तानोत्पत्ति, सन्तानों का सुशिक्षा पूर्वक विद्यादान, स्त्री पुरुष श्वसुर सासू, भृत्य, गृह सम्बन्धि सब काम यथायोग्य करना, गार्हपत्यदीक्षादि होना, वानप्रस्थ दीक्षा (१४) वेदान्तसेवन योगाभ्यास शास्त्रों का सुविचार परमेश्वर की अत्यन्त भक्ति सब पदार्थों का गुणदोष विचार, शरीर, पदार्थों में दोष दर्शन; हिताहित विचारादि करना, मोक्षविचार, उसके होने के उपायों का अनुष्ठान, संन्यास आश्रम दीक्षा, (१५) सब जगत् का कारण एक अद्वितीय परमात्मा और सब जगत् कार्य्य, परब्रह्म में दृढ़ निश्चय, धर्म का उपदेश और अधर्म का खण्डन, पक्षपात छोड़ के सब का हित करना। एक परमेश्वर परायण होके सर्वत्र घूमना मोक्ष का यथावत् निश्चय करना इत्यादि। मृत्युसंस्कार करना (१६) मृतक शरीर को स्नानादि से शुद्ध करना सुगन्ध युक्त करना, श्मशान में पांच हाथ लम्बी और तीन हाथ चौड़ी तथा तीन हाथ गहरी वेदी करके प्रथम अर्ध वेदी लकड़ी से भरनी। ऊपर मुड़दा

रखना। फिर उस पर और बगल में लकड़ी चिणनी तथा एक हाथ भर पृथ्वी से उपर चिणनी चन्दन को लकड़ी कुछ १० वा २० सेर तो अवश्य चाहिये अन्य काष्ठ भी पलाश वा आम्रादिक होना, ३ तीन मण घी न्यून से न्यून २० सेर से कम न होना चाहिये। फिर अग्नि प्रवेश करना। पुन: शुक्ल यजु: के ३९ वें अध्याय के "स्वाहा प्राणेभ्य: साधिपतिकेभ्य:" ईत्यादि मन्त्रों से चिता में कस्तूरी केसरादि युक्त घी का होम करना; जब तक मृतक शरीर भस्म न हो जाय। फिर शोक निवृत्यर्थ १० दिन कुछ अधिक वा न्यून दिन तक विद्वानों के साथ भाषण, विचार करना। जब शोक निवृत्त हो गया, तब विद्वानों को भोजन, दक्षिणा, धर्मात्माओं को यथा शक्ति देना। ए १६ सोलह संस्कारों में होम दानादि और वैद्यक शास्त्र को रीति से भोजन, पान, औषधादि सेवन करना। जिस्से शरीरारोग्य बढ़ और बुद्धि अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होय, उस्से सब सुख होना, अन्यथा नहीं ।।१५।।

मूल १६. आर्य विद्यालय में वेदादि सनातन आर्ष ग्रन्थों का पठन और पाठन कराये जायंगे, वेदोक्त रीति से स्त्री और पुरुषों को सत्यशिक्षा करने में आवैगी।

व्याख्यान—संस्कृत वा भाषा में नाना प्रकार के ग्रन्थ बनाने और पढ़ाने में वेदानुकूल आवेंगे। कोई भाषान्तर भी पढ़ाये जायगे। परन्तु जो जो उत्तमत्ता युक्त होंगे मुख्य संस्कृत ग्रन्थों का ही पठन और पाठन कराया जायगा ।।१६।।

मूल १७. इस समाज में स्वदेशादिक हितार्थ दो प्रकार को शुद्धि के लिये प्रयत्न किया जायगा एक परमार्थ और द्वितीय लोकव्यवहार। इन दोनों का शोधन और शुद्धता को उन्नति तथा सब ससार के हित को उन्नति किइ जायगी।

व्याख्यान—जैसा "असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे" नौकर भी आपके स्वामी के काम से अपना काम प्रथम कर्ता है, पीछे स्वामी का। प्रातःकाल जब निद्रा से जगता है तब पहिले अपना मुख प्रक्षालन पुंछना आदि करके पुनर्नोकरी का काम कर्ता है. वैसा ही सब मनुष्यों को उचित है कि अपना-अपना जन्म-देश का उपकार प्रथम करना और फिर अन्य देशस्थ मनुष्यों का उपकार करना। परमार्थ, ईश्वर; तद्भक्ति, तस्मादेव भय, तदाज्ञा पालन, सर्वजनोपकार; विद्याभ्यास, विद्यादान, अधर्म का सर्वथा त्याग, सत्यधर्म का सर्वथा अनुष्ठान, पक्षपात त्याग, सत्पुरुष संग, मन और इन्द्रियों का दमन, मोक्ष और वैराग्य, विज्ञानादि मोक्षोपायों का अनुष्ठान, इत्यादि परमार्थ में लेना, और व्यवहार से ब्रह्मचर्यादि अनुष्ठान, यथाकाल न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से राज्य और धनादि का संग्रह करना, वर्तमान में उसकी रक्षा यथायोग्य करना, रक्षित को युक्ति से बढ़ाना, बढ़े को सद्विद्यादि में यथायोग्य व्यय करना, कोई एक को राज्य वा धन का अधिकार नहीं देना। अयोग्य सन्तानों को भी भोजन वस्त्रादि योग्य क्षेम मात्र से अधिक अधिकार न देना, किन्तु राज्य और धनादि की रक्षा उन्नति और व्यवस्था पालन धर्मात्मा विद्वान् और सज्जनों की सभा से ही सब व्यवस्था उत्तम उत्तम करना। शरीर के भोजनादि नियम सन्तानों को धर्म विद्या ही की सुशिक्षा

करना, सत्य बात का प्रचार और मिथ्या बात का खण्डन करना और कराना। एक एक शरीर का नियम कुटुम्ब, घर, नगर, ग्राम, देश, और भूगोल, इन के सामाजिक नियम; सर्वोत्कृष्ट सर्वोत्कृष्ट यथायोग्य बांधना, जिनसे सब संसार का यथायोग्य परम हित होय वैसे वैसे अनेक सुनियम करना इत्यादि व्यवहार पक्ष में लेना ।।१७।।

मूल १८. इस समाज में न्याय जो पक्षपात रहित अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणों से यथावत् परीक्षित सत्य, धर्म, वेदोक्त, सोही माना जायगा; इस्से विपरीत न माना जायगा, यथाशक्ति।

व्याख्यान—आर्य सभासदों से कोई कहै कि यह बात वेदोक्त है तुम करो, तब दो बात विचारनी; जो वह युक्ति सिद्ध सत्य है तो माननी और युक्ति सिद्ध सत्यार्थ नहीं है, तो जानना कि ईस का यह अनर्थ करता है। फिर जो सर्वथा विद्वान् पक्षपात रहित लोगों को प्रत्यक्षादि प्रमाण और पदार्थ विद्या से युक्त नहीं अर्थ दिखता तो जानना कि यह वेदों का वचन नहीं है किन्तु कोइ की बनावट है; मतलब सिन्धू का वचन किं वा अविद्वान् का रचित है इश्वरोक्त नहीं। जब कोइ कहै कि वह काम परम्परा से चला आता है तुम लोग क्यों नहीं कर्ते? उस्से कहना कि वेदों में दिखला, पुस्तक के बीच में जो दिखलावे, फिर उस्से अर्थ करना, फिर जो अनर्थ होय, तो पूर्वोक्त रीति से ही निश्चय करके मानना वा छोड़ना। यथाशक्ति जितना अपना सामर्थ्य होय उस्से कमती काम कधी न रहै, अधिक श्रेष्ठ काम होय सो तो अछा ही है ।।१८।।

मूल १९. इस समाज की तर्फ से शिष्ट विद्वान् लोक सर्वत्र सत्योपदेश करने के लिये भेजे जायंगे; समयानुकूल।

व्याख्यान—जिस्से सब लोगों में सत्य असत्य यथावत् प्रकाशित होय, सत्य का ग्रहण सब लोक करैं और मिथ्याचार का त्याग करैं। तथा पाखण्डी धूर्त लोगों का खण्डन और धर्मात्मा सत्य-प्रिय विद्वानों का मण्डन और सत्कार सर्वत्र होय एतदाद्यर्थ यह नियम है ।।१९।।

मूल २०. पुरुष और स्त्री ईन दोनों के विद्याभ्यास के लिये भिन्न भिन्न आर्य-विद्यालय प्रत्येक स्थान में यथाशक्ति किये जायंगे। पुरुषों की पाठशाला में अध्यापन और सेवा प्रबन्धादि पुरुषों से ही प्रबन्ध किया जायेगा। तथैव स्त्रियों की पाठशाला का स्त्रियों से, विपरीत नहीं।

व्याख्यान—विद्या पुरुष और स्त्रियों को जब तक यथावत् नहीं होती तब तक उस देश में मनुष्यों को दुःख के दिन नष्ट होके सुख के दिन प्राप्त कधी नहीं होते। महापुण्य और धर्म यही है जो सत्य सनातन विद्या का प्रचार करना। यथोक्त रीति से प्रबन्ध होने से यथावत् विद्या होती और विघ्न कोई नहीं होता, इत्यादि प्रयोजन के लिये यह नियम है ।।२०।।

मूल २१. आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्यप्रकाश पत्र और आर्य समाजाद्यर्थ धनकोश, इन चारों की व्यवस्था प्रधानार्य समाजानुकूल रहैगी। इनकी उन्नती और संरक्षण भी उस्से ही किया जायगा।

व्याख्यान—जो कुछ इन चारों का मुख्य प्रबन्ध आज्ञा और सम्यक् उनकी रक्षादिक मुख्य समाजानुकूल रक्खा है यह मुख्याधिकार प्रधानार्य समाजाधीन रहेगा। जिस्से किसी प्रकार व्यवस्थोलंघन कोई न कर सके। यथावत् उन्नति सब की होती जाय ॥२१॥

मूल २२. इस समाज में प्रधानादि सब सभासद् परस्पर प्रीत्यर्थ अभिमान हठ दुराग्रह और क्रोधादि दुर्गुण सब छोड़ के उपकार सुहृदता से सबसे निर्वैर होके स्वात्मवत् संप्रीति सबकी करनी होगी।

व्याख्यान—जो प्रीति से होता है सो काम वैर से कभी नहीं होता। वह छोटा है, मैं बड़ा हूं; मेरी बात झूठी भी होय, वही सत्य होय, सभा में बात कट जायेगी तो अप्रतिष्ठा मेरी होगी अर्थात् जैसे बनें वैसे मेरी बात सर्वोपरि रहैं, सत्य होय वा असत्य। ऐसा झुंठा हठ लेना कोई को नहीं चाहिये। यह सब का अभिप्राय रहे कि जो यथार्थ सत्य हैं वही स्थिर रहै। छोटा और बड़ा, छोटें और बड़े काम से ही मानना, अन्यथा नहीं ॥२२॥

मूल २३. विचार समय सब व्यवहारों में न्याययुक्त सर्वहित जो सत्य बात सम्यक् विचार से ठहरै उसी को सब सभासदों को विदित करके वही सत्य बात मानी जाय। विपरीत न मानी जाय। इसी का नाम पक्षपात छोड़ना है।

व्याख्यान—जिस देश में मनुष्यों को सुमति विचार युक्ति है उस देश का सौभाग्य नित्य ही बढ़ता जायगा, और दुःख सब नष्ट हो जायगा सब व्यवहारों में किं वा परमार्थ विचार में सदा सत्य की तर्फ ही रहना सबको चाहिये विपरीत को छोड़ के। मनुष्य की मनुष्यता यही है। अन्यथा पशुता ही जाननी ईत्यादि प्रयोजन के लिये यह नियम जानना ॥२३॥

मूल २४. जो जन ईन नियमों से अनुकूल आचरण करेगा उसको शिष्ठ समाज में ही स्थिर करना, वह धर्मात्मा सद्गुणी होय। इस्से विपरीत को साधारण समाज में रखना। और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल ही देना। प्ररन्तु पक्षपात से यह काम नहीं करना, किन्तु ए दोनों बात शिष्ठ सभासदों के विचार से ही की जाय, अन्यथा नहीं।

व्याख्यान—शिष्ट को प्रतिष्ठा करनी दुसरे[1] को उपदेश और उत्साह देना तृतीय[2] से सदा उपेक्षा रखनी ।।२४।।

मूल २५. आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्य प्रकाश पत्र और आर्यसमाजाद्यर्थ धनकोश ईन चारों की रक्षा और उन्नति प्रधानादि सब सभासद तन मन और धन से यथावत् सदा करैं।

व्याख्यान—ईन चारों की यथावत् प्रवृत्ति से आरम्भ से लेके उत्तरोत्तर मनुष्यों को महासुख लाभ होना अवश्य है ।।२५।।

मूल २६. जब तक नौकर करने और कराने वाला आर्यसमाजस्थ मिले तब तक और की नौकरी न करैं और न अन्य को नौकर रक्खे। वे दोनों परस्पर स्वामी सेवक भाव से यथायोग्य वर्ते ।

व्याख्यान—इस नियम से घर की नाई दोनों का अच्छा होगा और व्यवहार में भंग कधीं नहीं होना, तथा धर्मरीति से धनाढ्य और दरिद्र का सुख से निर्वाह होना। इससे समाजादि की अत्यन्त उन्नति होगी ।।२६।।

मूल २७. जब जब विवाह, पुत्र जन्म महालाभ कि वा मरण अथवा कोई समय दान, धन व्यय करना होय, तब तब आर्यसमाजाद्यर्थ धनादि दान अवश्य करैं। ऐसा धर्म काम कोई भी अन्य नहीं है, इस निश्चय को जान के कधी ही न भुलैं।

व्याख्यान—इस नियम से आर्यसमाजादि की अत्यन्त उन्नति होने से स्वदेशादिस्थ मनुष्यादि को अत्यन्त सुखो का लाभ होगा। इसलीये यह नियम है ।।२७।।

मूल २८. इन नियमों से कोई नियम नया किया जायगा वा कोई निकाला जायगा, कि वा अधिक न्यून किया जायगा। सो सब शिष्ट सभासदों के विचार रोत से सब शिष्ट सभासदों को विदित करके ही, यथायोग्य करना होगा।

व्याख्यान—इस नियम से सब बुद्धिमानों को आगे विचार करने का अवकाश रहेगा। कोई बुद्धिमान् अत्यन्त बन्धन में नहीं पड़ेगा। किन्तु आगे आगे विचार शक्ति के बढ़ाने का उत्साह बढ़ैगा। ईस्से विज्ञान नित्य बढ़ता ही जायगा ॥ ओ३म्. २८ ॥

---

१. द्वितीय को अर्थात् साधारण जन को। सम्पा०। २. तृतीय से अर्थात् दुष्ट से। सम्पा०।

'पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती' के लेखक

पण्डित गोपालराव हरि देशमुख

पण्डित गोपालराव हरिदेशमुख महाराष्ट्र में अपने समय के प्रमुख समाज सुधारक, श्रेष्ठवक्ता, विविध भाषाओं के विद्वान्, और महान् लेखक थे। इनके समाज सुधार कार्यों के कारण जनता जनार्दन ने इन्हें **'लोकहितवादी'** नाम से विभूषित किया था। आज भी ये महाराष्ट्र में 'लोकहितवादी' नाम से ही अधिक जाने जाते हैं। (हम भी आगे इनका उल्लेख 'लोकहितवादी' नाम से ही करेंगे)। आपने धार्मिक, नैतिक, चरित्र, इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाजसुधार आदि विविध विषयों पर लगभग ४० छोटे मोटे ग्रन्थों की रचना की। आपने प्रमुख रूप से मराठी भाषा में ही लेखन कार्य किया। अक्टूबर सन् १८८२ में आपने **लोकहितवादी** नाम से एक मासिक पत्र का प्रकाशन भी आरम्भ किया था।

लोकहितवादी का जन्म १८ फर्वरी सन् १८२३ को पूना में हुआ था। आप का नाम 'गोपालराव और पिता का नाम 'हरि पन्त देशमुख' था। दक्षिण भारत में अपने नाम के आगे पिता का नाम जोड़ने की परिपाटी है। उसके अनुसार इनके नाम में 'हरि' शब्द इनके पिता के नाम का सूचक है। इसी प्रकार के नाम के साथ अपने प्राचीन स्थान वा कुल सूचक शब्दों के उल्लेख की भी रीति है। इसी रीति के अनुसार इनके नाम में 'देशमुख' शब्द का प्रयोग होता है। सह्याद्री बालघाट एवं गोदावरी से घिरा भूभाग 'देश' नाम से प्रसिद्ध है। इनका कोई पूर्वज कभी इस प्रान्त के राज्य का अधिकारी रहा होगा, उस से इनका कुल 'देशमुख' नाम से प्रसिद्ध हुआ। ब्रिटिश सरकार ने सन् १८७७ में दिल्ली दरबार के अवसर पर इन्हें 'रावबहादुर' उपाधि से अलंकृत किया था।

लोकहितवादी जन्मजात प्रतिभाशाली एवं जिज्ञासु स्वभाव के थे। अर्थशून्य पाठ एवं निरुद्देश क्रिया वा परम्परा के प्रति इनका विरोधी-स्वर बचपन से ही प्रकट होने लगा था। यथा—'प्राणायाम के समय नाक पकड़ने से क्या होता है ? ऐसे प्रश्न वे बालकपन में ही अपने शिक्षक से प्रायः पूछा करते थे।'[1]

अंग्रेजी शासन के आरम्भ के दिनों में ही अनेक मनस्वी व्यक्तियों ने महाराष्ट्र में देश जाति और समाज के उत्त्थान का कार्य प्रारम्भ किया था। इनमें विष्णुराव ब्रह्मचारी एक प्रमुख व्यक्ति थे (इनका उल्लेख लोक हितवादी ने प्रकृत लेख में भी किया है)। इनका **वेदोक्त धर्मप्रकाश** अद्भुत ग्रन्थ है[2]। धर्म, राजनीति, प्राचीन भारत में वैज्ञानिक उन्नति प्रभृति विविध विषयों के साथ ईसाई

---

१. लोकहितवादी: काल आणि कर्त्तृत्व, पृ० ५।

२. इन्होंने एक 'सुखदायक राज्यप्रकरणी निबन्ध' नामक अन्य ग्रन्थ भी लिखा था (द्र० लोकतिवादीः काल आणि कर्त्तृत्व, पृष्ठ २७९)।

और मुसलमानों के मतों का खण्डन भी इस पुस्तक में प्रथमवार उपलब्ध होता है[1]। इस ग्रन्थ का प्रथम संस्करण मराठी भाषा में सन् १८५९ में प्रकाशित हुआ था। ग्रन्थकार ने स्वयं इसे ब्रजभाषा में सन् १८६९ में प्रकाशित किया था। (यह संस्करण हमारे संग्रह में सुरक्षित है)। इस प्रकार महाराष्ट्र में जो समाज सुधार की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी, उसका लोकहितवादी के कार्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

ऋषि दयानन्द के अहमदाबाद जाने पर सन् १८७४ के अन्त में अथवा १८७५ के आरम्भ में लोकहितवादी का उनके साथ सम्पर्क हुआ। ऋषि दयानन्द के व्यक्तित्व और कार्य का इन पर बहुत प्रभाव पड़ा और वह उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया। वे ऋषि दयानन्द के एक विश्वसनीय प्रभावशाली सहयोगी बन गये। 'लोकहितवादी-काल आणि कर्तृत्व' के लेखक डा० निर्मलकुमार फड़कुले ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है (द्र० पृ० १६)।

लोकहितवादी आर्यसमाज बम्बई के कई वर्ष तक प्रधान रहे। ऋषि दयानन्द ने इन्हें अपनी उत्तराधिकारिणी सभा का सदस्य भी नियत किया था। इसके साथ ही महाराष्ट्र में ऋषि दयानन्द को एक अन्य मनस्वी विद्वान् अनुयायी सहायक प्राप्त हुआ। इनका नाम था—**श्री महादेव गोविन्द रानाडे** न्यायमूर्ति। श्री रानाडे के प्रयत्न से ही ऋ० द० पूना पधारे थे। आपने ही उनके व्याख्यानों का न केवल प्रबन्ध किया था, अपितु उनका मराठी में अनुवाद कराकर उन्हें प्रकाशित भी किया। आज **पूना प्रवचन** अथवा **उपदेश मञ्जरी** के नाम से पूना के जो १५ व्याख्यान हमें उपलब्ध हो रहे हैं, इसका श्रेय श्री महादेव गोविन्द रानाडे को ही है। श्री रानाडे भी आर्यसमाज पूना के कई वर्ष प्रधान रहे और इन्हें भी ऋ० द० ने परोपकारिणी सभा का सदस्य बनाया था।

आर्यसमाज को महाराष्ट्र प्रान्त में उक्त दो महान् विभूतियां प्राप्त हुईं। फिर भी वहां आर्यसमाज का प्रचार नहीं हो पाया। इसमें प्रधान कारण सम्भवतः बम्बई आर्यसमाज में विद्यमान गुजराती समुदाय रहा हो। जहां तक हमें वहां के इतिहास का ज्ञान है, आर्यसमाज की स्थापना के कुछ वर्षों के पश्चात् बम्बई आर्यसमाज गुजरातियों के हाथों में चला गया और उन्होंने महाराष्ट्र प्रान्त की उपेक्षा की। यह कितने दुःख की बात है कि ऋषि दयानन्द के दृढ अनुयायी लोकहितवादी और न्यायमूर्ति रानाडे महाराष्ट्र के जनों में तो लब्ध-प्रतिष्ठ हैं, परन्तु इनका आर्यसमाज के साथ क्या सम्बन्ध था, इसे वहां कोई व्यक्ति नहीं जानता। अस्तु;

दोनों का परस्पर साक्षात् होने के पश्चात् लोकहितवादी गोपालराव हरि देशमुख के साथ ऋषि दयान्द का निरन्तर पत्र व्यवहार चलता रहा उनमें से लोकहितवादी के लिखे गये केवल १५ पत्र ३ पत्र सूचना और सब पारसल सूचना ही हमें प्राप्त हुई हैं, जिन्हें हमने 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में यथास्थान प्रकाशित किया है इसी प्रकार लोकहितवादी तथा इनके पुत्र लक्ष्मण गोपाल देश-

१. मैंने म्लेच्छन के मत तोड़ के वेदोक्त धर्मप्रकाश ग्रंन्थ रच्यो। पृष्ठ ८५८, ब्रजभाषा सं०।

मुख के द्वारा लिखे गये ५-६ पत्र मिले हैं, जिन्हें हम 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के तीसरे भाग में छापेंगे ।

श्री गोपालराव हरि देशमुख ने ऋषि दयानन्द के स्वर्गवास के पश्चात् अपने 'लोकहितवादी' (मासिक)के वर्ष १ अंक ४-५, जनवरी-फर्वरी १८८४' के सम्मिलित अंक में **'पण्डित स्वामी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती'** शीर्षक से उनके व्यक्तित्व और कर्त्तृत्व को उजागर करनेवाला लगभग ४० पृष्ठ का एक निबन्ध प्रकाशित किया था। यह निबन्ध अक्टूबर सन् १९८० में 'मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय, दादर' में मुझे देखने को मिला। जनवरी १९८१ में पुनः बम्बई जाने पर मैंने इसकी फोटोस्टेट (फ़ेरो-क्स) कापी प्राप्त की। बाल्यावस्था के संस्कार रूप में मुझे मराठी का कुछ स्वल्प ज्ञान है, परन्तु मैं उसका भाव समझ लेता हूं। लोकहितवादी ने अपने इस निबन्ध में ऋषि दयानन्द के व्यक्तित्व, विद्वत्ता, और कार्य की महत्ता का जिन नपेतुले सारगर्भित शब्दों में तटस्थ भाव से सटीक वर्णन किया है उन्हें पढ़ कर पाठक भाव विभोर हो उठता है। मराठी भाषा का स्वल्प ज्ञान होते हुए भी मैं विना रुके और विना श्रम का अनुभव किये उसे एक बार में ही पढ़ गया। इसे पढ़कर मेरी इच्छा हुई कि इस निबन्ध को आर्यभाषा में प्रकाशित करके उत्तर भारतीय आर्य जनों को इससे परिचित कराना चाहिये। विद्वान् मनस्वी लोकहितवादी ने ऋषि दयानन्द का जो मूल्याङ्कन किया है, वह कोई अन्य व्यक्ति नहीं कर पाया, क्योंकि रत्न की परीक्षा जौहरी[२] ही कर सकता है।

सन् १९८० में यज्ञमूर्त्ति श्री रङ्गनाथकृष्ण सेलुकर जी के सोमयाग के समय मैं नांदेड़ गया था। वहां अनेक आर्यजनों से परिचय हुआ। १९८१ में श्री सेलुकर जी के ही अग्निचयन महायाग को देखने के लिये पुनः नांदेड़ गया। उस समय मैंने महाराष्ट्रिय आर्य प्रतिनिधि सभा के उपमन्त्री तथा नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस महाविद्यालय नांदेड़ के प्राध्यापक श्री कुशलदेव शंकरदेव वडवलकर से लोकहितवादी के ऋ० द० के सम्बन्ध में लिखे गये निबन्ध का हिन्दी रूपान्तर करने के लिये निवेदन किया। आपके द्वारा मेरे निवेदन को स्वीकार करने पर मैंने उक्त निबन्ध की फ़ेरोक्सकापी

---

१. 'लोकहितवादीः काल आणि कर्त्तृत्व' के लेखक निर्मल कुमार फडकुले ने अपने ग्रन्थ के पृष्ठ २३९ पर लिखा है कि पण्डित स्वामी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती' लेख लोकहितकादी के ईसवी सन् १८८३ के मध्य प्रकाशित हुआ। पुनः लोकतिवादीचें प्रकाशित साहित्य' (परिशिष्ट २' पृष्ठ ३४९) में इसके प्रकाशन का काल 'जानेवरी फेब्रूवरी सन् १८८३' लिखा है ये दोनों लेख अशुद्ध है। 'पण्डित स्वामी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती' लेख लोकहितवादी के जनवरी फरवरी सन् १८८४ के सम्मिलित अङ्क में छपा है। श्री फडकुलेजी की भूल के दो कारण हैं—प्रथम—ऋषि दयानन्द के स्वर्गवास की ३० अक्टूबर १८८३ तारीख का ज्ञान न होना। दूसरा—जनवरी फरवरी के अङ्क पर मुद्रण दोष से १८८४ में १८८३ छप जाना। हमने मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय से इस अङ्क की जो फ़ेरोक्स कापी उपलब्ध की है; उसके मुख पत्र पर ३ के स्थान पर ४ हाथ से बनाया हुआ है।

२. श्री लोकहितवादी का जीवन **'सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता'** अथवा **'सुखदुःखे समेकृत्वा'** आदि शास्त्र वचनों के सर्वथा अनुरूप था। उनकी इस सुदृढ मनःस्थिति को दर्शाने वाली एक घटना का उल्लेख आगे पृष्ठ २२ पर करेंगे।



उन्हें भेज दी। अनेक कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी आपने उक्त निबन्ध का हिन्दी अनुवाद करके मुझे भेज दिया। इस महनीय कार्य के लिये मैं तो उनका हृदय से आभारी हूं ही, समस्त हिन्दी भाषी आर्य जनता भी उनकी आभारी रहेगी।

किसी भी भाषा में मूलरूप से लिखे गये लेख वा ग्रन्थ के भाषान्तर में वह स्वाभाविकता और सरसता नहीं आती जो मूलभाषा में होती है। फिर मराठी जैसी समृद्ध भाषा में और लोकहितवादी जैसे सशक्त लेखक; जिनके लेख में भावानुकूल चुने गये शब्दों की माला गुम्फित हो, का भाषान्तर करना ही कठिन है, क्योंकि उस भाव को व्यक्त करने वाले सशक्त पर्याय हिन्दी भाषा में दुर्लभ हैं। इस कठिनाई के होते हुए भी श्री प्रा० कुशलदेव जी ने लेखक के भावों को सुरक्षित रखते हुए जो अनुवाद प्रस्तुत किया है वह बहुत अच्छा है। उन्होंने अपने अनुवाद में जो शैली अपनाई है, उसे हम उन्हीं के शब्दों में नीचे दे रहे हैं—

अनुवादक की ओर से कुछ सूचनाएं

इस जीवन-चरित्रात्मक निबन्ध के मूल लेखक न्यायमूर्ति गोपालराव हरि देशमुख लोकहितवादी के कतिपय मराठी शब्दों या वाक्यों को इस प्रकार (   ) के कोष्ठ में रखा गया है। लोकहितवादी के मूल शब्दों या वाक्यों को कोष्ठ में लिखने के निम्न कारण हैं—

१—ये शब्द और वाक्य लोकहितवादी जी की भाषा शैली की विशेषता को रेखांकित [स्पष्ट] करते हैं।

२—कोष्ठान्तर्गत अनेक शब्द मनमोहक और आकर्षक भी हैं।

३—उन शब्दों और वाक्यों का न तो शब्दशः अनुवाद हो सकता है और न ही उनका पर्यायवाची शब्द दिया जा सकता है, केवल उनका तात्पर्यार्थ या भावार्थ ही दिया जा सकता है। शायद इसी परिस्थिति के कारण यह अनुवाद छायानुवाद अथवा भाषानुवाद हो गया है।

इस कार्य को करते समय अनुवाद की [हिन्दी] भाषा को हिंदी लेखन शैली का सहज और पूर्ण रूप देने की दृष्टि से इस प्रकार[   ] के कोष्ठ में शब्द बढ़ाये गये हैं, जो मूल, लेखक के भाव, तात्पर्य और आशय की रक्षा करते हुए उसे स्पष्ट भी करते हैं। कहीं-कहीं आशय को स्पष्ट करने के लिये अपनी ओर से कुछेक शब्द और वाक्य भी बढ़ाये गये हैं, परन्तु ऐसा बहुत ही स्वल्प हुआ है।

लोकहितवादी जी के कथ्य एवं उनकी मराठी शैली को निरन्तर सुरक्षा का ध्यान रखने के कारण अथवा उनके कथ्य और आशय को सुरक्षित रखने के प्रयास में उनकी प्राचीन मराठी शैली का मेरी अनुवाद की [हिन्दी] भाषा पर भी प्रभाव पड़ा है। जैसी उनकी मराठी शैली ने हमारी हिन्दी को प्रभावित किया है, ठीक वैसे ही हमने जाने अनजाने उनकी पुरातन मराठी गद्य शैली को इस अनुवाद द्वारा आधुनिक हिन्दी गद्य शैली में रूपांतरित कर दिया है।

इस हिन्दी अनुवादक को अन्तिम रूप देने में मेरे भाई (गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर के छात्र होने के नाते] व अग्रज वैद्य सुभाष कर्मवीर जी कंधारकर ने जो अयाचित और उत्साहपूर्ण



[उत्स्फूर्त] सहयोग दिया है, उसे मैं कभी नहीं भुला पाऊंगा। अनुवाद करते समय यह अनुभव हुआ कि कुछ स्थानों पर प्रसंग या विषय को स्पष्ट करने के लिये टिप्पणियों का देना बहुत जरूरी है, अतः मूल पाठ पर संख्या देकर पृथक् परिशिष्ट रूप में टिप्पणियों को भी जोड़ दिया गया है।

श्रद्धेय पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने मुझे इस कार्य के योग्य समझा, यह मैं अपना अहोभाग्य समझता हूं।

नेतजी सुभाषचन्द्रबोस महाविद्यालय, नांदेड़ कुशलदेव शंकरदेव वडवलकर

माननीय अनुवादक महोदय की सूचना के साथ ही हम इस प्रसंग को समाप्त करते हैं और पाठकों से निवेदन करते हैं कि वे भी लोकहितवादी की लेखनी से प्रसूत रस का आस्वादन करें।

स्थितप्रज्ञ मनस्वी महात्मा लोकहितवादी

शास्त्रों में स्थितप्रज्ञ मनस्वी और महात्मा के जो लक्षण शास्त्रकारों ने लिखे हैं, लोकहितवादी पं० गोपालराव हरि देशमुख का जीवन उनके सर्वथा अनुरूप था। वे प्रचण्ड सांसारिक विपदाओं के उपस्थित होने पर भी अपने छोटे से [छोटे] कर्त्तव्य को निभाने के लिये सर्वदा उद्यत रहते थे। उनके जीवन की ऐसी ही एक घटना डा० निर्मलकुमार फडकुले ने अपने 'लोकहितवादीः काल आणि कर्तृत्व' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ १९-२० पर लिखी है। उसे हम लोकहितवादी के अनुपम जीवन-दर्शन की झांकी के रूप में नीचे उद्धृत करते हैं—

'लोकहितवादी के सन् १८८३ में गणपतराव, १८८७ में रामचन्द्रराव तथा १८९२ में कृष्णराव नाम के तीन पुत्र दिवंगत हुए। सन् १८८५ में इनकी पत्नी सौ० गोपिकाबाई का स्वर्गवास हुआ। इतना ही नहीं, उनकी दोनों विवाहिता पुत्रियों का भी निधन हो गया। इन प्रचण्ड आघातों से यद्यपि उनकी जीवन ज्योति कम्पायमान थी, पुनरपि उन की जीवन-यापन की वृत्ति उसी प्रकार शान्त तथा अलिप्त जैसी थी। सब दुःखों को विवेक से निगलते हुए कार्य पूर्ववत् निष्ठापूर्वक करते रहे। एक बार पुत्र की अन्त्येष्टि से लौटे ही थे कि किञ्चित् काल पश्चात् ही उन से आर्यसमाज के कार्य के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिये सुन्दरलाल जी नाम के एक गृहस्थ उनके पास पहुंचे। अपने चेहरे पर किसी प्रकार के दुःख वा शोक का चिह्न न लाते हुए सुन्दरलाल जी के साथ उनके मनोनुकूल वार्त्ता करते रहे। परन्तु जब घर के नौकर ने उस समय घटी घटना सुन्दरलाल जी को बताई तो उन्होंने ऐसी मनःस्थिति के समय कष्ट देने के लिये क्षमा मांगी। परन्तु लोकहितवादी ने कहा—**'समाज के कार्य के लिये अपने करने योग्य कार्य में उदासीनता दिखाना मेरे मत में अच्छा नहीं, सांसारिक घटनाओं से ऐसी बातचीत में दुःख मानना उपयोगी नहीं, तथा उसी प्रकार यदि कोई उत्कृष्ट कार्य सिद्धि हुई हो तो उससे हर्षित होना उचित नहीं। मैंने अपनी ओर से अपने बच्चों को विद्याज्ञान देने में कोई कमी नहीं रखी, फिर उनका अपना-अपना भाग्य उनके साथ है। यह संसार सुखदुःखमय है। इसलिये उनके विषय में सुख दुःख मानने का कोई कारण नहीं।"**

॥ विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम् ॥ न हि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम् ॥

लोकहितवादी

वर्ष २ रे

अंक ४-५

मसिक पुस्तक

जनेवारी व फ़ेब्रु०

सन् १८८३ ४

—:o:—

आबाल वृद्ध जिज्ञासु स्त्री पुरुषांच्या
उपयोगार्थ,
पुणे ये थें

"श्रीशिवाजी" छापखाण्यांत छापून प्रसिद्ध केले

—:o:—

विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् ॥
अमित्रादपि सद्वृत्त–ममेध्यादपि कांचनम् ॥ मनु ॥

—:o:—

पौश, माघ
शके १८०५

—:o:—

वर्षाची किंमत टपाल हांशिला सुद्धा एक रुपया
किंमत चार आणे.

॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ एतं सामासिकं धर्मं चतुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ शक्योपकारः कर्तव्यो नाऽपकारः कदाजन ॥

॥ क्षणं वित्तं क्षणं चित्तं क्षणं जीवति मानवः ॥ यमस्य करुणा नाऽस्ति धर्मस्य त्वरिता गतिः ॥

पंडित स्वामी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती

मूल लेखक—न्यायमूर्ति गोपालराव हरि देशमुख लोकहितवादी

अनुवादक—प्रा० कुशलदेव शकरदेव वडवलकर नेताजी सुभाषचंद्र बोस महाविद्यालय, नांदेड़ (महाराष्ट

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृति सिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥✡

—भर्तृहरि

जिन महात्मा दयानंद सरस्वती के सबंध में आज हम चार शब्द लिखने जा रहे हैं [पुरातन काल से ही] सत्पुरुषों का जोवन चरित्र लिखने का एक महाजन मार्ग रहा है, उसी [**महाजनो येन गतः स पंथा**] का अनुसरण हम यहां पर कर रहे हैं। संप्रति यहां पर जो स्वामी दयानंद जी का जीवन चरित्र लिखना है। उसमें वे किस कुल में उत्पन्न हुये, उनके शैशव, यौवन और प्रौढावस्था के बाद का बहुमुखी कार्य, उनका देशाटन इत्यादि का वर्णन करना हमारा उद्देश्य नहीं है, और यह हमें अभीष्ट भी नहीं है। हम तो यहां पर उनके जनमानस पर पड़े हुये सद्गुणों के प्रभाव का संक्षिप्त वर्णन कर उनके जीवन का उद्देश्य क्या था, तथा ध्येय प्राप्ति के लिये वे किन-किन क्षेत्रों में सतत प्रयत्नशील रहे, तथा किस प्रकार अपने कार्य में यशस्वी हुए। उसी प्रकार किन-किन विभिन्न कार्यक्रमों के माध्यमों से अपने प्रिय तथा आदरणीय आर्यावर्त्त देश की उन्नति के लिये वे यत्नशील थे, इत्यादि कार्यों की रूपरेखा (तांत्रिक) का संक्षेप में वर्णन करना ही हमारा उद्देश्य है। यदि पण्डित स्वामी दयानन्द जी का संपूर्ण चरित्र लिखा जाय, तो वह तो एक विस्तृत बृहद् ग्रन्थ का रूप धारण कर लेगा, परन्तु यहां पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि इस प्रकार का संपूर्ण जीवन चरित्र लिखने की न तो हमारे पास क्षमता है और न ही तदनुकूल स्थल और समय की यथोचित अनुकूलता और विपुलता है। इसलिये ऊपर लिखे अनुसार हम स्वामी दयानन्द जी के सम्बन्ध में उनकी कार्य प्रणाली (तांत्रिक) का वर्णन कर उस सत्पुरुष की नगण्य सी सेवा कर रहे हैं।

यदि स्वामी दयानन्द जी का समग्र जीवन चरित्र लिखना ही हो तो उसमें उनके यायावरीय जीवन[1] काल में, उनके द्वारा विभिन्न स्थानों पर धर्मादिक नाना विषयों पर किये गये शास्त्रार्थों के इतिहास[2] का भी समावेश करना होगा, जिससे यह ग्रन्थ अत्यन्त ही बृहद् होगा। स्वामी जी ने अपने जन्म से लेकर संन्यास ग्रहण पर्यन्त की आत्मकथा तो स्वयं लिखकर प्रकाशित की है, और विभिन्न

✡विपत्ति के आने पर जो धैर्य धारण करता है, समर्थ होने पर जो क्षमा करता है, सभाओं में जो कुशलता से भाषण करता है, रणक्षेत्र में जो पराक्रम दिखाता है, यशप्राप्ति में जिसकी अभिरुचि है, वेद तथा उत्तम शास्त्रों के श्रवण का जिसको व्यसन है, ऐसा व्यक्ति स्वभाव से ही महात्मा होता है

टिप्पणी—मूल लेख में टिप्पणी की जो संख्या दी है उनकी टिप्पणियां लेख के अन्त में देखें।

स्थानों पर उनकी व्याख्यान मालाओं के जो सत्र आयोजित हुये, उनमें आत्मकथा-कथन[३] का एक विषय भी रहा है उनकी [पुणे[४] व्याख्यानमाला' के साथ] आत्मकथा विषयक व्याख्यान भी अनेक भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इसलिये हम उसकी यहां पर पुनरुक्ति अनावश्यक समझते हुये, ऊपर लिखे अनुसार उनके जीवन चरित्र की प्रमुख, विशिष्ट और महत्वपूर्ण तथा सभी के लिये वंदनीय ग्राह्य और अनुकरणीय ऐसी अनेक घटना संदर्भों का विवेचन करने का ही हमारा संकल्प है।

स्वामी दयानन्द जी जैसे व्यक्ति इस देश के दौर्भाग्य से अत्यन्त ही कम जन्म लेते हैं, यदि कोई तद्वत् विरले मनुष्य जन्म लेते भी हैं तो उनकी आयु बहुत ही कम होती है। यह आर्यावर्त्त देश का घोर दुर्दैव है कि प्रथम तो उत्तम मनुष्य व उत्तम पदार्थों की प्राप्ति अत्यन्त ही दुर्लभ है, यदि प्राप्ति होती भी हैं तो उनके दीर्घायु होने के लिये दैवानुकूलता का होना भी जरूरी है, परन्तु वैसी दैवानुकूलता अपने भाग्य हीन [आर्यावर्त्त] देश के भाग्य में नहीं है यह बात अब तक के अनुभव के आधार पर [हस्तामलकवत्] स्पष्ट ही है। न जाने क्यों सभी ओर से अपने इस भारतवर्ष को वनवास व विभिन्न आपदाओं को भोगने के लिये मजबूर होना पड़ रहा है। क्या अपने इस भारतवर्ष का प्रारब्ध ही इस प्रकार का है कि उसके सौभाग्य में मनोनुकूल कोई भी घटना नहीं घट रही है? शूर, वीर, वक्ता, पंडित, ज्ञानी दार्शनिक, कुशल-कलाकार, शिल्पज्ञ देशैकनिष्ठ व्यापार कुशल, परिश्रमी, साहसी (श्रमसाहक) धार्मिक, उदार, सदाचारी, निष्काम कर्मयोगी (निरभिलाषी) निरभिमानी, और समसामयिक घटनाओं की वास्तविकता को जानने वाले (प्रसंगानुरोधी) मनुष्य इस देश में जितने होने चाहिये यदि उतने व्यक्ति मैदान में निकल आयें तो इस देश का इससे बढ़कर और कौन सा भाग्योदय होगा?

स्वामी दयानंद जी के व्यक्तित्व में उपरोक्त कितने ही गुण एक साथ एकाकार हो चुके थे, इसीलिये यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि वे अद्वितीय पुरुष थे। वक्तृत्व शक्ति, पांडित्य, ज्ञान, (ज्ञानवत्व), देशकल्याणैकनिष्ठा, परिश्रम, साहस (श्रमसाहकता), धार्मिकता, औदार्य, सदाचारी, निष्कामकर्मयोगित्व, निरहंकारित्व, और प्रसंगानुरूप निर्णय लेने की क्षमता (प्रसंगानुवर्तित्व) इत्यादि गुण स्वामीजी में पूर्णतया निवास करते थे। इन सब गुणों का वर्णन उनके निर्वाण के पश्चात् सभी देशी और विदेशी पत्रकारों ने तथा मासिकादि ग्रन्थकर्ताओं ने अपने लेखों में किया ही है, पुनः उनके गुणों के वर्णन की आवश्यकता नहीं है, हमने ऊपर जो उन्हें एक विशेषण दिया है, उसमें उनके सभी गुणों का समावेश (अंतर्भाव) तटस्थ, निष्पक्ष व निर्मत्सरता [पूर्वाग्रह राहित्य] के साथ समुचित प्रकार से हो जाता है; ऐसी हमारी धारणा है। वह विशेषण **'अद्वितीय'** यह क्योंकि सभी लेखकों ने दयानंद जी के व्यक्तित्व में इस अद्वितीयता का प्रत्यक्ष दर्शन किया था। इस कथन में किञ्चिन्मात्र भी अतिशयोक्ति नहीं है (दयानंदजीच्या अस्तित्वात त्यांणी या 'अद्वितीयत्वा' चा पूर्ण उपभोग घेतला असे म्हणण्यास हरकत नाहीं)। स्वामीजी में धैर्य, गांभीर्य, मनोत्साह और उस के अनुरूप प्रमाद रहित आचरण ये अपूर्व एवं पेराकोटि का था, ऐसा असाधारण

पुत्र-रत्न जिस मां की कोख से उत्पन्न हुआ है, उसकी कोख धन्य है, हम यह कहे विना नहीं रह सकते कि जिस आर्य भूमि पर उन्होंने जन्म धारण किया, तथा जहां उन्होंने अपनी अज्ञान-निवारण प्रचार-यात्रा द्वारा अपने तपोमय और ज्ञान-कर्म संपन्न व्यक्तित्व का परिचय दिया, वह भूप्रदेश, वहां के लोग, वे बांधव, और वहां का समाज, सौभाग्यशाली हो गया, दयानंदजी का यहां जो हम यह वर्णन कर रहें हैं। इसमें अतिशयोक्ति का भाग किञ्चिन्मात्र भी नहीं है। उनकी जो कुछ यथार्थ-स्थिति थी और उन्हें जो जनता जनार्दन से प्रतिष्ठा मिलती थी, उसको ध्यान में रखते हुये, यहां उनके गुण वैभव का सामान्यतः (उगीच) वर्णन किया जाता है।

जितने भी ऋषि-महर्षि, साधु-संत आज तक इस भारत भूमि पर उत्पन्न (अवतरित) हुये, उन महापुरुषों की माला में 'परिगणन' की दृष्टि से ये सत्पुरुष स्वामी दयानन्द सरस्वती सभी ढंग से योग्य (सत्पात्र)हैं। इनका संपूर्ण जीवन जगद्धितार्थ संघर्ष[शील] और देशोन्नति के लिये अनथक परिश्रम करने में ही व्यतीत हुआ। उन्होंने अपनी अगाध विद्वत्ता, वैदिक धर्म के प्रति गहरी निष्ठा और तत्कालीन ज्ञानी और ऐश्वर्य सपन्न (श्रीमान्) व्यक्तियों के सहयोग से आर्यावर्त्त के चतुर्थांश भाग पर तो कम से कम अपने आलौकिक ज्ञान का प्रभाव स्थापित किया था ऐसा कहने में अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती। राजस्थान, सिंध; बिलोचिस्तान, पाकिस्तान और पंजाब [वायव्य प्रान्त] प्रदेशों में राजा से लेकर रंक तक प्राय: सभी समझदार (ज्ञाते) लोग स्वामी जी के अनुयायी बन गये थे। उन सबने स्वामी जी के अनपेक्षित व आकस्मिक निधन का दुःखद समाचार (दुर्वार्ता) सुनकर अश्रुपात किया, और सभी फूट-फूट कर रो उठे, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। कारण कि महर्षि दयानन्द का व्यक्तित्त्व ही ऐसा था कि उनकी मृत्यु से उनके अनुयायियों को अतिशय शोक [महाशोक] होना स्वाभाविक था।

अनेक लोगों से यह सुनने में आया कि दयानंद जी के इतने जल्दी निधन के पीछे कोई तो गुप्त षडयन्त्र जरूर रहा होगा, परन्तु हमारा तो इस लोकवार्त्ता पर थोड़ा सा भी विश्वास नहीं बैठता क्यों कि दयानंद जी से न तो किसी का द्वेष था और नहीं ईर्ष्या थी इसलिये गुप्त षड्यंत्र[६] से उनकी आकस्मिक मृत्यु होने का कोई कारण नहीं है। हमारा तो इस लोकवार्ता के विपरीत यह मत है कि स्वामी जी अपने परिचित व्यक्तियों में अजातशत्रु माने जाते थे तथा वे हमेशा उन (परिचित व्यक्तियों) के साथ रहते थे ऐसी स्थिति में स्वप्न में भी हम कल्पना नहीं कर सकते कि किसी षड्यंत्र के निंदित मार्ग से उनकी हत्या का प्रयेत्न हुआ होगा, स्वामी जी शारीरिक दृष्टि से बहुत ही सशक्त और उनका शरीर (अंगकाठी) बहुत ही सुदृढ़ था इसलिये इतनी जल्दी उन्हें मौत का निमंत्रण आयेगा, इसकी किसी को भी 'कल्पना' नहीं थी इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि मृत्यु के द्वारा उन पर झटपट [अति-शीघ्र] आक्रमण करने के कारण लोगों ने गुप्त षड्यंत्रों की संभावनाओं की कल्पना कर डाली, तो भी हम यहां पर यह विशेष रूप से कहना चाहते हैं—निधन से एक डेढ महीने पूर्व स्वामी जी बीमार थे और वही बीमारी कालांतर में [आगे चलकर] तीव्र हो गई और धीरे-धीरे स्वामीजी की जीवन

शक्ति का ह्रास होने लगा और उसी से उनका २९ अक्तूबर[७] सन् १८८३ में अर्थात् आश्विन वद्य✠ ३०, शक १८०५, विक्रमी संवत् १९४० के दिन अजमेर में जयपुर[८] [भिनाय] नरेश की कोठी में महानिर्वाण हुआ, स्वामी जी के आकस्मिक दुःखद निधन का समाचार तडित्यंत्र (तार) से ताबडतोड चारों ओर फैल गया, स्वामी जी की मृत्यु का समाचार पाते ही समस्त भारतवर्ष को अचानक एक बहुत बड़ा आघात पहुंचा। निधन से आठ दिन पूर्व स्वामी जी का स्वास्थ्य बिगड़ जाने का समाचार तार द्वारा बम्बई उनके शिष्यों को मिला था। उसी समय शिष्य मण्डली बम्बई से निकलकर अजमेर पहुंच गई थी। परन्तु उस समय स्वामी जी के स्वास्थ्य में सुधार देखकर यह मण्डली पुनः बम्बई वापिस लौट आई। तत्पश्चात् अचानक उनकी मृत्यु का दुःखद समाचार तार द्वारा प्राप्त हुआ। इस प्रकार इस महापुरुष (सत्पुरुष) का निधन अकस्मात् हो गया, इस कारण अनेक उनके अनुयायियों परमप्रिय शिष्यों को अतिशय महाशोक हुआ। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

स्वामी दयानन्द जी अपने प्रिय आर्यावर्त्त तथा अपने परम पूज्य [प्राण प्रिय] वैदिक धर्म के संवन्ध में कट्टर (विलक्षण) स्वाभिमानी थे, और उनका यह स्वाभिमान यथार्थ के धरातल पर आधारित था। इस विषय में लोगों को समझाने व उन्हें विश्वास दिलाने के लिये वे सदैव तत्पर रहते थे। सभी भारतीय (व्यक्ति) परस्पर एक-दूसरे का आर्य शब्द से संबोधित करें। और इसी प्रकार की परिपाटी चलाने का उनका विशिष्ट आग्रह था। तदनुसार सन् १८७२ की सार्वदेशिक (सार्वत्रिक) जनगणना वर्ष में सरकार द्वारा प्रसारित पत्रक में जातिभेद के खाने में हिंदू जाति के स्थान पर आर्य जाति का उल्लेख करने के लिये सरकार और समाज को बड़ी आस्था के साथ उन्होंने प्रेरणा[९] दी थी, परन्तु उस समय उनकी वह सूचना और आग्रह शासन और जन समुदाय के गले उतर नहीं पाया, अर्थात् दोनों में से उसे किसी ने भी स्वीकार नहीं किया—ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि आगे चलकर जनगणना की जो रपट प्रकाशित हुई, उसमें आर्य जाति का कहीं पर भी उल्लेख नहीं हुआ। हिंदू जाति की अपेक्षा आर्य जाति लिखने के आग्रह विशेष की पृष्ठ भूमि में स्वामी जी की यह भूमिका थी कि-आर्यावर्त (हिंदुस्तान) के वैदिक धर्मानुयायी आर्य थे किन्तु उनके श्याम वर्ण के आधार पर मुसलमानों ने उन्हें हिंदू कहा[१०] ऐसी स्थिति में हिंदू कहते ही केवल शाब्दिक अर्थ के आधार पर शारीरिक रंग (वर्ण) का ही भेद स्पष्ट होता है और इसीलिये स्वामीजी के मतानुसार आर्य शब्द से धर्म वा स्वदेश [निवास स्थल विशेष] (वास्तव्य-निवास भूमि) का ही भेद स्पष्ट प्रतीत होता है। इस प्रकार सरकार के लिये भी जातिभेद के कालम में आर्य शब्द का प्रयोग औचित्य रखता था, परंतु इस क्षेत्र में स्वामीजी को सफलता नहीं मिली, फिर भी उनके व्याख्यानों से और [अन्यत्र भी] निरंतर आर्य शब्द के प्रयोग से जनभाषा में आर्य शब्द का प्रयोग आपसी बातचीत में तथा लेखों में प्रचुर मात्रा में प्रयुक्त होने लगा, ऐसा आर्य शब्द का प्रयोग इससे पूर्व नहीं होता था। इस आर्य शब्द के अर्थ और उसकी-गरिमा-महिमा से भी हम अपरिचित थे। इस आर्य शब्द से आबाल वृद्ध को परिचित कराने का सम्पूर्ण श्रेय श्रीमद्दयानंद सरस्वती जी को ही है।

✠ यह निर्देश दक्षिण भारतीय पञ्चाङ्ग के अनुसार है। उत्तर भारतीय पञ्चांग के अनुसार कार्तिक बदी' जानना चाहिये।

आधुनिक काल में वैदिक धर्म के प्रति अपूर्व स्वाभिमान [सर्वप्रथम] स्वामी दयानंद जी सरस्वती ने ही अभिव्यक्त किया। उनका कहना था कि वेद ईश्वर प्रणीत हैं और उनमें सभी प्रकार का मौलिक ज्ञान और उनके बीज विद्यमान हैं और वेदशास्त्र में सदोष स्थल एक भी नहीं है। ईश्वर प्रदत्त ज्ञान और धर्मादि की व्याख्या सब उसी में है, वेदों के बाद जितने भी ग्रन्थ ईश्वर प्रणीत निर्दिष्ट किये गये हैं, वे सब झूठे हैं और शुद्ध वास्तविक ज्ञान प्रतिपादन करने वाले नहीं है। उनके मंतव्य का अनुसरण कर आगे बढ़ने के लिये उन्होंने संपूर्ण भारतवर्ष में आर्यसमाज नामक धार्मिक संस्था की स्थापना की। उन्होंने इस संस्था के द्वारा वैदिक सिद्धांतों के प्रसार का अभियान चलाया था। इस प्रकार उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज दक्षिण और उत्तर भारत और उसी प्रकार वायव्य प्रांत और पंजाब के इस विस्तृत भूभाग पर विद्यमान है और उनके मतानुयायी [वैदिक मतावलम्बी] उन-उन समाजों में हजारों की संख्या में विद्यमान हैं।" स्वामीजी का विचार था कि—हिंदुओं में अर्थात् आर्यों में 'नमस्कार' कहने और लिखने की जो परंपरा चालू है, उस पारंपरिक अभिवादन 'नमस्कार' के स्थान पर 'नमस्ते' कहने और लिखने की प्रथा प्रचलित होनी चाहिये ऐसा उन का आग्रह था। और उसके अनुरूप उन के द्वारा स्थापित आर्यसमाज के सदस्यों और आर्य परिवारों में नमस्ते कहने की प्रथा प्रचलित की, जो अब भी चालू है। इस प्रकार स्वामी दयानंद जी के वैदिक धर्म को सुदृढ़ और परिपुष्ट करने के लिये अनथक प्रयास चालू थे। यदि इस प्रयत्न का स्वरूप विशाल रूप धारण करता तो कितना अच्छा होता। यदि इस धरा पर स्वामी जी और कुछ दिन रहते तो आर्यावर्त्तवासी लोगों की दृष्टि में और अधिक विशेष उभर कर आते, पर इस प्रकार विचार का अब कोई औचित्य भी नहीं है उस दिव्य महापुरुष के साथ ही उनका स्वाभाविक और उनके [सूक्ष्म महत्प्रयास] सब प्रयास अस्त हो गये फिर उस महान्, आत्मा का पुनर्जन्म हो सकता हो तो होवे।

स्वामी जी वैदिक धर्म के कट्टर अभिमानी थे और अपने इस अभिमान की सत्यता को तर्क से सिद्ध करने का उनका प्रयास इतना स्तुत्य था कि उसमें किञ्चिन्मात्र भी अपरिपक्वता किसी को भी नजर नहीं आयी। वैदिक ग्रंथ के अभ्यास [अध्ययन] और उस पर शतशः टीकात्मक पुस्तकों के अवगाहन के कारण वे इस क्षेत्र के मर्मज्ञ बन गये थे। इस प्रकार के अभ्यास से उनकी यह धारणा बन चुकी थी कि वेद संहिता ईश्वर निर्मित हैं इसीलिये वे अपौरुषेय हैं ये संहितायें स्पष्ट रूप में ईश्वरीय वाणी हैं। इन संहिताओं के निर्माण के बाद ही ब्राह्मण ग्रन्थादि व्याख्यात्मक ग्रन्थों की रचना हुई, जिनका उद्देश्य संहिताओं के अर्थ का स्पष्टीकरण करना और इसी हेतु सरलतम सुग्राह्य व्याख्या प्रस्तुत करना था। स्वामी का मंतव्य था कि समस्त ग्रन्थ संपदा में ईश्वर निर्मित ग्रंथ ही एक मात्र वेद संहितायें हैं, और उनमें इह लौकिक और पारलौकिक सर्वांगीण ज्ञान है। प्रायः वे कहा करते थे कि वेद संहिताओं में संक्षिप्त और बीज रूप में सभी ज्ञान विज्ञान और विविध कलाओं का अन्तर्भाव है हमेशा वे इस बात का प्रतिपादन करते थे कि कालांतर में विद्वानों के बुद्धि के सामर्थ्य और शक्ति के अनुसार ज्ञान और पदार्थ आदि शस्त्रों पर पृथक्-पृथक् और अलग-अलग विशालकाय ग्रंथों की निर्मिति (निर्माण) हुई। इस प्रकार क्रमशः कला और शास्त्र ज्ञान में अभिवृद्धि होने लगी। उनके कहने का

तात्पर्य यह था कि—जिस प्रकार छोटे बालक को उसकी माता थोड़ा-थोड़ा बोलना सिखाती है और क्रमशः वह बालक जैसे-जैसे बड़ा होने लगता है, वैसे-वैसे अपनी बुद्धि सामर्थ्य के आधार पर प्रचार में आई संपूर्ण भाषा का ज्ञान संपादन [प्राप्त] कर, कालांतर में अपने बुद्धि वैभव के द्वारा विभिन्न शास्त्र-कला-ज्ञान में पारंगत हो जाता है, ठीक उसी प्रकार ईश्वररूपी माता ने अपने मानव-योनि प्राप्त बालक को वेद संहितारूपी सारगर्भित संक्षिप्त भाषामय ज्ञान प्रदान किया है और उस वेदज्ञान और वेदवाणी [वेद भाषा] के आधार पर आगे बढ़कर बुद्धिमान् आर्य बालकों ने अनेक शोध-अनुसंधान कर शास्त्र और कला विभाग के ज्ञानमय ग्रन्थों की रचना की, फिर भी ऐसी स्थिति में इन सब ग्रन्थों की रचनाओं का समग्र श्रेय केवलमात्र वैदिक संहिताओं को ही है। स्वामी जी का यह भी मत था कि—जिस प्रकार ईश्वर ने इस भूगोल पर असंख्य जड़ पदार्थों की सृष्टि की है और उसका सदुपयोग तथा उन्हें योग्यरीति से साफ सुथरा सुन्दर (नीटनेटकेपणा) मनुष्य अपनी मेधा और अनुसंधान सामर्थ्य के आधार पर कर लेता है ठीक उसी प्रकार यह बीज रूप, परन्तु सुदृढ़ (ठोकल) ज्ञान, ईश्वर ने वैदिक (वेद संहिता रूपी) भाषा के माध्यम से लोगों को दिया है, और फिर उस पर ऊपर दिये निर्देशानुसार आर्यों ने अपनी व्यापक (विशाल) बुद्धि के आधार पर नाना प्रकार के ग्रन्थ साहित्य की रचना की।

दयानन्द जी कठोर तपस्वी (दृढाभ्यासी) जितेन्द्रिय (निग्रही), और महान् विद्वान् थे, और ये सब गुण उनके [भाषण] उपदेश करने की प्रवृत्ति में अत्यन्त ही सहयोगी सिद्ध हुये। उनकी जो आत्मकथा प्रकाशित हुई है, उससे यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि उन्होंने लगभग ४० वर्ष तक निरन्तर [वेदादि विविध आर्ष ग्रन्थों का] अध्ययन किया और उस अध्ययन की सफलता का ही परिणाम था कि उन्होंने लगभग १५ वर्ष तक लोगों को अपने उपदेश [वेदोपदेश] द्वारा तृप्त किया। इसी कारण आज उनकी कीर्ति दिग्दिगंत में फैली हुई है। स्वामी दयानन्द जी जैसी प्रवचन शैली में, बहुत ही कम लोग, उपदेश दे पाते हैं। (थोड़े लोगों को ज्ञात हो पाती है)। (सावेल)। उपदेश [या उपदेशक] के लिये जो वक्तृत्व या वक्ता का गुण होना जरूरी है, वह गुण उनमें भरपूर था। उनकी वाणी का माधुर्य, जिन्होंने उनके उपदेशात्मक व्याख्यान सुने हैं, उन्हें ही मालूम है। उनके अधिकांश भाषण आर्यभाषा [हिन्दी] में, कोमल और मधुर (मिट्ट) शब्दों से भरपूर, धाराप्रवाह (अस्वलित) शैली में, ज्ञानोपदेश की रसीली मधुरता से रससिक्त हुआ करते थे। अनेक बार हमने श्रेष्ठ विद्वान् श्रोताओं के मुख से यही सुना है कि—दयानन्द जी का प्रत्येक व्याख्यान मधुर ज्ञान रस से परिपूर्ण मधुमक्खी के छत्ते (पोले) के समान था। और वास्तव में उनके व्याख्यान थे भी वैसे ही। निःसन्देह इसकी विश्वसनीयता उन व्यक्तियों के लिये स्वतःसिद्ध है, जिन्हें उनके व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। शहद के छत्ते पर जैसे मधुमक्खियां इतनी ज्यादा संख्या में बैठ जाती हैं कि सूच्यग्र जितना भी स्थान नहीं रह पाता और उस कारण मधु [मक्खियों का] छत्ता अत्यन्त ही लम्बा (लोंबले) हो जाता है, ठीक उसी प्रकार स्वामी दयानन्द जी का व्याख्यान रूपी मधुगृह मधुमक्षिका रूपी श्रोताओं की भीड़ के कारण अत्यन्त ही लम्बा और विशाल नजर आता था। उनकी

सरल और निर्बाध [धाराप्रवाह] ओजस्वी वाणी के प्रारम्भ होते ही श्रोतृ वृंद बिल्कुल तल्लीन और शांत हो जाता था, अतः उन्हें कोई भी और आवाज सुनाई नहीं देती थी। उनकी व्याख्यान शैली अत्यन्त ही सरल और छोटे बच्चों को भी समझ में आने जैसी थी। और अपने प्रतिपादन व वर्ण्य विषय को श्रोताओं के मन-मस्तिष्क में सहज-सरल रीति से समझा सकने (उतारने) में उनकी प्रतिभा अद्वितीय थी। उनको अगाध विद्वत्ता में वह ताकत थी कि अपने व्याख्यान में किसी भी प्रश्नकर्त्ता को वे अनुत्तरित कर देते थे। हमने सुना है कि स्वामी जी ने दो वर्ष पूर्व [सन् १८८२] अपनी अन्तिम बम्बई यात्रा के अवसर पर आर्यसमाज बम्बई के खुले मैदान में (उपडचाहवेंत) व्याख्यान दिये थे, उस समय एक बार (प्रसंगी), तो एक व्यक्ति ने अपने स्नेही से हठात् यह कहा था कि –"लगता है वाग्देवी और विद्यादेवी ने इस भव्य संन्यासी के गले में अपनी माला ही डाल दी है"। वेद वेदांगों के पारंगत (पंडित) दयानन्द अनेक शास्त्रों के अवगाहन कर्त्ता थे अतएव उनके प्रवचन और उपदेश इतनी जल्दी (चपखल) समझ में आ जाते थे कि बड़े-बड़े पंडित आश्चर्य चकित हो उनके व्याख्यान सामर्थ्य की स्तुति और प्रशंसा कर उठते थे। स्वदेशाभिमानी स्वामी दयानन्द जी में प्राचीन विद्याओं के प्रति भी अगाध श्रद्धा थी और—'**जसें बोलावें तसे चालावें**' में उनकी अप्रतिम दृढ निश्चयात्मक आस्था थी वे निर्भीक थे, उन्हें स्व-मत प्रतिपादन में अपने प्रचण्ड विद्या बल के कारण कभी, कहीं पर, किञ्चित् सा भी भय प्रतीत नहीं होता था। अवास्तविक और कपोलकल्पित बातें उनके व्याख्यानों से कभी भी व्यक्त नहीं होती थी, अब यह बात सत्य सिद्ध हो चुकी है कि उनके विचार और उनका प्रतिपाद्य विषय जिन्हें अमान्य होता था वे व्यक्ति स्वामी जी के व्याख्यानों और वर्ण्य विषय से संभव है असंतुष्ट होते होंगे, तो भी यह निर्विवाद है कि उनकी विद्वत्ता अभिनंदनीय थी, वैयक्तिक ईर्ष्या-द्वेष और मतभेदों को भुलाकर सभी उनका समुचित आदर करते थे। वे यायावर थे, इसलिये उनका निवास किसी देश विशेष में नहीं था, वे सदैव उपदेशक और धर्म प्रचारक के रूप में ही सर्वत्र भ्रमण कर अपने परम पूज्य धर्म और उसके [वैदिक] सिद्धांतों का किसी प्रकार के जाति वर्ग का भेदभाव न रखते हुए सभी को उपदेश दिया करते थे। इस घुमक्कडी स्वभाव के कारण उनके व्यक्तित्व और विचारों को देखने तथा सुनने का सौभाग्य अधिकांश लोगों को प्राप्त हुआ। उनके रसमय सारगर्भित और गहन विचारों से युक्त प्रवचनों के प्रभाव से लोग उनके आदेशों की ओर आकर्षित हुये और उनके कट्टर भक्त बन गये। परन्तु स्वामी जी के संदर्भ में यह नहीं कहा जा सकता कि जनमानस में उनके प्रति जो भक्ति है वह आगे भी इसी प्रकार अव्याहत रूप से बनी रहेगी। इसमें किसी प्रकार की शंका नहीं कि स्वामी जी का विद्यावैभव और उनका अनवरत पुरुषार्थ उनके पश्चात् भी इस भूमण्डल पर अक्षुण्ण रहेगा।

जनमानस में दयानन्द जी के विचारों की महत्ता और उदात्तता के प्रति (कारण) जो संमान है, उसकी खोज करने पर यह सिद्ध होता है कि–यह सब केवल उनके स्वभाव वैशिष्ट्य के कारण है। प्रतिष्ठा व लोकप्रियता की अभिलाषा रखनेवाले सभी व्यक्तियों के लिए इस धरा पर अनेक उपकरण और साधन विद्यमान हैं–जैसे श्रेष्ठ संपन्न और कुलीन कुल में होना या विद्वान् पिता का

पुत्र होने का सौभाग्य प्राप्त करना, अथवा अपूर्व और अद्वितीय गुण पराक्रम से समन्वित होना, या (किंवा) उन अभूतपूर्व गुण पराक्रम के (अनुसार) बल पर दुनिया में कुछ हलचल और उथल-पुथल करनी चाहिये, जिससे जनमानस का ध्यान अपनी ओर आकर्षित हो तथा हम विश्वप्रसिद्ध हों। इस में कोई संशय नहीं कि आज तक जितने भी प्रसिद्ध पुरुष हुये हैं, वे उपरोक्त किसी भी एक गुण के कारण ही प्रसिद्ध हुये होंगे। उपरोक्त गुणों में से सब से अन्तिम कर्त्तृत्वमय गुणों द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करना अत्यन्त ही प्रशंसनीय कार्य है। तदनुसार ही श्रीमान् स्वामी दयानन्द जी सरस्वती गुणी और पराक्रमी हैं। इस प्रकार (तदनुरूप) उन्होंने इस धरा के धर्म संबन्धी अनेक क्षेत्रों में बहुत बड़ी हल-चल उत्पन्न कर दी इस कारण आर्यों (भारतीयों) के धार्मिक विचारों में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ और ऐसा परिष्कृत वैदिक-धर्म समस्त आबाल वृद्ध के लिये सुपरिचित हो गया। इसी कारण सामान्य जनता से लेकर प्रकांड पंडितों तक स्वामी जी परिचय हुआ। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि वैदिक धर्म के सत्य संशोधन का महत्प्रयास स्वामी दयानंद जी की तरह इन दिनों अन्य किसी व्यक्ति ने किया हो, और इसी कारण वैदिक साहित्य का रुचिपूर्ण अध्ययन मनन और अनुसंधान जितना स्वामी जी के द्वारा हुआ उतना अन्य किसी भी व्यक्ति के द्वारा नहीं हुआ। वेदों में अनेक दोष बताये जाते थे, जिससे लोगों में यह भावना दृढ हो चुकी थी कि वेदों के अनेक स्थल सदोष हैं, परन्तु उन सभी सदोष स्थलों का युक्ति पूर्ण और समुचित उत्तर देने के लिये स्वामी जी ने महान् और अपूर्व प्रयास किया, जिससे वेदों की वास्तविकता का ज्ञान पाठकों को मिला। स्वामी जी का वह प्रयास उनके वेद भाष्य [और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका] के रूप में विद्यमान है। स्वामी दयानन्द जी के वेदभाष्य की प्रसिद्धि दक्षिण में कन्याकुमारी से लेकर उत्तर में हिमाद्रि तक और पश्चिम में अटक से लेकर पूर्व दिशा में ब्रह्मदेश तक हो गई। वास्तविक रूप में यह भाष्य 'अपूर्व' था। इसकी विशेषता यह थी कि यह भाष्य आर्य-भाषा (हिंदुस्तानी) में प्रकाशित होने के कारण सभी लोगों को स्वाध्याय के लिये सुलभ हुआ और सभी वेदों के सत्य अर्थ का ज्ञान हुआ। इस भाष्य की भूमिका भी विशाल है और इस भूमिका में स्वामी जी ने वेदभाष्य के उद्देश्यों को स्पष्ट किया है, परन्तु यह इतना बड़ा प्रयास स्वामीजी के आकस्मिक निधन से अपूर्ण ही रह गया है। अतः इस वेदभाष्य के पूर्ण (फिरून उत्थापन) होने की संभावना नहीं है।

सारांश यह है कि स्वामी जी ने वेदों की महत्ता और उससे होने वाले अखिल भूमंडल के प्राणिमात्र के लाभ को अत्यन्त ही श्रेष्ठ शैली में वर्णित किया तथा बड़े ही आत्मविश्वास के साथ अपने विषय प्रतिपादन के लिये वे दृढ़ प्रतिज्ञ रहे। यह कार्य उनकी विद्वत्ता के अनुरूप असाधारण और वंदनीय रहा, इसमें किञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं है।

स्वामीजी की तर्कशक्ति एवं संयोजन शक्ति अद्वितीय थी। इसकी अनुभूति उनके उपदेशात्मक व्याख्यानों से अनेकों को हुई है। [वे संप्रति हमारे बीच जीवितरूप में नहीं है] तो भी उनके ग्रन्थ तो आज भी उनकी तार्किकता और योजना शक्ति की गवाही देने में समर्थ है। हमारे विचार से इस कथन में किसी प्रकार की साहसिकता और अतिशयोक्ति नहीं है कि उन्होंने जितना श्रेष्ठ एवं

सरल (बालबोध) शैली में हमें वेदों का अर्थ दिया, वह [उतना] उदात्त कार्य " आज तक अन्य किसी से संभव नहीं हो सका, और हमारे मत में सहसा होगा भी नहीं। उनकी बुद्धिमत्तापूर्ण एवं विचक्षण वेद भाष्य शैली के कारण किसी भी धर्म और संप्रदाय का लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् उनके सामने लड़-खड़ा जाता था (लटपटून जाई)। हमारे इस कथन में किसी भी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं है कि—स्वामी जी के तेजस्वी विद्या-प्रतिभ रूपी दिवाकर के समक्ष अन्य विद्वानों की बुद्धिरूपी किरणें निष्प्रभ और दयनीय (गालण) हो जाती थीं। विलक्षण विद्वत्ता और तदनुरूप उनकी निस्पृहता रूपी देवताओं (दिव्य गुणों) के मिलाप के कारण वह [महा] पुरुष इतना बड़ा वीर शिरोमणि हो गया कि उसे पराजित (परास्त)करने के लिये कैसा भी रथी, महारथी खुले मैदान [सभांगणी] में उपस्थित हुआ तो वह भी उन (स्वामी जी) के मुख से 'भोः पंडिताः !' इस प्रकार का संबोधन सुनते (होते) ही अपनी समस्त षड् शास्त्र युद्ध सामग्री के साथ निष्प्रभ और निष्क्रिय हो जाता था। इसका यह मतलब नहीं है कि स्वामी जी मैदान में उतरे कि प्रतिपक्षी विद्वान् से असभ्यता, उद्दंडता और निरं-कुशता से पेश आते हों, और उनसे वादविवाद या शंका-समाधान करने के लिये आये शास्त्री, वैदिक या पंडित निर्बल, दयनीय या गप्पिष्ट होते हों और इसलिये वे परास्त (गालण) हो जाते थे। स्वामी जी के अद्भुत पांडित्य से प्रभावित हो उनकी जीभ लड़खड़ा जाती थी और मुंह बंद हो (मुंह को ताला लग) जाता था, स्वामी जी की तार्किकता, प्रतिभा और उनकी प्रतिपादन या वाद-विवाद की शैली को देखकर प्रतिपक्षी विद्वान् पूरी तरह घबरा (गांगरून) जाते थे स्वामी जी जैसी बुद्धि वैभव, उन जैसी तार्किकता, और उन जैसी शास्त्रार्थ (वाद) शैली अन्य पंडितों में बिलकुल भी न होने के कारण उनकी बुद्धि जडवत् हो जाती थी। इस प्रकार की अनेक घटनायें हमने अनेक स्थानों पर प्रत्यक्ष देखी हैं और उन क्षणों में हमें दयानन्द जी के असाधारण प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व का पूर्ण विश्वास हो चुका था। ऐसे गुणशाली व विद्वत् शिरोमणि महापुरुषों की यशोगाथा की सुगन्ध युक्त पराग से आकृष्ट होकर जनमानस मुग्ध हो ही जाता था। परन्तु इसमें (यहां पर) दुःख की बात यही है कि—स्वामी दयानन्द जी के इस बुद्धि वैभव और सर्व गुण सम्पन्नता का परिचय जैसा अन्य लोगों को प्राप्त होना चाहिये था, वैसा नहीं हो पाया और इस कारण उस महापुरुष को सर्वत्र जिस स्तर की प्रतिष्ठा या आदर मिलना चाहिये था वैसा आदर नहीं मिल पाया। पुरातन काल से हमें यही अनुभव आता रहा है कि--श्रेष्ठ पुरुषों की योग्यता उनके जीवन काल में लोगों की समझ में नहीं आती, और इसी कारण उस व्यक्ति का जैसा मूल्यांकन होना चाहिये, वैसा मूल्यांकन उस काल में नहीं हो पाता। परन्तु कालांतर में वे लोग अपने आप ही उस विषय का वास्तविक ज्ञान होने पर पश्चाताप के साथ उस महापुरुष के यशस्वी व्यक्तित्व (सत्कीर्ति) के गीत गाने लगते हैं। इस संदर्भ में आदि काल से वर्तमान कालीन ऐतिहासिक-घटनाओं के हजारों उदाहरण दिये जा सकते हैं। यदि इसी प्रवृत्ति के अनुसार ही स्वामी दयानन्द जी के प्रति भी लोगों की उदासीनता रही हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसे सौभाग्यशाली सत्पुरुष इस धरती पर कम ही हुये होंगे कि जिन के जीवनकाल में और तत्पश्चात् समाज के सभी व्यक्तियों ने उन्हें एक जैसा ही समान रूप से आदर

दिया हो। इस कारण स्वामी दयानंद जी के संबन्ध में भी कहीं-कहीं पर जो लोगों ने आंशिक उपेक्षा व तटस्थता दर्शायी है, उसके प्रति अत्यधिक दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है। स्वामी दयानंद जी के गुण कर्म-स्वभाव का योग्य मूल्यांकन कर यदि उसे आर्यावर्त्त में (पण्यागारांत) सभी जगह समान रूप से न्याय न भी मिला हो, तो भी अब हमारा यह आत्म विश्वास हो गया है कि उनके गुण-कर्म-स्वभाव की परख करनेवाले पारखी अब सामने आ रहे हैं। अब इसमें कोई शक नहीं कि निश्चित रूप से स्वामी जी की पहिले से अधिक प्रतिष्ठा (सन्मान) होगी।

स्वामी दयानंदजी सरस्वती का आचरण यावज्जीवन अत्यंत ही निर्मल और निष्काम कर्मयोगी सम रहा है। उनका तपोमय ब्रह्मचर्य और तदनुसार उनका तेजस्वी स्वरूप अत्यंत ही प्रशंसनीय और समादरणीय था। संसार सुख की उपेक्षा कर परोपकार की भावना से सद्धर्म की स्थापना के लिये जिन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था, और 'जो लोकापवाद', लोकनिंदा और [रूढिवादी लोगों से प्राप्त] विविध शारीरिक पीडाओं को सहन करते हुए, पक्षपातरहित और निरभिमानी होकर सद्धर्म और 'सत्यार्थप्रकाश' के ध्येय पथ का ही अनुसरण करते रहे, उनके दृढ निश्चय, मनोधैर्य और स्वदेशोन्नति की कामना के संदर्भ में तो कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है। अर्वाचीन काल में तो इस देश में ऐसा अद्वितीय महापुरुष दूसरा कोई भी नहीं हुआ, हां यह गुण आंशिक मात्रा में (महाराष्ट्रीय) सुप्रसिद्ध ब्रह्मचारी विष्णु बुवा में थे, उनके आचार-विचारों में भी एकरूपता और समानता थी, परंतु स्वामी दयानंद सरस्वती के समान उनमें प्रकांड पांडित्य और अपूर्व असाधारण विद्वता न थी। ऐसे महापुरुषों के आविर्भाव के लिये प्रदीर्घकाल और महत् पुण्य संचय की आवश्यकता होती है। उसके बिना ऐसे सत्पुरुषों और तपस्वियों का जन्म ही नहीं होता। इसलिये दयानंद जी के संबन्ध में गुणगान न करने का कारण (देव्हारे माजविण्यास कारण) यह है उनकी योग्यता ही ऐसी थी कि हमें गुणगान करना ही पड़ रहा है।

स्वामी जी के प्रयासों से असंभव प्रतीत होने वाली घटनायें भी संभव हो सकीं, हमारा यह विश्वास है कि उनकी कीर्ति अजरामर रहेगी, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उत्तर भारत की घटनाओं पर दृष्टिपात करने से मिलता है। उत्तर भारतीय जनता यवनों (मुस्लिमों) के सतत संपर्क से अपनी वैदिक आचार संहिता को बिलकुल भूल चुकी थी और नाममात्र की हिंदू रह गई थी। यह तो स्पष्ट नजर आता है कि वे अंधविश्वास से परिपूर्ण रूढिबद्ध आचार-विचार के अंधभक्त बन गये थे। संस्कृत साहित्य के ज्ञान-विज्ञानात्मक ग्रंथों की ओर तो उनका किञ्चिन्मात्र भी ध्यान न था। परंतु स्वामी दयानंद जी सरस्वती के महान् प्रयत्नों से जो क्रांति हुई उसी का परिणाम था कि उत्तर भारतीयों का ध्यान संस्कृत विद्या और अपौरुषेय वैदिक धर्म की ओर आकृष्ट हुआ और वे सब स्वामीजी के सहयोगी तथा अनुचर हो कर वेदोद्धार का प्रयत्न करने लगे। इस कार्य में स्वामीजी को अनेक विघ्न बाधाओं का सामना करना पड़ा। अनेक पंडितों को दयानंद जी के विचारों और उपदेशों में पाखंण्ड का आभास हुआ, उन्होंने उनसे विभिन्न स्थलों पर शास्त्रार्थ भी किये। परंतु स्वामी जी के पास की युद्ध सामग्री परिणामकारी, प्रभावशाली और तेजस्वी थी, इसीलिये उन्होंने हर जगह

पर प्रतिपक्षियों को परास्त कर यह सिद्ध कर दिया कि मेरे वैदिक आचार और विचार वास्तविक धरातल पर ही आधारित हैं। स्वामी जी के शास्त्रार्थ समर में विजयी होने का परिणाम यह होने लगा कि निरंतर उनके अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी और वेद वेदांग-उपांगादि शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन की जो प्रक्रिया लुप्त प्रायः हो गई थी वह पुनरुज्जीवित हुई। फलस्वरूप जनमानस में वैदिक ग्रन्थों के प्रति स्वाभिमान का भाव जागृत हुआ, वेदों का गौरव बढ़ने लगा। स्वामी जी के इसी अव्याहत पुरुषार्थ से और उनकी सच्छिष्य मंडली के सहयोग से उत्तर भारत में संस्कृत अध्ययन के विद्यालय और शिक्षण केन्द्रों की स्थापना[13] होने लगी और अब दिन प्रतिदिन उधर संस्कृत वेद विद्या की वृद्धि होने लगी है। इसमें किञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं है कि स्वामी जी के प्रयत्नों को, जो यह (इतनी) सफलता मिली वह उनकी असाधारण परोपकारी वृत्ति और सद्धर्म निष्ठा का ही परिणाम (फल) है। स्वामी जी को अनेक बार दुराग्रही वितण्डावादी, हठी, व तथाकथित विद्वानों से भी शास्त्रार्थ युद्ध में संघर्ष करना पड़ा। इस संदर्भ में फर्रुखाबाद के पं० गोपालराव हरि शर्मा नामक सज्जन ने दयानन्द दिग्विजय [दयानन्ददिग्विजयार्क] नामक एक ग्रन्थ लिखा है। इसमें पंडित जी ने अधिकांश सभी शास्त्रार्थ समरों का वास्तविक विवरण दिया है। उस ग्रन्थ से स्वामी जी के वैदिक धर्माभिमानी व्यक्तित्व का यथार्थ और स्पष्ट चित्र हमारे सम्मुख उभरता है, उपदेष्टा स्वामी दयानन्द जी की जय-विजय यात्राओं के वर्णनों को पढ़कर (उन विजय यात्राओं के कारण) परमानन्द का अनुभूति होती है, लोगों का अब यह मत बन गया है कि प्रदीर्घ काल से वेद क्या हैं ? उनमें किन वषयों का प्रतिपादन हुआ है ? उन वेदों में जो कुछ भी प्रतिपादित है वही किस आधार पर सत्य और यथार्थ है ? इत्यादि जो लोगों की शंका-प्रतिशंका थी, और वैदिक धर्म के प्रति जो लोगों में अत्यन्त उदासीनता थी वह दयानन्द जी की इन अनवरत दिग्विजय और उपदेश यात्राओं से लगभग नष्ट हो गई हैं और इस प्रकार वैदिक धर्म का पुनरुद्धार ही हो गया है हमारा यह शतप्रतिशत विश्वास है कि—वेदोद्धार जैसा महत् कार्य स्वामी दयानन्द जी के सिवाय अन्य किसी पंडित से संभव नहीं था।

स्वामी जी से पूर्व भी अनेक ईश्वरभक्त, उपदेशक, सदाचारी, योगी-कर्मयोगी, परोपकारी, साधु संन्यासी हुये, और स्वामी जी के समय में भी थे, तथा अब स्वामी दयानन्द जी के बाद भी होंगे, परन्तु हमारा यह मत है कि भावी साधुओं में स्वामी दयानन्द जी के समान व्यक्तित्व उभरने में बहुत (सा) समय लगेगा। दयानन्द जी के समय बाबू केशवचन्द्र सेन और महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर जैसे साधु महापुरुष थे, उनका स्वभाव और उनका 'यौगिकाचरण' भी अत्यन्त ही प्रशंसनीय था। उसी प्रकार उन नवीन [ब्रह्मसमाजी] धर्मोपदेशकों के आदि पुरुष राजा राममोहनराय भी एक महान् [समाज सुधारक] साधु और ईश्वरभक्त हो गये हैं। उन्होंने वेदों [उपनिषदों] के आधार पर एकेश्वरवाद की स्थापना की थी[14]। उनके आसन पर देवेन्द्रनाथ जी आसीन (आरूढ) हुये। तत्पश्चात् इस एकेश्वरवादी दल से केशवचन्द्र सेन पृथक् हो गये। उनके धर्मोपदेशों की नींव और उपदेशों का प्रासाद केवल मात्र ईसाइयों की धर्मपुस्तक बाइबिल और अपनी निर्मल बुद्धि के तर्क पर

ही आधारित थी। और इसकी भी बारंबार प्रतीति होती है कि उन्हें स्वदेश तथा अपने पूर्वजों के ग्रन्थों में कुछ भी ग्राह्य और स्वीकरणीय प्रतीत नहीं हुआ, और न उन्होंने उस दिशा में कुछ प्रयास ही किया। यह बात तो निर्विवाद कही जा सकती है कि उन्हें अपने ब्रह्मसमाज के उपदेशों की भूमिका लिखने के लिये बाइबिल और उस पर अनेक पादरियों द्वारा लिखी टीका व धर्मकथाओं के अतिरिक्त अन्य कोई धर्मग्रन्थ नजर नहीं आया। जनवरी १ सन् १८७७ में दिल्ली में रानी विक्टोरिया के चक्रवर्तिनी [राजराजेश्वरी] पद से विभूषित करने के संदर्भ में इङ्गलैण्ड के भारतीय प्रतिनिधि वायसराय लार्ड लिटन की अध्यक्षता में एक बहुत बड़ा दरबार आयोजित किया गया था। इस समारोह में श्रीमत्पंडितवर्य स्वामी दयानन्द जी सरस्वती और बाबू केशवचन्द्र सेन इन दोनों ही महापुरुषों को निमन्त्रित किया गया था उस समय दोनों महान् धर्मोपदेशकों की परस्पर भेंट हुई थी और दोनों ने अपने-अपने विचारों को स्पष्ट रूप से एक दूसरे के समक्ष प्रस्तुत किया था। उस समय दोनों की विद्वत्ता व उनके धर्माभिमान के आदि मूल व आधारभूत महत् ग्रन्थों का उपस्थित जन समुदाय को परिचय प्राप्त हुआ था। उस समय सौभाग्य से हम [लेखक] भी वहां पर उपस्थित थे, इसलिये उन दोनों महोपदेशकों के परस्पर मिलन के अद्भुत श्रेष्ठों, तथा आपसी वार्त्तालाप व्याख्यान–संभाषणादि की झलकियां भी हमें साक्षात् देखने और सुनने को मिल सकीं। यह हमारे लिये एक अपूर्व संयोग ही था। इस समय यह स्पष्ट हुआ कि केवलमात्र भारतवर्ष की प्राचीनतम वेद संहिता ही स्वामी दयानन्द के उपदेशों की मुख्य आधारशिला है। इस आधार पर किसे भी यह बात ध्यान में आयेगी कि स्वामी जी का धर्माभिमान कितना अडिग था, इस बात का निश्चयात्मक निर्णय तो आर्य बन्धु गण सहज ही कर लेंगे, कि ईसाई धर्म से चिपके या बंधे हुए धार्मिक मतों का अहंभाव (प्रौढी) विशेष है, या मूल वेद संहिताओं में प्रतिपादित निर्दोष शुद्ध वेदमत का प्रतिपादन महत्त्वपूर्ण है। इसका निश्चयात्मक निर्णय तो आर्य बंधु गण सहजता और सरलता से कर ही लेंगे, इसलिये उस संदर्भ में यहां पर विस्तार से कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है। बाबू केशवचन्द्र सेन ने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि अपनी धर्म-मत [ब्रह्मसमाज-वेदांन्त] प्रतिपादन शैली ईसाई मत से प्रभावित है। यही कारण था कि उनके धर्मोपदेश में, स्वामी दयानन्द जी के धर्मोपदेश की तुलना में आर्यत्व का तेज नहीं था। स्वामी दयानन्द जी की उपदेशशैली और स्वधर्माभिमान, शतप्रतिशत वेदानुकूल होने से उनका आर्यधर्मप्रतिपादक आचार्य या आर्य गुरु की पदवी से विभूषित होना योग्य है, राजाराममोहनराय द्वारा स्थापित मूल ब्रह्मसमाज के दो भाग हुये, उनमें से एक आदि ब्रह्मसमाज और दूसरा केशवचन्द्र सेन का भारतवर्षीय समाज, और इस भारतवर्षीय समाज का एक और भाग हुआ, जो 'साधारण समाज' के रूप में प्रसिद्ध हुआ, परन्तु स्वामी दयानन्द जी ने तो आर्यसमाज की अनेक संस्थायें (शाखायें) विभिन्न स्थानों पर स्थापित की हैं।

दयानन्द जी में दो अद्भुत गुण थे—एक असाधारण तार्किकता (वाग्मिता) और दूसरी संयोजन (योजना) शक्ति, ये दोनों गुण अन्य विद्वानों में दिखलाई नहीं देते थे। और विद्वान् तो परंपरागत विचारों और तर्कों की ही जुगाली (चर्वण) करते थे। और उन्हीं से चिपके रहते थे। सभी

जगह यही अवस्था दृष्टिगोचर होती थी, परन्तु स्वामी दयानन्द जी की बात तो सबसे निराली थी उन्होंने जड़ व मूर्खतापूर्ण कुविचारों और कुतर्कों का कभी भी आश्रय नहीं, लिया। स्वामी जी द्वारा लिखित सत्यार्थप्रकाश, कर्म पद्धति [पंच महायज्ञविधि, संस्कारविधि] ऋग्यजुर्वेद भाष्य, वेदांत ध्वांत निवारण आदि ग्रंथों से उनके प्राणवान् स्फूर्तिमय विचारों व उनकी विकसित बुद्धि का स्पष्ट परिचय मिलता है। स्वामी जी की पुणे व्याख्यानमाला पर आधारित टिप्पणियों को देखने पर यह विश्वास हो जाता है कि उनमें परिपक्व स्वतन्त्र विचार तथा विस्मयजनक असाधारण तर्क शक्ति विद्यमान है। फिर भी स्वामी दयानन्द जी को जैसा सम्मान पुणे में मिलना चाहिये था, वैसा नहीं मिल पाया। स्वामी जी का निष्कारण छल और अपमान करके वहां के कुछ चाटुकार लोग जनसाधारण में हंसी के पात्र बन गये। स्वामी जी के बारे में पुणे में जो भी हुआ वह बहुत बुरा हुआ। हमने तो यह अनुमान लगाया था कि—दयानन्द जी की विद्वत्ता, उनकी सारगर्भित और रसभरी हास्य व्यंग्यात्मक व्याख्यान शैली और उनका धर्म प्रसार का सद्विचार पुणे नगरवासियों की ओर से अत्यन्त ही आदर भाव से समाहत होगा, पर वैसा कुछ भी नहीं हुआ, हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि—'यह पुणे नगर वासियों ने बहुत बड़ी लापरवाही 'की'। पुणे में श्रेष्ठ विद्वत् समाज है, इसलिये वहां पर विद्वानों की विद्वत्ता का मूल्यांकन होगा, यह विचारकर दूर-दूर से लोग पुणे में आते हैं, पर दयानन्द जी के साथ तो ऐसी असंभव घटना घट गई, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी इसमें किञ्चिन्मात्र भी संशय नहीं कि उस समय पुणे नगरवासियों की ओर से जो अश्लाघ्य और अश्लील व्यवहार हुआ, जिससे पुणे वालों ने अपनी ही कीर्ति को कलंकित कर लिया, उन्होंने इससे स्वकीर्ति पर बहुत बड़ा दाग लगा लिया, कुछेक लोग यह भी कहते हैं कि पुणेवासियों का स्वामी पर संतप्त होने का (संतापून पिसालण्याचें) कारण यह था कि स्वामी जी मूर्ति पूजकों को 'असह्य' होने वाले विचार व्यक्त करते थे, और इस प्रकार उनके द्वारा मूर्ति पूजकों के हृदय को ठेस पहुंचाने वाली घटना घट गई। यदि यह सच है, तो भी यह स्पष्ट है कि—व्याख्यान में ऐसा कोई विचार व्यक्त नहीं हुआ होगा कि वाग्युद्ध [शास्त्रार्थ] की अपेक्षा अन्य किसी निंदनीय उपायों से बदला लेने की नौबत आये, परन्तु पुणेवासियों ने उस समय, अपनी सब शांति, गांभीर्य और गुण दोष परीक्षण की प्रणाली की अवहेलना कर अत्यन्त ही ईर्ष्या द्वेष की भावना से स्वामी जी को अपमानित करने का अतिशय निंदनीय कर्म किया, जिसका उन्हें आंशिक रूप में प्रायश्चित्त भी भोगना पड़ा[१६], परन्तु कम से कम, यह सब, (पण्डित) स्वामी दयानन्द जी के पुणे आगमन के समय में तो नहीं होना चाहिये था। इस बात की अनुभूति भी तत्कालीन अनेक विद्वानों को हुई थी और उन्होंने इस संदर्भ में स्वामी जी के पास जाकर अपना खेद भी व्यक्त किया था। खैर हमेशा ही अविचारी (सोरट) लोगों की ओर से साधुओं का छल और अपमान (हुड) होता है और नादान लोगों की इन निंदनीय कर्मों के बाद ही दुनिया को सत्पुरुषों की (कसौटी समझा गया है) वास्तविकता समझ में आती रही है। उस समय स्वामी जी का बहुत अधिक अपमान किया गया, फिर भी वे धीरोदात्त महापुरुष के धीर गंभीर व्यक्तित्व को, थोड़ा सा भी विचलित कर पाने में, असफल और असमर्थ ही रहे।

जो किसान, मूढ, नासमझ और संकुचितवृत्ति के होते हैं, उन्हें यदि एक बार बम्बई ले जाकर वहां के अनेक प्रकार के यांत्रिक कल कारखानों व रेल आदि से परिचित कराया जाय, तो वे लोग जिस प्रकार उस भौतिकता से समृद्ध आधुनिक नगरी को देखकर कुछ आश्चर्यचकित हो, और कुछ घबराये-घबराये से यही महसूस करेंगे कि—यह सब क्या अद्भुत अतर्क्य और विचित्र है, ठीक उसी प्रकार हमारी तरफ [पुणे] के अल्पज्ञ तथाकथित लब्धप्रतिष्ठ और संकीर्ण विचारों के (आशाल-भूत) शास्त्री गण भी स्वामी दयानन्द जी के प्रकांड पांडित्य की प्रतिभा (यन्त्र) को देखकर (बुझन व गांगरून जाउन) विचलित हो गये थे, और उनकी बुद्धि व विचार शक्ति [स्वामी जी के सामने] निष्प्रभ हो गई थी। खैर, इतनी ही बात नहीं, यह तो प्रसिद्ध ही है कि रामानुज कमलनयन आचार्य जैसे घमंडी विद्वानों की स्वामी जी की विद्वत्ता एवं शास्त्रार्थ के सामने बोलती बन्द (फे–फे उडाली) हो गई थी। नासिक, पुणे, बडोदरा, अहमदाबाद, मुंबई व काशी के पण्डितों की भी ऐसी ही दयनीय स्थिति बन गई थी। स्वामी जी के मंडितपक्ष को, कोई भी विपक्षी विद्वान् खण्डित करने में सफल नहीं हो पाया था, यदि हुआ तो भी ईमानदारी से नहीं, बेईमानी से हुआ। वह विजय और सफलता तो वास्तविक सच्चाई से कोसों दूर ही रही है। इन सभी स्थानों पर सभी प्रकार के, समस्त संप्रदायों के लोगों द्वारा, स्वामी जी की अपूर्व बुद्धिमत्ता की कद्र की गई थी। हम यह निःसंशय और दृढता-पूर्वक कहते हैं, कि पश्चिम के विद्यासागर, बुद्धिमान् तथा बुद्धि वैभव की खान कहे जाने वाले अडामस्मिथ, बेकन, मिल आदि जो धुरंधर महापण्डित हुये, और जिस प्रकार अपने देश में प्राचीन काल में कणाद, गौतम अथवा शंकराचार्य जैसे वेदशास्त्र पारंगत व धर्म [दर्शन] प्रवर्त्तक (संस्थापक) हुये, स्वामी जी (की मूर्त्ति) उनकी पंक्ति में (तोडीची) बैठने योग्य थे—फिर स्वामी दयानन्द जी की इतनी प्रचण्ड योग्यता होते हुये भी जनता की ओर से वह भी पुणे जैसी नगरी के नागरिकों की ओर से, स्वामी जी के साथ अपमानास्पद व्यवहार क्यों हुआ? यह प्रश्न समुपस्थित होता है, पर हमें इस 'असंमानास्पद' घटना में आश्चर्यजनक व असाधारण कुछ भी नहीं प्रतीत हुआ, हां, यदि इन लोगों की ओर से इस प्रकार का अशिष्टाचरण घटित न होता, तो हमें आश्चर्य ही हुआ होता, तो फिर हमें यही कहना चाहिये कि—जो भी कुछ घटित हुआ वह सब क्रमशः रूढिवादी और प्रति-गामी इतिहास से, कुछ भी भिन्न नहीं हुआ। परंपरागत रूढियों में, अंध श्रद्धायुक्त विचारों में, तथा मानस में रूढ धार्मिक जगत् में जो कोई ईमानदारी और दृढता से परिवर्तन करना चाहेगा उससे लोग विरोध करेंगे (वाकून राहतील) ही और उसका उपहास भी करेंगे, उन्हें यदि इससे भी अधिक अधिकार के अवसर मिलें, या राजा या राज्यसत्ता उनके अनुकूल रही, तो प्रसिद्ध धर्म संस्थापक ईसा और लूथर की तरह उस सत्पुरुष पर प्राण घातक आक्रमण करने में भी ये लोग कोई कसर न छोड़ेंगे, वैसे कष्टप्रद प्राणघातक हमलों को भी सहन करने की अद्भुत क्षमता महापुरुषों में होनी चाहिये, और इस महापुरुष (दयानन्द) के व्यक्तित्व में तो वह [क्षमता][१७] कूट-कूट कर भरी हुई थी। ऐसे महामानव रूपी स्वर्ण को छलनादी लोग (वर्त्तनरूप शालिग्राम) शिलारूपी कसौटी पर परखने का प्रयत्न करते हैं। उसके बिना सज्जनों की परख संभव नहीं है, अतः लोगों ने जो कुछ किया, वह

उनके अपने छल कपट युक्त स्वभाव के विपरीत कुछ भी नहीं किया। यह समझकर संतुष्ट हो जाना चाहिये। क्योंकि इसके सिवाय दूसरा कोई पर्याय नहीं है।

जो संन्यासी पहली भेंट में (सकृद्दर्शनीच) यह स्पष्ट कर देता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते, और जिन ब्राह्मण पंडितों ने जन्म से ही 'मन्त्रब्राह्मणयो वेदः' इत्यादि उक्तियों (फक्किकाओं) को रट रखा है, आखिर इन दोनों में एकमत कैसे होगा। ऐसी अवस्था में स्वामी जी व पंडितों में शास्त्रार्थ होता था, और पण्डित लोग परास्त होने पर निराश होकर स्वामी जी की निंदा करते थे। ऐसे किसी विषय पर, जिस पर पहले कभी विचार न किया गया हो, या किसी ने कोई नई बात, या नया सत्य प्रस्तुत किया हो, तो उस तथ्य की वास्तविकता और अवास्तविकता के संदर्भ में शांतचित्त से मनन करने की सद्बुद्धि बहुत कम लोगों को प्राप्त होती है। यदि दुराग्रही और दुरभिमानी लोग हों, तो वे परंपरागत और पीढी दरपीढ़ी से जो मत, जो बातें, और जो विचार (कल्पनायें) चले आ रहे हैं, उन्हीं का समर्थन करेंगे। और दयानन्द जी जैसे व्यक्ति को छलेंगे ही, क्योंकि वे अपने दुष्ट स्वभाव से उन्मुख हो ही नहीं सकते। यह पुरातनकालीन इतिहास से भी सिद्ध होता है। यह तो सबको मालूम ही है कि कोपर्निकस और गेलिलियो नामक यूरोपीय खगोल शास्त्री ज्योतिषियों (ज्योतिर्विदों) और गणितज्ञों ने जब इस बात की खोज की कि—'पृथ्वी स्थिर नहीं, अपितु वह [सूर्य की] निरंतर परिक्रमा करती है', तब टालमी और अरस्तू के अभिमानी अनुयायियों ने उन विचारकों को कितना छला था। इसी प्रकार पुरातन [जीर्ण शीर्ण] विचारों के दुरभिमानियों की ओर से प्रायः नवीन मत प्रतिपादकों का छल होता ही रहा है। इतिहास में इस प्रकार के उदाहरणों की कोई कमी नहीं है। लोगों के भ्रांत व असत्य विचारों का खण्डन कर उन्हें उपदेश के माध्यम से नये विचारों के प्रति विश्वास उत्पन्न कराने का कार्य बड़े ही खतरे का और अत्यन्त कठिन कार्य है। जनमत और उसके दुराग्रह युक्त दुरतिक्रम स्वभाव को परिवर्तित करने (मोड्डून काढण्याचा) के महत्कार्य को थोड़ी देर के लिये नजर अन्दाज भी कर दें, तो भी ईश्वर भक्ति और उसके भजन-पूजन में ही अपना समय समर्पित कर ईमानदारी (निरुपाधि), स्वतन्त्रता और साधुवृत्ति से रहने का भी यदि किसी ने दृढ निश्चय किया, तो भी लोगों की ओर से जो छल होना है वह तो होता ही है। लोगों को छल-कपट किये बगैर चैन की नींद नहीं आती। इस प्रकार की जन प्रवृत्ति के कारण मनुष्य की साधु वृत्ति का जैसा विकास और प्रकाश होना चाहिये, वैसा नहीं हो पाता। यदि मनुष्य के षड्विकारों में से मात्सर्य (ईर्ष्या-द्वेष) द्वेष का अभाव रहता तो संसार का कितना कल्याण हुआ होता! पर वैसी स्थिति अब तक तो नहीं हो पायी है। सभी ओर ईर्ष्या-द्वेष की भावना भरी होने के कारण इस धरातल पर अनेक सद्गुण परिपूर्ण, सुशील, महात्मा और सत्पुरुष अनधिकार छले और सताये (गांजिले) जाते हैं। उन्हें यम यातनाओं से भी अधिक दुःसह अपमानरूपी यातनाओं को चुपचाप सहन करना पड़ता है। सन्त तुकाराम तो बिचारे पूरी तरह ईमानदार स्वतन्त्र और साधु वृत्ति के भावना प्रधान पुरुष थे, पर उन्हें भी उनके ईर्ष्यालु शत्रुओं ने बहुत ही छला और सताया और इस तरह सभी प्रकार की यातनायें उन्हें सहन करनी पड़ी। सन्त

तुकाराम का अभंग शैली में लिखा हुआ काव्य उन दुष्टों ने चन्द्रभागा नदी में डुबा दिया[१८]। और सड़क से जाते समय उन (सन्त तुकाराम) पर गोबर फेंकर उनकी मजाक उड़ाने का और उन्हें अपमानित कराने का पूरा प्रयास किया गया। भला बताइये ! उस सन्त ने लोगों पर ऐसा कौनसा अन्याय किया था, जिसके फलस्वरूप लोगों ने उसे इस प्रकार से सताया ! बेचारा गरीब सन्त ! (गरीब बापड़ा !) फिर दयानन्द जी जसे महान् विद्वान्, वेदमत संस्थापक और धर्मोपदेशक के साथ लोगों ने इसी प्रकार छल-कपट युक्त व्यवहार किया तो उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं इसी तरह हमें संतोष कर लेना होगा। यह सर्व साधरण नियम है कि साधुओं और धर्मोपदेशकों की कीर्ति और प्रतिष्ठा उनके जीवन समय में [जीते जी] प्रायः कभी नहीं होती। सन्त तुकाराम के स्मारक (देव्हारा) उनके जीवनकाल में नहीं बनाये गये। उसी प्रकार सुकरात्, लूथर, कोपर्निक्स या ग्यालिलियो आदि का मान-संमान उनके जीवन काल में जैसा होना चाहिये था वैसा नहीं हुआ; पर यह तो लोक प्रसिद्ध है कि उनकी मृत्यु के पश्चात् उनका नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लोगों की जबानों पर नाचने लगा। बस इसी प्रकार की स्थिति दयानन्द जी के संदर्भ में भी समझनी चाहिये। यह प्रतीत होता है कि हमारे महाराष्ट्रीय विद्वद्वर्य प्राध्यापक रामकृष्ण गोपाल भांडारकर और (स्व०) पं० विष्णु शास्त्री चिपलूणकर को दयानन्द जी के स्तर और महिमा का उतना परिचय न हो सका, जितना कि होना चाहिये था। उनमें से पं० विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ने तो अपनी निबन्धमाला पत्रिका के एक दो अंकों में (अशी कांही झोड उडवून स्वामी जी वर निवल आग पारवडली आहे की ती न भूतो न भविष्यति) स्वामी जी के विरुद्ध अपनी सदसद् बुद्धि को एक ओर रखकर ऐसे आक्षेपात्मक अनर्गल लेख[१९] लिखे जो 'न भूतो न भविष्यति' के स्वरूप थे। इस सम्बन्ध में हम आगे लिखेंगे ही एतदर्थ हम मूल विषय का अनुसरण करेंगे। (या साठी प्रकृत विषयाला अनुसरु)।

इससे पूर्व हम लिख चुके हैं कि जो साधु, दार्शनिक, (मत) संस्थापक और धर्मोपदेशक हुये उनके जीवनकाल में उन्हें बहुत ही छला और सताया गया। तो भी मरणोपरांत लोग उनकी भक्ति और पूजा (करेंगे और) करते ही हैं। उस प्रकार यह सत्पुरुष [दयानन्द] देशकल्याण और देश बांधवों की उन्नति हेतु (उर्जितावस्थ कडे) किस तरह तड़पता था और उसने अपने आपको इस महत्कार्य के लिये कितना अधिक (किसी) निष्काम भाव से समर्पित कर दिया था। इसका भी ज्ञान हमें उस पुरुषार्थी [दयानंद] के ऐहिक जीवन समाप्ति के बाद ही होना था और अनुभव के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि—यही दौर्भाग्य हमारे भाग्य में था दयानंद जी को अहर्निश इसी बात की चिंता (विषंचना) रहती थी कि आर्यावर्त्तीय आर्यों की इहलौकिक व पारमार्थिक सुख प्राप्ति और उन्नति किस प्रकार होगी ? तद्विषयक युक्ति प्रयुक्ति और सद्धर्म का उपदेश करने की उन्हें अतिशय तडप (हव्यास) थी। किसी व्यक्ति की धर्म संबंधी शंका-प्रति शंकाओं का समाधान और विपक्ष का खंडन वे अत्यंत ही योग्यता, कुशलता और तार्किकता से करते ये। वैसी योग्यता और तार्किकता का गुण कुछ गिने-चुने साधकों को ही सिद्ध होता है। यही उनकी अद्वितीय बुद्धिमता का लक्षण भी है। हिंदू धर्म—स्वामी जी के मंतव्यानुसार आर्य धर्म—की कितनी ही बातें, व्यावहारिक रूढियां अस्पष्ट,

उलझन भरी (घोंटाल्याच्या), शंकास्पद, वादग्रस्त और अनिर्णीत थी, जिनका समाधान और विश्लेषण बडे-बडे पंडितों से भी नहीं हो सका था। वह स्वामी दयानंद जी सरस्वती ने अतिशय उत्कृष्ट पद्धति और तार्किकता से किया है। वह उनकी स्पष्टीकरण की उत्तम तर्क शैली उनके पूना प्रवचन या उपदेश मंजरी में स्पष्ट दृग्गोचर होती है। 'श्रीमद्भागवत् आदि ग्रंथों में श्रीकृष्ण का अवतारी, अधार्मिक, नीतिमूल्य विरहित जो लीलामयरूप का चित्रण किया है वह श्रीकृष्ण जैसे (अवतारी) पुरुष के लिये बहुत ही लांछनास्पद है ?—इस प्रकार के शंकात्मक प्रश्न यदि कोई स्वामी जी के समक्ष रखता तो वे उसका इस प्रकार समाधान करते कि – ये सब दोष या कलंक उस भद्र पुरुष को कलंकित नहीं करते, क्योंकि श्रीकृष्ण कोई सामान्य पुरुष नहीं थे, वे तो योगेश्वर, विवेकी, और ज्ञान से समृद्ध थे, इसलिये ऐसी निंद्य और दुष्कर्मयुक्त घटनायें उनसे घटीं–इस प्रकार का कथन करना और तदनुसार उन कपोलकल्पित घटनाओं का वर्णन करना—यह सब कवि का दोष है। कवियों ने अपने काव्य में अनैतिहासिक मनचाही घटनाओं का वर्णन किया है। उन कल्पित कल्पनाओं को सत्य मानना अनुपयोगी व हानिकारक है, क्योंकि श्रीकृष्ण महान् ज्ञानी थे, यह उनके भगवद् गीता नामक उपदेशात्मक ग्रंथ से अनायास स्पष्ट हो जाता है। स्वामी जी, वेद प्रतिपादित यज्ञयागादि कर्मकाण्ड की अनुपयोगिता के बारे में, यदि किसी ने संदेहात्मक प्रश्न किया तो, वे उसकी उपयोगिता के बारे में यह कहते थे कि, वातावरण वायू-प्रदूषण आदि को शुद्ध करने के लिये यागिक-कर्म भी आवश्यक है, और इसीलिये वेदों ने उसका प्रतिपादन किया है। यदि किसी की यह शंका रही, कि वेद में यज्ञ संबन्धी मंत्रों में पशु बलि का विधान है, तो स्वामी जी का यही उत्तर होता था कि—वेद में हिंसा नहीं है, यहां पर यह बात ध्यान में रखनी जरूरी है कि–वेदों का अर्थ सत्यार्थ पर ही आधारित होना चाहिये, वेदों में तो पशु पालन का वर्णन है, पशु हिंसा को नहीं"। इस सदर्भ में विस्तार से जानने के लिये स्वामी जी की ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का अध्ययन करना चाहिये स्वामी दयानंद पशुबलि के कट्टर विरोधी थे, इस संबन्ध में उनकी 'गोकरुणानिधि' नामक पुस्तिका प्रकाशित हुई है। पशुहिंसा की जो कुप्रथा सर्वत्र प्रचलित है वह अतिशय घातक और हानिकारक है। इस कुप्रथा पर सरकार की ओर से त्वरित पांबंदी लगानी चाहिये'–इस भावना से एक विस्तृत निवेदन (अपील) पत्र तैयार करके, उस पर लाखों लोगों के हस्ताक्षर लेने का अभियान स्वामीजी ने चलाया था। स्वामी जी ने सभी राजाओं और देशी राज्यों को विनम्रता से अपील की थी और उन सब के सहयोग से वह निवेदन पत्र सरकार को भिजवाकर गोवध बंदी अभियान चलाया था, तदनुसार बंबई से एक लक्ष हस्ताक्षर प्राप्ति के पश्चात् अन्य स्थानों पर भी यह हस्ताक्षर अभियान चालू हो चुका था, परन्तु ऐसा कोई अवसर नहीं आ सका कि इस यज्ञ के पुरोहित स्वामी जी के हाथ से ही कार्य संपन्न होता। स्वामी जी के अकाल कवलित होने से गौ आदि पशुवध बंदी का अभियान अधूरा ही रह गया।

ज्ञान ग्रन्थ वेद और उसके मंत्रार्थ जो हजारों वर्षों से भयानक अज्ञान अधंकार फैला हुआ था, उसका परिणाम यह हुआ कि पंडित लोग भी अपने पूवजों की बुद्धिमत्ता और ज्ञान संपदा को सम-

झने में असमर्थ रहे . (इसलिये) मानो, इस अमंगल वेला का विनाश करने के लिये ही सत्पुत्र स्वामी दयानंद जी सरस्वती आर्य माता की कोख में जन्मे थे । पुराण रचियताओं ने भ्रांत मूलक मत लिखकर नानाविध कपोल कल्पित कथा, कहानियों व विचारों से जनमानस को दिशा हीन कर दिया है (बाबरुन टाकले)—यह सभी लोगों को समझ लेना चाहिये 'समाज सत्पथ से विचलित होकर अमावस्था की ओर जा रहा है, उससे उसकी रक्षा और मुक्ति होनी चाहिये । इस भावना से स्वामी जी ने अपना कर्त्तव्य कर्म समझकर, अनंत श्रमपूर्वक प्रवचन और सद्ग्रंथों के लेखन[10] व प्रकाशन का कार्य आरम्भ किया था। स्वामी जी के उपदेशों में प्राय: इस तरह की बातों का समावेश रहता था कि - पुराण ग्रन्थों के माध्यम से रूढ हुई मूर्ति पूजा अवैदिक, अशास्त्रीय व अज्ञानमूलक होने से सर्वथैव त्याज्य और वर्ज्य है । प्राय: वे इस बात का प्रतिपादन करते कि वेदों से लेकर सूत्रोत्पत्ति के काल तक (वेदोक्त धर्माला अनुसरून सूत्रोत्पत्ति होई पर्यंत) सभी लोग वेदानुकूल चल रहे थे, परन्तु आगे चलकर पुराण काल से वैदिक धर्म और वेदमत की उपेक्षा होने लगी । इस संदर्भ में स्वामी जी पौराणिक कथाओं के विघातक स्वरूप, और अतार्किकता का वर्णन करते हुए, पुराण रचयिताओं, उनके अनुयायियों, और पुराण समर्थक पौराणिकों का बहुत ही मजाक उड़ाया करते थे । वह उपहास, भट्ट भिक्षुक, पंडे-पुजारी और]सनातनी वैदिक शास्त्री पण्डितों के हृदय और मष्तिष्क को बहुत ही सालता था। जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप वे स्वामी जी के विरोधी (द्वेष्टा) बन कर उन्हें पाखण्डी, नास्तिक आदि गर्हित विशेषणों से लांछित कर, लोगों में उनका अपशय फैलाने की कोशिश किया करते थे । हमें यह सदैव ध्यान रखना चाहिये कि किसी भी प्रकार का सुधार करने से पूर्व, प्रचलित मिथ्या धारणाओं व रूढि-पद्धति और अन्धविश्वासों का समूलोच्छेद करना पड़ता है । यह एक कटु सत्य नियम है कि इस प्रकार का मूलोच्छेदन उन व्यक्तियों के उदर निर्वाह पर या यों कहिये कि उनके 'पेट [पूजा] पर लातमारने' के समान है—जो व्यक्ति, अज्ञानी लोगों के अन्धविश्वासों और परंपरा से पोषित रूढियों के सहारे अर्थ प्राप्त कर रोजी-रोटी चलाते हैं । इस प्रकार के स्वार्थी पंडे-पुजारी और रूढिवादी लोग सुधारक की सर्वत्र बदनामी और अपकीर्ति फैलाते हैं। जैसे नवीन यन्त्रों के निकलने पर हस्तोद्योग या घरेलू उद्योग से जीविकोपार्जन करने वाले लोग उन नवीन (आविष्कृत) यन्त्रों के नाम पर आंसू बहाते हैं, ठीक उसी प्रकार रूढिवादी, प्रतिगामी और अन्ध परम्परानुयायी लोग हमेशा सुधारकों के नाम को बदनाम करने की कोशिश करते हैं। स्वामी दयानन्द जी ने ब्राह्मणों में प्रचलित संस्कार पद्धति को बदलकर (दरोबस्त), वैदिक मर्यादा के अनुकूल एक नयी 'संस्कारविधि' बनाई, जिससे भट्ट-भिक्षुक, पण्डे-पुजारियों की आय व पोपलीला को बाधा पहुंचने लगी, और वे परेशान हो उठे । जिस (सत्) पुरुष का वेद संहिता से परे, ब्राह्मण ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य किसी भी ग्रंथ में विश्वास न था और जो वेदों के सिवाय अन्य ग्रन्थों के वचनों को प्रमाण(प्रामाणिक) मानने के लिये भी तैयार न था । ऐसे सत्पुरुष [स्वामी जी] को —वेद बाह्य और पाखण्ड से परिपूर्ण मतों का अनुकरण (अनुसरण) करने वाले दुराग्रही, सनातनो, रूढिग्रस्त शास्त्री पण्डितों से मैत्री आखिर हो ही कैसी सकती थी । यदि स्वामी दयानन्द जी के विचारों को या मत प्रतिपादन प्रणाली को ये लकीरी फकीर शास्त्री, भिक्षुक पंडित आदि पुराण पंथी पक्षपात रहित हो, विवेक

और शान्ति से सुन भी लेते, तो ऐसा कोई कारण नहीं था, कि जिस कारण वे स्वामी जी से ईर्ष्या-द्वेष की भावना रखते, (जो कि इन लोगों के अन्तःकरण में विद्यमान थी)। क्योंकि स्वामी जी के विचार यथार्थ, निर्दोष और वास्तविकता पर आधारित थे, परंतु मिथ्याभिमानवश और शत-प्रतिशत अपने विवेक को गिरवी रखकर, पराधीन और गुलाम हो जाने के कारण, इन रूढिग्रस्त प्रतिगामियों के पास शांति के साथ स्वतंत्र विचार करने के लिये अवसर ही कहां था? इस प्रकार भटके हुये [दिशाहीन] पुराणमतवादी लोगों में और स्वामीजी में मतभेद हो जाने से इन दोनों विचार प्रवाहों की अलग-अलग दो दिशायें बन चुकी थीं।

यह तो कोई भी समझदार व्यक्ति, कभी भी, नहीं कहेगा कि, स्वामी दयानंद जी के मत निरर्थक और विवेकशून्य हैं। स्वामी जी का यह मत था कि–आर्य धर्म के सिवाय दूसरा कोई भी धर्म सत्य पर आधारित नहीं है, और बुद्धि और स्वभाव की दृष्टि से, आर्यों की तुलना में अन्य कोई श्रेष्ठ और उत्कृष्ट नहीं है। जीव और शिव एक (अद्वैत) हैं अर्थात् हर प्राणी परमात्मा है–इस प्रकार का जो वेदांतियों का मत है वह मिथ्या है। शिव और जीव का पार्थक्य स्वामी जी सप्रमाण सिद्ध करके बतलाते थे। प्रायः वे यह कहा करते थे कि-जीवात्मा को सदाचरण व सद्भक्ति से ईश्वर का सानिध्य प्राप्त कर लेना चाहिये, और ऐसी स्थित में भी, यदि मनुष्य अपने आपको ब्रह्म समझ, मनचाहे कर्म करता है, तो वह अयोग्य और पाप का मूल (कारण) है। जीवात्मा अनंत काल तक पुनः-पुनः जन्म प्राप्त करता रहता है, उसे इस जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति, ईश्वर की आराधना से ही मिल सकती है, परंतु उस मुक्ति का समय भी अनंत न होकर, एक कल्प[११] पर्यंत ही होता है। द्वितीय कल्प के प्रारंभ में जीव को पुनर्जन्म लेना पड़ता है। इससे यह स्पष्ट है कि वे जन्म जन्मांतर और पुनर्जन्म में विश्वास रखते थे। उसी प्रकार ईश्वर के संबन्ध में सदैव वे यह उपदेश किया करते थे कि, ईश्वर सगुण, निराकार, पवित्र, जगत् रक्षणकर्त्ता, जगदाधार, मायातीत आदि दिव्य गुणों से युक्त है। मनुष्यों की तरह वह मनोविकारग्रस्त और सोपाधिक नहीं है; किंतु सृष्टिकर्त्ता, जगन्नियंता, जगत् संहारकर्त्ता स्वाधीन और स्वतंत्र है। इसलिये जीवात्मा को उस ईश्वर की भक्ति-भजन व आज्ञापालन करके उसकी कृपा संपादित करनी चाहिये। प्रायः वे इस बात का प्रतिपादन बड़े खेद से किया करते थे कि—पुराण तंत्रादि ग्रंथों के लेखकों ने नवीन आचार संहिताओं और कर्मों को वैदिक कर्मकांडों में मिला-कर दूषित कर दिया है, जिसके कारण लोगों में भ्रम और पाखंड फैलता जा रहा है, आखिर इस सबका निराकरण कैसे होगा! इससे पूर्व हमने लिखा है कि स्वामी जी ने एक स्वतंत्र संस्कार विधि नामक ग्रंथ लिखा था, उस ग्रंथ से, स्वामी जी के वेद (श्रुति), स्मृति व गृह्य, आश्वलायन आदि सूत्रों में प्रतिपादित, आचार संबन्धी सभी विचार स्पष्ट होते हैं। भिन्न-भिन्न आचार (कर्मकांड) प्रवर्त्तक आचार्यों ने जो सूत्र लिखे हैं, वे अनावश्यक है। इसलिये उन सब में एकता लाने का प्रयास स्वामी दयानंद जी सरस्वती ने संस्कारविधि में किया है विभिन्न आचार्यों ने (भिन्न-भिन्न) विविध स्मृति-शास्त्रों का निर्माण किया, परंतु आगे चलकर जिस प्रकार महानिबंध-कारों ने, सभी स्मृतियों को एकत्र कर आचार संहिता का निर्णय किया, बस, ठीक उसी प्रकार

'सूत्रोक्ताचार' के विषय में, और चतुःसूत्री एवम् चतुर्वेद [के मंत्रों एवं कर्मकांड] का एकत्रीकरण कर, स्वामी दयानंद जी ने महदाशय और अत्यंत परिश्रम से, सारासार का विचार करते हुये 'संस्कारविधि' नामक ग्रंथ की रचना की है, और साथ ही उन्होंने इस ग्रंथ में विविध ग्रंथों के आवश्यक सूत्रों को भी संमिलित किया है। अब उसका योग्य 'उपयोगानुपयोग' करने का काम उनके अनुयायियों सच्छिष्यों और छात्रों की ओर शेष है।

स्वामी जी के सर्वांगीण, अपूर्व और अभिनव मतों की पर्यालोचना कर, अपना समाधान और संतोष कर लेने की जिस किसी की इच्छा हो, उसे स्वामी जी लिखित सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थ और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पढ़नी चाहियें, जिससे शंकाओं का निराकरण, समाधान और उन रचनाओं के प्रति विश्वास उत्पन्न होगा, और इस इच्छित कार्य में सफलता प्राप्त होगी। ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में उनके सभी प्रकार के विचार, और आज तक उनके सामने, जो-जो शंकायें उपस्थित हुईं, उन सबका समाधान भी किया गया है, उससे उनके योग्य-अयोग्य विचारों का स्पष्टीकरण सहज रूप से हो सकेगा। इससे पूर्व हमने उनकी उपदेश शैली, विचार प्रतिपादन प्रणाली और उनके आशय का जो संक्षेप में स्थान-स्थान पर विवरण दिया है, वह सब ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भी आप देख सकेंगे। "मैं जो यह अपूर्व भाष्य प्रारम्भ करने जा रहा हूं, उस पर किसी को शंका-प्रतिशंका शेष न रहे, और वह सभी को मान्य हो"—यह सोचकर ही उन्होंने इस ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की सुदृढ़ नींव डाली थी। इस नींव के सुन्दर, स्थिर और शास्त्रानुकूल कार्य को देखकर ही, उस पर आगे चलकर खड़े होने वाले 'वेदभाष्य' रूपी भवन, जिसका शुभारम्भ और यत्किंचित् कार्य भी उस विलक्षण बुद्धिमान् शिल्पी के हाथों से आज सम्पन्न हुआ नजर आता है, उससे वह वेदभाष्यरूपी इमारत कितनी सुन्दर और अभूतपूर्व हुई होती, इसका सहज ही अनुमान होता है, परन्तु प्रारम्भ किया हुआ कार्य निर्विघ्नता से परिपूर्ण होने के लिये, कार्य का प्रारम्भ अनुकूल समय पर होना चाहिये, ऐसी जो भोले-भाले लोगों की भावना है, वह वास्तव में सही है। तदनुसार वेदभाष्यरूपी भवन का यह कार्य स्वामी जी ने जब प्रारम्भ किया तब यही समझना चाहिये कि उस समय अनुकूल और मंगलवेला नहीं थी, और इसी कारण यह कार्य उस मुख्य शिल्पी के अकाल कवलित हो जाने से अधूरा ही रह गया! क्या यह अधूरा कार्य पूरा हो सकता है? क्या उसका कोई उपाय है? इसे कोई नहीं जानता! यदि कोई जानता भी हो तो किसे मालूम! इस प्रकार अब सभी विचारों के लोग महसूस करने लगे हैं। "मनसा चिंतितं कार्यं दैवमन्यत्र चिंतयेत्"। हम एक कार्य करने की योजना बनाते हैं, पर दुर्भाग्य से वह कार्य अधूरा ही रह जाता है। स्वामी जी द्वारा प्रारम्भ किया हुआ वेदभाष्य जब कुछ यूरोपीय और भारतीय विद्वानों ने पढ़ा तब उन्होंने यह कहा कि यह भाष्य वास्तविकता पर आधारित नहीं है। जब यह जानकारी विभिन्न आर्य व यूरोपीय (इंग्लिश) पंडितों की ओर से स्वामी जी को अन्तिम समय में मिली तब उनके अनुयायियों ने उनकी शंकाओं का उत्तर देने के लिये स्वामी दयानन्द जी के मन्तव्यानुकूल आर्य व आर्यपत्रिका[1] नामक अंग्रेजी व हिंदी भाषाओं में मासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन क्रमशः लाहौर और प्रयाग से प्रारम्भ किया। ये दोनों मासिक पत्रिकायें आज भी प्रकाशित हो रही हैं। इन पत्रि-

कान्नों के माध्यम से इनके संचालकों ने, उन शंकाओं के निवारण का अतिशय प्रशंसनीय कार्य किया है, साथ ही यह भी सिद्ध करने का प्रयास हुआ है कि स्वामी जी ने जो वेदार्थ और वेदभाष्य किया है, वही सत्य है—'वेदों का गौरव जिस प्रकार के अर्थों से अक्षुण्ण रहे, वही अर्थ श्रेष्ठ, सच्चा और ग्राह्य है'। ऐसा जो इन दोनों पत्रिकाओं के संचालकों का मत है, वह कोई अयोग्य (वावगे) नहीं है; तथा साथ ही दयानन्द दर्शन के भी अनुकूल है। यह कोई भी निष्पक्ष आर्य व्यक्ति स्वीकार करेगा ही। स्वामी जी ने वेदभाष्य का कार्य प्रारम्भ किया था। वह यथार्थ (खरया) वेदार्थ के अनुकूल कितना था, और उनसे पूर्व महीधर आदि प्राचीन भाष्यकर्त्ताओं ने जो वेदभाष्य किये, वे किस अंश और किस मात्रा में और कहां-कहां पर सदोष हो गये थे—इसका सप्रमाण विवरण स्वामी जी ने अपनी ऋग्वेदभाष्यभूमिका में सोदाहरण दिया है। उन्होंने यह भूमिका बहुत श्रेष्ठ, सरल और सप्रमाण (साधार) लिखी है। जिससे कि समस्त शंकाग्रस्त व्यक्तियों [पाठकों] की शंकाओं का समाधान हो जाता है। इसीलिये हमारी यह सिफारिश है कि, वेद महिमा से परिचित होने की अभिलाषा रखने वालों को ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका साद्यन्त पढ़ लेनी चाहिये। इस भूमिका ग्रंथ के अध्ययन से यह उपलब्धि होगी कि—अनेक अज्ञात और महत्त्वपूर्ण तथ्यों से हम सुपरिचित होंगे और समाज में प्रचलित मिथ्या-आचार और विचार किस प्रकार आज तक अपनी मोहिनी (अंमल) से समस्त भारतवर्ष को वशवर्त्ती बनाये हुये हैं—इसकी जानकारी मिलेगी। तभी यह स्पष्ट होगा कि शास्त्री पण्डित इत्यादि ज्ञानी विद्वान् लोगों ने कितनी अनावश्यक उदासीनता और उपेक्षा (हेलसांड) दिखाई है। जाति भेद का क्या तात्पर्य है? वेदाध्ययन का अधिकारी कौन है? इत्यादि महत्त्वपूर्ण विषयों का स्पष्टीकरण भी स्वामी जी ने इस ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में विस्तार से किया है। गुणकर्मानुसार जाति व्यवस्था और हर बुद्धिमान व्यक्ति को वेदाध्ययन का अधिकार है, ऐसा प्राचीन स्मृतिकारों का जो स्पष्ट मत है, उसका समर्थन सद्‌गुण स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने किया है, और वह समर्थन बिल्कुल निर्दोष है। मैं यह स्पष्ट रूप से कहता हूं कि इस दोष रहित समर्थन की प्रतीति विद्वानों को हुए विना नहीं रहेगी।

दो हजार वर्ष पूर्व से आज तक विद्वानों ने जो यह रट लगाई है कि—वेदादि शास्त्र ब्राह्मणों के गुप्त धन हैं, और उनकी ओर अपने अतिरिक्त अन्य कोई भी आंख उठाकर न देखें (ढंकून बघूही नये) बिल्कुल इसके विपरीत जैसा कि हम पहले लिख आये हैं—स्वामी जी ने कहा था कि—'जिस व्यक्ति के पास प्रतिभा है, उसे बहुत ही प्रसन्नता के साथ वेद शास्त्र का अभ्यास करना चाहिये' उनका यह कथन सबको अप्रिय (विषय) प्रतीत हुआ, जिससे समस्त तथाकथित ब्राह्मण समाज क्रुद्ध हो उठा। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह स्वाभविक ही था। दयानन्द जी की वर्णन शैली निर्मूल और निराधार न होकर आत्मविश्वास से परिपूर्ण थी, परन्तु उनके द्वारा व्यक्त विचारों को शांति और विचार पूर्वक ग्रहण करने का साहस और पूर्ण सामर्थ्य किसी भी विद्वान् (ब्राह्मण) में न होने से, ब्राह्मणों में और स्वामी जी में, परस्पर विवाद और विचारों में मतभेद हुआ करता था। इससे स्वामी जी की उदारवृत्ति और ब्राह्मणों की अनुदार प्रवृति स्पष्ट दिखाई देती है। स्वामी जी स्वाधीनचेता थे। उनका व्यक्तित्व मोह पाश, लालच और भय आदि

विकारों से पूर्णतया निर्लिप्त था। इसी कारण वे पूरी निर्भीकता (किंवा मर्यादा न ढेवता) से वेदानुकूल न्याययुक्त मतों का (धड़ाकून) प्रतिपादन करते थे। वे छल कपट रहित सर्वहितकारी संन्यासी थे, कोई भी जिज्ञासु यदि उनके पास शंका समाधान करने के लिये आता तो वे बड़ी ही निष्पक्षता और योग्यता से उसकी शंकाओं का समाधान करते थे। उनके व्याख्यानों में यवन, यहूदी, ईसाई, जैन आदि सभी संप्रदायों (धर्मों) के श्रोता बड़ी ही प्रसन्नता के साथ संमिलित होते थे। अर्थात् सभी को व्याख्यान सुनने की खुली छूट थी। वैरागी और निःस्पृह होने से उनके जीवन में सच्चाई [सत्यवादिता] कूट-कूट कर भरी हुई थी। किसी की भी सिफारिश पदप्रतिष्ठा या महत्ता उन्हें अपने सत्पथ से विचलित न कर पाती थी। इसी कारण भारतवर्ष के अनेक 'राजा और संस्थानिक' स्वामी जी को अपना गुरु मानते थे, और वे स्वयं भी उनके अनुयायी बन चुके थे। स्वामी जी से अनेक राजाओं का गुरु शिष्यवत् सम्बन्ध था[२३], इसी प्रकार के एक राज परिवार में जब स्वामी जी के विचारों के प्रतिकूल एक अवटनीय घटना घटी, तो स्वामी जी से न रहा गया और उन्होंने राजा को फटकारते हुए कहा कि" यदि तू अपने परिवार में ही सन्मार्गोपदेश और सत्य मत का व्यवहार [प्रसारे] नहीं कर पाता तो, स्पष्ट ही है कि तू अपने राज्य की जनता के के साथ कितने सत्पथ और सत्यमतोपदेशानुसार आचरण करता होगा ? जैसा कि हमने अभो, इससे पूर्व इस तथ्य का उल्लेख किया है कि, स्वामी जी के विचारों के प्रतिकूल राजपरिवार में एक घटना घटी—वह घटना यह थी कि—जब एक परंपरागत वैष्णव पंथी राजा ने जब स्वामी जी के उपदेश और विचारों को सुना तब वह अपने वैष्णव पंथ को छोड़ कर वेदमतावलम्बी आर्य (वैदिकार्य) बन गया। परन्तु कुछ दिनों के बाद उस राजपरिवार के सभी लोगों ने अपने कुलीन वैष्णवाचार्य को निमंत्रित कर उससे अपने शरीर, तप्त मुद्राओं से मुद्रित कर लिये[२४] ! जब यह समाचार स्वामी जी को विदित हुआ तब ऊपर लिखे अनुसार स्वयं उन्होंने राजा को कटु उपदेश देते हुये फटकारा। कहते हैं कि इसी फटकार के कारण राजा ने अपने परिवार के साथ बहुत ही कठोर रुख अपनाया। इस प्रकार की अनेक बातें सुनी जाती हैं, परन्तु यहां हमें यह प्रतीत नहीं होता कि उन बातों का हमारे चरित्रनायक स्वामी दयानन्द जी से कोई संबंध है। इसीलिये हम उन घटनाओं की उपेक्षा करके अपने मुख्य विषय की ओर आगे बढ़ते हैं। संक्षेप में हम यहां पर यही कहना चाहते हैं, स्वामी दयानन्द जी सरस्वती अत्यंत निःस्पृह थे। उनके यात्रा विवरण और यायावरी जीवन का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे परम धैर्यवान् थे। स्वामी जी का यायावरी जीवन दक्षिण भारत में उतना नहीं बीता, जितना कि उत्तर भारत में। प्रायः उत्तर भारत के समस्त प्रदेशों का उन्होंने भ्रमण किया था, और अनेक स्थानों पर तो उन्होंने विशाल जन सभाओं में बड़े-बड़े प्रसिद्ध पण्डितों से शास्त्रार्थ भी किया था। यहां पर यह स्पष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि ये वाद-विवाद या शास्त्रार्थ स्पष्ट रूप में एक दूसरे के प्रतिकूल होते थे अर्थात् स्वामी जी की प्रतिपक्षी पंडितमंडली मूर्तिपूजा मंडक थी तो स्वामी जी मूर्तिपूजा विरोधी थे। इस प्रकार परस्पर विरोधी विषयों में शास्त्रार्थ करने के लिये, सुदूर और अपरिचित प्रदेशों में अचानक जाकर अतिरथी-महारथी पण्डितों के साथ वाग्युद्ध (शास्त्रार्थ) करने में स्वामी जी ने यश संपादन किया था, निर्विवादरूप से कोई भी यह स्वीकार करेगा

कि शास्त्रार्थ महारथी स्वामी दयानन्द में असाधारण धैर्य था, इसी धैर्यशील स्वभाव के कारण वे सुदूर और अपरिचित प्रदेशों में प्रतिपक्षी विद्वानों के साथ वाग्युद्ध करने के लिये पहुंच जाते थे। उस सत्पुरुष को सत्पथ पर चलते समय जो यथार्थ मत प्रतीत होता था, उस मत का अनुसरण करते हुए वह कभी भी, कहीं भी, किसी से भी भयभीत और विचलित नहीं होता था। स्वामी जी जब कहीं जाते तो, उनके अगल-बगल (परिपार्श्व) में उनकी सेवा के लिये दो शिष्य रहा करते थे। इसके अतिरिक्त कभी किसी भी प्रकार का परिवार और आडम्बर (डौल) उन्होंने अपने साथ नहीं रखा। आज तक धर्मोन्नति करने वाले जितने भी मत संस्थापक हुये, उनका लगभग इसी प्रकार का क्रम चला आ रहा है। इस धरातल पर दुराग्रही तथा मिथ्या धर्माभिमानियों के कारण न जाने कितने अनन्त अनर्थ हुए हैं। फिर भी लोग अपने जीर्ण-शीर्ण विचारों (जुन्या मतास) से बंधनमुक्त होने से कतराते हैं। जनमत के विरुद्ध अगर कोई क्रांतिदर्शी अपना मत अभिव्यक्त करता है, तो उसका वे किस प्रकार छल करते हैं। इस संदर्भ में हमें (भूगोल के समस्त राष्ट्रों में) सैकड़ों उदाहरण विश्व इतिहास की पुस्तकों में उपलब्ध होते हैं; और वर्तमान काल में भी प्रत्यक्षरूप में हमें ऐसी घटनायें दिखलायी देती हैं। स्वामी जी रूढिबद्ध प्रतिगामी व्यक्तियों से मिलने वाली यातनाओं से सुपरिचित होते हुये भी, अपने लोकविरुद्ध आचरण की किसी प्रकार परवाह न करते हुये, अतिशय शांति (धिम्मेपणाने) और परम धैर्य से, तथा निर्भीकता पूर्वक, और बेधड़क अपने प्रतिपक्षी वीर पण्डितों के क्षेत्र में जाकर, अपना आसन जमा देते थे। आखिर हम इसे क्या कहें ? और ऐसे क्षेत्र में जाकर स्वमत प्रतिपादन के लिये तो वे सदैव सन्नद्ध रहते थे (स्वारी तय्यारच !) आखिर कौन इतना बड़ा साहस करेगा ! प्रतिपक्षी मण्डली में सभी व्यक्तियों का स्वभाव एक जैसा होता है, ऐसी भी बात नहीं है। कोई क्रूर (खुनशी), कोई दीर्घद्वेष्टा कोई गुण्डा (कोणी दांडगे) कोई ईर्ष्यालु, कोई अविवेकी, स्वार्थी और कोई हत्यारा भी होता है, तब हम यह समझते हैं कि स्वामी जी अपने अतिशय धैर्यशाली स्वभाव के कारण ही इस प्रकार के रूढिवादी लोगों के बीच पहुंचकर, उनके विचारों के प्रतिकूल नितांत अभिनव विचारों को अभिव्यक्त कर निर्भीकता के साथ उनके जीर्ण-शीर्ण मतों को अपनी अपूर्व विद्वत्ता से छिन्न-भिन्न करने का कार्य, कर पाये। अन्यथा यह कार्य कदापि संभव नहीं था। स्वामी जी के यायावरीय जीवन के क्रमिक इतिहास से, और उनके विभिन्न स्थानों पर किये गये प्रकाशित शास्त्रार्थ पुस्तिकाओं के अध्ययन से, यह सहजता से स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी जी में धीरता कूट-कूट कर भरी हुई थी; और वह (धीरता) संकटकाल में थोड़ी सी भी न डगमगाती थी।

संन्यस्त, निर्लोभी, निःसंकोची निर्भीक और स्पष्टवादी होने के कारण वे किसी की भी खुशामद न करते थे (त्यांना ललुतपु म्हणून बिल्कुल नसे) इसी कारण स्वामी जी को आकृष्ट और पाशबद्ध करने का सामर्थ्य दुनियां की किसी भी शक्ति में नहीं था। इसीलिये हम यह कह सकते हैं कि, वे जो बड़ी स्पष्टता के साथ वेद प्रतिपादित मतों को अभि-यक्त करते थे, उनमें उनकी व्यक्तिगत स्वार्थ की कोई भावना न थी। यजमान के सामने सत्य वेदमत प्रतिपादित करने में कुल पुरोहित (गुरु) को यह भय रहता है कि अपने पौरोहित्य के लिये इस परिवार के दरवाजे सदा-सदा के लिये

बन्द हो जायेंगे। शास्त्री को शास्त्रों के आधार पर अभिनव मत प्रतिपादित करने पर समाज में अनाहत और अप्रतिष्ठित होने का भय लगा रहता है, और गृहस्थी को इस बात का भय रहता है कि— यदि मैंने आचार्य द्वारा दर्शाये मार्ग का अनुसरण करना छोड़ दिया तो जन-समाज में, मैं निस्तेज और निष्प्रभ हो जाऊंगा। परन्तु स्वामीजी इसके अपवाद थे, क्योंकि मन-बुद्धि को सत्य प्रतीत होने वाली विचारधारा का बड़ी ही निर्भीकता के प्रचार-प्रसार और तदनुकूल आचरण करने की प्रवृत्ति, विनम्रता (अदांभिकता) और धीरता स्वामी जी के अतिरिक्त अन्य किसी में दृष्टि गोचर नहीं है। जनसाधारण के समान दुनियावी मोहपाश या लोभ-लालच में बद्ध होने का स्वामी जी के पास अवसर ही नहीं था। इसीलिये वे ऋषियों के सत्पथ के पथिक बन सके। स्वामी जी में [पद्मपत्रमिवाम्भसा'] निष्काम निर्लिप्त रहने का अतिमानवीय ऋषि सम गुण, अत्यन्त ही अद्भुत और अलौकिक था। उनके इसी गुण के कारण हम यह कह सकते हैं कि, वे जनता के श्रद्धेय और [परम] पूज्य बन गये थे। उनसे पूर्व गुजरात में सहजानन्द स्वामी उपाख्य (उर्फ) नारायण स्वामी नाम के साधु पुरुष और धर्म संस्थापक हुये। उनका जीवन काल ई० सन् १८१८ से लेकर १८३२ तक था। स्वामी सहजानन्द जी ने अपने सदुपदेश और सत्संग से लाखों लोगों को 'साधु' बना लिया था। कालान्तर में उनके प्रभाव से गुर्जर प्रदेश में अनेक मठ-मंदिरों की स्थापना भी हुई थी। जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, जब कोई सुधारक सुधार कार्य करता है, तब प्राय: (किसी न किसी) स्वार्थी, रूढ़िवादी लोगों की आय और पेट-पूजा खतरे में पड़ जाती है, और इस प्रकार अप्रत्यक्षरूप से उनके लाभांश पर आक्रमण होने की स्थिति में वे उस सुधारक को सताने और छलने लगते हैं। इसी दुष्ट प्रवृत्ति के वशीभूत होकर स्वामी सहजानन्द जी को भी उनके जीवनकाल में लोगों ने बहुत छला और सताया था। फिर भी, नारायण स्वामी जी का पन्थ गुर्जर प्रदेश में अतिशय लोकप्रिय, विस्तीर्ण और प्रसिद्ध हुआ। स्वामी नारायण जी ने स्वमत प्रतिपादक—'वचनामृत' और 'शिक्षापत्री' आदि अनेक ग्रन्थों का निर्माण किया था। यह सब वर्णन-विवरण सत्य होने पर भी, हम यह कहने के लिये विवश हैं कि, स्वामी नारायण में स्वामी दयानन्द जी जितनी विद्वत्ता और गंभीरता नहीं थी, स्वामी नारायण जी भी तपोमूर्ति (तपोनिधि), ब्रह्मचारी और वक्ता थे, परन्तु स्वामी दयानन्द जी अपनी अद्वितीय विद्वत्ता के कारण स्वामी सहजानन्द (उपाख्य नारायण स्वामी) की तुलना में बड़ी ही उच्चकोटि के थे। जिस प्रकार श्रीमच्छंकराचार्य विद्वत्ता इत्यादि सर्व (यौगिक) गुणों से सम्पन्न थे, वैसे ही श्रीमद्दयानन्द जी भी थे। इसलिये हमारी दृष्टि में उन्हें प्रतिशंकराचार्य कहने में कोई भी संकोच और आपत्ति नहीं है। शंकराचार्य के बाद अपनी प्रतिभा के बल पर स्वामी दयानन्द के विना शास्त्रार्थ समर में कोई भी अवतीर्ण नहीं हो सका। स्वामी दयानन्द जी रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, वल्लभाचार्य आदि बड़े-बड़े मतसंस्थापकों और भाष्यकर्त्ताओं की विद्वत्श्रेणी (विद्वद्माला) में विराजमान होने योग्य हैं। यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि अर्वाचीन काल में स्वामी जी के अतिरिक्त अन्य कोई विद्वान् और तपोनिष्ठ नहीं हुआ।

अब तक हमने स्वामी जी, किस कोटि के मनुष्य रत्न थे, इसका विवेचन (विश्लेषण) किया

है । अब स्वामी जी के विपक्षियों के विचारों का संक्षेप में वर्णन (विचार) करके इस प्रकरण को हम यहीं समाप्त कर देंगे। स्वामी जी उत्तर भारत के विभिन्न नगरों में शास्त्रार्थ करते हुए भ्रमण करते थे । इस तथ्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक शास्त्रार्थ स्थल पर स्वामी जी की विचार प्रणाली और मत प्रतिपादन पद्धति पर शंका और शक व्यक्त करने वाले निःसंशय बहुत से प्रतिपक्षी विद्वान् होंगे; उन सभी शंकालु-संशयी विपक्षी विद्वानों के अनुकूल-प्रतिकूल मतों का खण्डन करने के लिये न तो हमारे पास समुचित अवसर है, और न ही यहां पर हमें यह सब अभीष्ट ही है । हम तो केवल, हमारे महाराष्ट्र प्रदेश (पुणे) में, जो स्वामी जी के विपक्षी या विरोधी थे, उनकी आक्षेपात्मक टीकाओं की समालोचना-समीक्षा, जनता के समक्ष प्रस्तुत करना चाहते हैं । क्योंकि देशभर में स्वामी जी पर जो आक्षेप (कटाक्ष) व्यक्त हुये, उनमें से महाराष्ट्रीय आलोचकों के विचार और लेख ही (महाराष्ट्रीय) लोगों को मालूम हैं । सम्भव है इन आलोचकों के विचारों को पढ़-सुनकर, महाराष्ट्रीय मन भ्रष्ट और दिशाहीन होकर स्वामी जी जैसे महापुरुष के प्रति अनादरणीय भावना बना लें (या अपूज्य भाव से परिपूर्ण हो गये हों) । इसलिये स्वामी दयानन्द जी किस श्रेणी के मनुष्य थे, तथा स्वामी जी के आलोचकों (टीकाकारों) ने उनकी जो 'न भूतो न भविष्यति' उपहास व निंदा की है, वह समुचित थी, या विशुद्ध रूप में ईर्ष्या-द्वेष की भावना से प्रेरित थी—इन सब विषयों पर अब हम विचार करना चाहते हैं । उस सत्पुरुष पर निरर्थक जब किसी ने आग उगली है, तो उसे शांतिपूर्वक सुनने या सहन करने की अपेक्षा सम्यक् उपाय से (साम्यापायानी) उसे बुझाने का प्रयत्न करना, हम अपने अनेक कर्तव्यों में से एक कर्तव्य समझते हैं । और इसी ध्येय से प्रेरित होकर, हम इस प्रस्तुत निबन्ध को समाप्त करने से पूर्व संक्षेप में उन महाराष्ट्रीय पण्डितों की आलोचना का विश्लेषण करना चाहते हैं ।

वर्तमान काल [स्वामी जी के मुंबई-पुणे आगमन काल[५]] में ऋषि दयानंद की मत प्रणाली पर आक्षेप करने वालों में उपर्युक्त तीन [प्रा० रामकृष्ण गोपाल भांडारकर, स्व० पंडित विष्णु शास्त्री चिपलूणकर व कैलासवासी विष्णु शास्त्री पंडित] महाराष्ट्रीय सज्जन (गृहस्थ) महत्त्वपूर्ण थे । इन आक्षेप कर्त्ताओं में निबंधमाला पत्रिका के सम्पादक श्री विष्णु शास्त्री चिपलूणकर सर्वाग्रणी थे । प्रा० भांडारकर आदि के आक्षेप और संशय तो आपसी वार्त्ताओं में ही प्रकट हुये थे । भांडारकर जी के स्वामी दयानंद जी से संबंधित अभिमत (विचार) लिखित या व्याख्यानों के रूप में कहीं भी प्रकट रूप में व्यक्त न होने के कारण, उन तक ही सीमित रहे। हां, उनके अतिरिक्त अन्य महाराष्ट्रीय विद्वान् (स्व०) विष्णु शास्त्री पंडित जी ने एक बार स्वामी दयानंद जी के साथ हुई अपनी प्रथम भेंट का लिखित रूप में वर्णन करते हुये, स्वामी जी के विरोध में एक आक्षेपात्मक लेख लिखा था । परंतु, जब आगे चलकर उन्हें दयानंद जी की विद्वत्ता और तपस्या (तपोबल) का परिचय मिला तो उन्होंने स्वामी जी के विरोध में एक शब्द (अक्षर) भी नहीं लिखा, और वे खुले रूप में स्वामी जी की प्रशंसा करने लगे । हमने (लेखक ने) तो अनेक बार उन (के मुख) से स्वामी जी की प्रशंसा सुनी थीं । इसके अतिरिक्त उनके द्वारा संपादित व संचालित इंदुप्रकाश नामक पत्रिका में भी

अहमदाबाद आदि नगरों में घटित घटनाओं के आधार पर, स्वामी जी संबंधी स्तुति और उनकी लोकप्रियता (लोकिफ) का परिचय देने वाले अनेक पत्र प्रकाशित हुये थे। इन तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि, विष्णु शास्त्री पंडित का दयानंद जी के प्रति अनुकूल मत हो गया था। जिनकी विचारधारा से अपनी विचारधारा प्रतिकूल हो, ऐसे व्यक्ति के संबंध में लगातार अनेक महीनों तक अपनी पत्रिका में अभिनंदनीय प्रशंसात्मक विस्तृत लेख प्रकाशित करने वाला उदार पत्रकार हमारी दृष्टि में कोई भो नहीं है। परंतु पत्रकार विष्णु शास्त्री पंडित इसके अपवाद थे। जब विष्णु शास्त्री पंडित ने अनवरत अनेक महीनों तक स्वामी दयानंद जी के गुणगौरव से संबंधित अनेक लेख, पत्र व समाचार प्रकाशित किये थे, तथा मुझसे संपन्न हुई अनेक वार्त्ताओं में भी, उन्होंने स्वामीजी के प्रति श्रद्धाभाव व्यक्त किया था, तो उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, दयानंद विरोधी आक्षेप कर्त्ताओं की श्रेणी(खेमे) में उनकी गणना करना अब ठीक नहीं है। हमारी दृष्टि में तो दयानंद विरोधी आक्षेप कर्त्ताओं में से उनका नाम निकाल देना ही ठीक होगा। प्रथम भेंट के समय स्वामी जी के संबन्ध में लोगों का जो विरुद्ध दृष्टिकोण बनता था। वह आगे चलकर स्वयं धीरे-धीरे परिवर्तित हो जाता था। इसका यथार्थ वर्णन, स्वामी जी के निधन पर, जो (उनसे संबंधित) श्रद्धांजलि (मृत्यु लेख) परक लेख ठाणे (महाराष्ट्र) से निकलने वाले सूर्योदय नामक पत्र में प्रकाशित हुआ था, उसमें हुआ है। उस लेख का आंशिक या संक्षिप्त रूप हम इस लेख के अन्त में—स्वामी जी के संबंध में समाचार पत्रों के अभिप्राय (स्वामीजीच्या संबंधाने वर्तमान पत्रांचे लेख) इस स्तंभ के नीचे स्वतंत्र रूप से एक परिशिष्ट के रूप में दे रहे हैं, उस [प्रथम] परिशिष्ट से भी यह स्पष्ट हो जायेगा कि निरंतर स्वामीजी के संपर्क में रहने के बाद लोगों के मत किस प्रकार से परिवर्तित हो जाते थे। उस लेख की तरह ही विष्णु शास्त्री पंडित ने भी स्वामी जी के संबन्ध में प्रथम भेंट में हुई गलतफहमी के आधार पर एक प्रतिकूल लेख लिखा था, परन्तु इसमें कोई संशय नहीं कि, बाद में सर्वसंशयों के निराकरण के बाद उनका स्वामी जी के संबंध में उज्वल मत हो गया था, यह बड़े ही संतोष और प्रसन्नता की बात है। समझदार और निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने वाले पुरुषों का यही स्वभाव होता है। वे पहले से बने हुये भ्रष्ट और दूषित मत के लिये किसी भी प्रकार का दुराग्रह न रखकर सदसद् विचार पूर्वक अपने पूर्वदूषित मतों को परिवर्तित करने के लिये भी तत्पर हो जाते हैं। इस कथन में हमें कोई आपत्ति नहीं है कि विष्णु शास्त्री पंडित समझदार और तटस्थ दृष्टि से विचार करने वाले पुरुष थे। स्वामी दयानन्द विरोधी सुप्रसिद्ध महाराष्ट्रीय टीकाकारों में से केवल, निबंधमालाकार (स्व०) विष्णुशास्त्री चिपलूणकर ही ऐसे टीकाकार थे, जिनके दुष्टोद्गार पूर्वक लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि, वह अंतिम समय तक स्वामी जी के विरोधी टीकाकार रहे। चिपलूणकर आज इस दुनियां में नहीं है। ऐसी स्थिति में हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि, हमारी उन पर किसी भी प्रकार की टीका करने का इरादा नहीं है। पाठक हमारे इस कथन पर विश्वास कर सकें, इसलिये हम उनके लिये एक छोटा सा प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि—चिपलूणकर ने अत्यंत श्रमपूर्वक लगभग डेढ वर्ष तक हमारे लेखों पर समीक्षा की थी। वह शतप्रतिशत हमारे मत से प्रतिकूल थी और हमने उस आलोचना का समा-

लोचनात्मक प्रत्युत्तर देने में समर्थ होते हुये भी, किसी भी प्रकार का उत्तर नहीं दिया था, क्योंकि हमने, अपने और चिपलूणकर के लेखों के सत्यासत्य विवेचन का कार्य उन विद्वज्जनों को सौंपना ज्यादा पसंद (प्रशस्तदिसते) किया था जिन्हें ईश्वर कृपा से इस प्रकार के हंस क्षीर न्याय की शक्ति और बुद्धि प्राप्त हुई थी।

स्वामी दयानंद जी के संबन्ध में चिपलूणकर जी द्वारा किये गए अशोभनीय (अनिर्वाच्य) निंदायुक्त लेखों को पढ़कर हमें उदासीन और तटस्थ रहना अच्छा (प्रशस्त) नहीं लगता। टीकाकार विष्णु शास्त्री और टीका के केन्द्र स्वामी दयानंद जी, ये दोनों भी पंचत्व को प्राप्त हो गये हैं। उन दोनों की कीर्ति और रचना साहित्य ही सम्प्रति अवशिष्ट हैं। तब ऐसी स्थिति में इन दोनों के लिखित साहित्य के आधार पर अनुकूल-प्रतिकूल विचार (अभिप्राय) और तत्संबंधी आलोचना करने का अधिकार सभी को समान रूप से प्राप्त है। तदनुसार पाठकों की अनुमति से थोड़े से अधिकार का हम प्रयोग करते हैं।

[उपलब्ध कागज-पत्रों के आधार पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि] ई० सन् १८७५ के जून-जुलाई मास में स्वामी जी यहां (पुणे) आये, और उनके लगभग यहां पर १५, १६ व्याख्यान हुये[२७]। उनमें से अनेक व्याख्यान तो उसी समय किसी पुरुषार्थी पुरुष ने प्रकाशित भी किये थे[२८]। स्वामी जी की वक्तृत्व शक्ति का वर्णन तो हम इससे पूर्व कर ही चुके हैं। पुण्यनगरी [पुणे] में विद्वत् और ज्ञानी समुदाय की ओर से तो, स्वामी जी का बहुत बड़े पैमाने पर [पूर्णोत्साह और हर्षोल्लास के साथ] स्वागत किया गया। लोग अतिशय श्रद्धा से उनके प्रवचनों और व्याख्यानों को सुनने के लिये आते थे। अधिकतम (बहुशः) विद्वान्, समझदार (समंजस) और उदारचेता सज्जनों की ओर से ही, स्वामी जी को संमान प्राप्त होता था। ईर्ष्याद्वेष युक्त (मात्सर्य द्वेषान्वित) शास्त्री, पंडित और भिक्षुकों से तो, स्वामी जी को आदर संमान मिलने की कोई संभावना ही न थी। इस प्रकार उनकी यहां अतिशय कीर्ति (वाहवा) हुई। उनके निर्भीक, स्पष्ट और संशय (किन्तु) विरहित भाषण सभी को अत्यंत ही प्रिय लगते थे। इसलिये उनके व्याख्यान सुनने के लिये श्रोतृ समुदाय की अतिशय भीड़ रहती थी (अगदी भिबड उडावी)⚜ इस प्रकार स्वामी जी का समय पुणे में बहुत ही अच्छी तरह

⚜ हिंदू क्लब[२९] में गत जुलाई मास में बहुत चहल-पहल थी (मोठी झटपट चालली होती)। पहले दिन स्वामी जी का और दूसरे दिन उपर्युक्त 'रेवरंड' 'बुवा' का (रेवरंड नीलकंठ शास्त्री गोरे का) व्याख्यान होता था। उसमें कुछ विचित्र मजे (मौज) की बात यह होती थी कि, स्वामी जी के व्याख्यान के समय तो, दीवान खाने में आने के लिये श्रोताओं की भीड़ लगी रहती थी। और रेवरंड बुवा शास्त्री के व्याख्यान काल में तो, यदि प्रत्येक श्रोता को अपने साथ आसन-बिस्तर लाकर, प्रभु ईसा मसीह का ध्यान करना भी होता, तो भी वहां पर यथेष्ट जगह उपलब्ध थी ! (आणि हातरुणाची गरज ही खरीच ?) वास्तव में व्याख्यान ही ऐसा होता था कि श्रोताओं का शयन के लिये बिस्तर ले जाना ही अच्छा था[३०]।

—निबन्धमाला [विष्णु शास्त्री चिपलूणकर]
नवम्बर १८७५, अंक—२३

व्यतीत हुआ, और पुण्यनगरी की विद्वत्‌मंडली ने तो, उनका बहुत ही संमान किया (फार योग्य परामर्श घेतल)। पर, यह संमान ईर्ष्यालु और नीच (हलकट) बुद्धि के लोगों को सहन नहीं हुआ और इसीलिये उन्होंने स्वामी जी की 'फजिती' करने का निश्चय कर लिया[३१]। एक दिन जब स्वामी जी के भक्त और स्नेही लोगों ने स्वामी जी को हाथी पर बिठाकर उनका जुलूस निकाला[३२]। (गावांत मिरवीत आणले] बस! तब उस अवसर का [अनुचित] लाभ उठाकर (कित्येक चटोर दांण्डया लोकांनी स्वामी जीच्या वरछोडया बरोबरश्च) बदमाश और उद्दंड लोगों ने स्वामी जी के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति को, एक सजे हुए गधे पर बिठाकर एक प्रति जुलूस (मिरवणूक) निकाला। फलतः थोड़ी ही देर में ऊधम मचा और वहां पर दंगा शुरू हो गया। अन्त में पुलिस की सहायता से वह प्रति जुलूस बंद करवाया गया। इत्यादि वर्णन उस समय के दैनिकों में और स्वयं निबन्धमाला पत्रिका के २३ वें अंक में, विस्तार के साथ बढ़ा-चढ़ाकर प्रकाशित किया है। खैर, इस प्रकार की घटना, वह भी पुणे जैसी विश्वविद्यालयीन विद्यानगरी में घटित होना, किसी के लिये (परकीयांस) भी अत्यन्त खेद की बात है, और जिन्होंने दयानन्द जी को आग्रहपूर्वक (मुद्दाम) पुण्यनगरी में आमन्त्रित किया था, उन्हें तो यह सब दुष्ट प्रसंग देखकर कितना दुःख हुआ होगा इसका अनुमान (कल्पना) पाठकों को सहज ही हो सकता है। अपने घर में सम्मानपूर्वक बुलाये हुये अतिथि का यदि इस तरह अपमान हो, और उनके विद्या तपोबल का अत्यधिक अवमूल्यन करने का (अगदी हीनत्व आणण्याचा) कुप्रयास किया जाय, तो इस प्रकार की घटनाओं को न तो देखा ही जा सकता है, और न सहन ही किया जा सकता है। खैर आगे चल कर पुणेवासियों की इस उद्दण्डता और अतिशय दुर्व्यवहार व छल-कपट के (सोरटगिरीच्या) विरुद्ध प्रायश्चित स्वरूप जैसी उन्हें सजा मिलनी चाहिये, वैसी आंशिक रूप में सजा भी मिली[३३]। इसलिये अब तद्विषयक कोई बात नहीं रही है। परन्तु, इन सब अनिष्ट (दुर) घटनाओं के विषय में, हमारे निबन्धमालाकार को यत्किंचित् भी दुःख प्रतीत नहीं हुआ, यह अत्यन्त ही आश्चर्य और दुःख की बात है। मालाकार ने अपनी निबन्धमाला के 'वक्तृत्व' इस निबन्ध में निरुपाय होकर वक्ताओं की माला में श्रीमद्दयानन्द जी का भी समावेश किया है[३४]। हम ऐसा समझते हैं कि यह कार्य उन्होंने निश्चित रूप से अपनी अन्तरात्मा (इच्छा) के विरुद्ध किया है। इसका अनुमान उन्होंने स्वामी जी के संबंध में जो अभिप्राय व्यक्त किया है, उससे सहजरूप से लगाया जा सकता है। या तो स्वामी जी के गुणावगुण और मतभेदों में पृथक्करण करने का सामर्थ्य निबन्ध मालाकार में नहीं था, और यदि था भी तो, तटस्थता से उस प्रकार का विश्लेषण करना उन्हें अभीष्ट नहीं था, यही कहना पड़ेगा। क्योंकि वैसा करते तो सम्भव है उनके बने बनाये प्रतिष्ठित सनातनी व्यक्तित्व पर ही आंच (मसलत) आती थी। पुणे में सम्पन्न विद्वद्वर्य स्वामी दयानन्द सरस्वती के लगभग १५, १६ (सवा दर्जन) व्याख्यान सुनकर निबन्धमालाकार विष्णु शास्त्री चिपलूणकर को व्याख्याता स्वामी जी में दूध की बटलोई खाली करने के अतिरिक्त (दुधाची चरवी रिचविण्यापेक्षा) अन्य कोई गुण नजर नहीं आया, यह आश्चर्य की बात है, या फिर इसमें आश्चर्य की तो ऐसी कौनसी बात है। मत्सर और अपरिपक्वता इन दो दुष्ट 'गुणों' के कारण तरुण निबन्ध मालाकार की न्याय दृष्टि निस्तेज हो (झापड़ घालून) गई थी। इसके साथ ही मानो उनकी गुण-

वगुण विवेचक सद्बुद्धि भी अत्यन्त ही शिथिल और मन्द हो गई थी। इसी प्रकार उन्हें स्वामी दयानन्द जी में थोड़े से भी सद्गुण नजर नहीं आये। पुणे के दुष्ट, कुत्सित (कुठाल) और असभ्य (असंभावित) लोग स्वामी जी के जुलूस के साथ-साथ गधे का प्रतिजुलूस निकालकर (स्वामी जी चा वर घोड़ा मिरवला आणि कुठाललोकांनी गाढवा वा लविना काढून)सभ्य समाज में ही उपहासके ही पात्र बने। इससे अधिक और कुछ भी नहीं हुआ। परन्तु, इसमें अतिशय दुःख की बात यह है कि, उन असभ्य(असंभावित)लोगों के समाज में हमारे युवक निबन्धमालाकार ने अपने पाखण्डी, दुष्ट, अतिचारी सहयोगियों की पीठ थपथपाई। यह एक दृष्टि से अच्छा ही हुआ। (मिलून त्यांणी आपल्या सोरट संवगड्याची पाठ थोपटली झाली हो गोष्ट अत्यन्त इष्ट झाली) और इस प्रकार का 'गौरव' अपनी पुस्तकों में प्रसिद्ध कर उन्होंने अपने जीवनभर के सुन्दर लेखों को कलुषित कर दिया। यह कोई अच्छी बात नहीं हुई। हमारा यह विश्वास है कि इस कालिमा को दूर किया जा सकता था, यदि निबन्धमालाकार स्वामी जी के देहावसान के समय तक जीवित रहते, क्योंकि, इन पांच-सात वर्षों में स्वामी जी की कीर्ति दिग्दिगंत में व्याप्त हुई है, और हजारों लोग स्वामी जी के भक्त और अनुयायी बनकर उनके गुण वर्णन करने और भजन गाने में तल्लीन हो गये हैं। स्वामी जी के इस उत्कर्ष को देखकर मालाकार जी के कुत्सित मतों में परिवर्तन हो सकता था, और वे स्वयं स्वामी जी के प्रशंसक और अनुयायी बन गये होते। परन्तु दुःख की बात यह है कि मालाकार दीर्घायु न प्राप्त कर सके, और स्वामी जी से तीन वर्ष पहले ही (निष्करुण यमराज के दाढ में) काल कवलित हो गये। जिससे वे पश्चात्ताप भी न कर पाये। बस! अन्ततः यमराज के सामने किसका वश चलता है! उनके लिये यह बात शेष [अपूर्ण-अधूरी] रह गयी कि—स्वामी जी के मन्तव्यों और उनके द्वारा रचित ग्रन्थों पर शांतिपूर्वक विचार करने का उन्हें अवसर भी न मिल पाया था कि, उन्होंने स्वामी जी के सम्बन्ध में बहुत ही······जल्दबाजी में अपना अभिप्राय व्यक्त कर दिया, और इसी कारण उनके द्वारा दयानंद जी के सम्बन्ध में निंदा परक लेख लिखा गया, और वह उनके निधन के बाद भी शेष रह गया है। इसलिये बुरा मालूम होता है। क्योंकि, उससे निबन्धमालाकार विष्णु शास्त्री चिपलूणकर की धवल कीर्ति कलंकित हो जाती है। पुणे नगर के मूर्ख लोगों ने स्वामी जी की निन्दा और निबन्ध मालाकार ने स्वामी जी के विषय में उपहास गर्भित लेख लिखे। स्वामी जी ऐसी निंदा और उपहास के (किसी अंश में) पात्र थे या नहीं? इसका विचार तो हमारे पाठक करेंगे ही। हमारा तो निष्कर्ष यही है कि—स्वामी दयानंद जी सरस्वती के महाराष्ट्रीय आक्षेप कर्त्ताओं में विष्णु शास्त्री चिपलूणकर एक प्रमुख आक्षेपकर्त्ता थे। हम यहां पर यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि, उनके आक्षेप और उनके आक्षेपों की तरह उनके लेख भी कितने सदोष और कुत्सित भावनाओं से प्रेरित थे तथा ईर्ष्या-द्वेष और बालबुद्धि-युक्त थे। इसका संक्षेप में ऊपर स्पष्टीकरण किया गया है। अभिमान में मस्त या गर्व में चूर मनुष्य कभी-कभी कितना अश्लाघ्य व्यवहार [दुराचरण] कर बैठता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे इस मराठी के प्रसिद्ध लेखक निबंधमालाकार विष्णु शास्त्री चिपलूणकर का है, इसलिये कोई भी लेख और कोई सा भी आक्षेप प्रकाशित करने से पूर्व

यदि उसे सोच-विचारपूर्वक लिखा जाय तो उससे किसी भी विषय पर लोगों का ऋष्ट और प्रतिकूल मत होने की संभावना (भीति) नहीं रहती है। इस लेखकीय मर्यादा की ओर सभी लेखकों को ध्यान रखना चाहिये। दयानंद जी की निंदा पुणेवासियों और उनके बन्धु मालाकार जी ने की, तो भी समस्त भारतवर्ष और उसके लेखक, [कुछेक] पुणेवासियों और निबन्ध मालाकार की असभ्य और (असंभावित आणि) कुत्सित नहीं है। ऐसी भी कोई बात नहीं हैं कि दुनिया में गुण-दोष परीक्षण की अनावृष्टि होने के कारण आज सर्वत्र दुर्भिक्ष पड़ा हुआ है। पुणेवासियों ने अपने दुर्व्यवहार (अश्लील) से स्वामी जी का अपमान और अपकीर्ति (दुर्लौकिक) फैलाने की कोशिश की, परन्तु शेष आर्यावर्त्त में पुणे के समान दुर्व्यवहार कहीं भो नहीं हुआ। जहां चार सभ्य लोग रहते हैं वहां दस असभ्य लोग भी रहते ही हैं। इस प्रकार की स्थिति तो सर्वत्र दृग्गोचर होती है। परन्तु खेद की बात तो यह है कि निबन्धमालाकार जैसे सभ्य समझे जाने वाले लोग भी कभी-कभी दुराग्रह से प्रेरित होकर (पेट्न) असभ्यों से मैत्री कर लेते हैं, और उनके मित्र बनकर उन्हीं को तरह निंदनीय कर्म करने लग जाते हैं—यह बहुत बुरो बात है। हमें यह बात स्वोकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि—सभी स्थानों पर स्वामी जो का अतिशय आदर-सत्कार हुआ। उनके जीवनकाल में और देहांत के पश्चात् भी उन्हें समाज की ओर से अतिशय सम्मान प्राप्त हुआ, और इससे स्पष्ट है कि उनके सद्गुण. उनकी विद्वत्ता और तपश्चर्या कृतार्थ हो गई थी। जिस प्रकार गजेन्द्रारूढ चक्रवर्त्ती राजा की सवारी (स्वारी) नगरवीथियों से गुजरने के बाद जोर-शोर से कुत्तों (ग्रामसिंहों) का भौंकना चालू हो जाता है। उसी प्रकार (तद्वत्) इन सद्गुरु स्वामी दयानन्द जी के गजेन्द्र सम प्रभावशाली विशाल व्यक्तित्व को देखकर इस संसार के अनेक कुत्ते (ग्रामसिंह) भौंकते रहे, या उन्होंने उनकी उपहास गर्भित निंदा (कुचेष्टा) भी की, तो भी वह गम्भीरवृत्ति का दिग्गज विचलित होने [डगमगाने] वाला नहीं था। और (तदनुसार) वह कभी विचलित हुआ भी नहीं। जैसा कि हम इससे पूर्व लिख चुके हैं कि सन्त तुकाराम (बोवा) का छल करने के लिये जिस प्रकार चांडालवृत्ति का ब्रह्मपुरुष [ब्राह्मण] रामभट्ट वाघोलकर हुआ था[३५], ठीक उसी प्रकार की छलवादीवृत्ति पुणेवासियों अथवा निबन्धमालाकार में सन्निविष्ट (निविष्ट) हुई थी। यह हठात् कहना पड़ता है कि, अगर वैसा नहीं होता तो उन्हें स्वामी जी के विषय में इतना द्वेष (अप्रेम) और अनादर (अभक्ति) नहीं होता था। स्वामी जी की अनुकूल रहनेवाली समस्त भारत भूमि एक ओर थी, तो दूसरी ओर उसकी निंदा और उपहास करने वाले पुणे नगर [के कुछ लोग], और उसमें निवास (अधिवास) करनेवाले निबन्धमालाकार थे। किस प्रकार आखिर इस विरोध में संगति बैठे? तब इस (वि) संगति में निश्चित रूप से कोई तो 'अपशकुनी' (नाठाल खटचाल) ही होगा और उसका अधिकांश भाग हमारे पुणेनगर और निबन्धमालाकार की ओर जाता है, यह देखकर निबन्धमालाकार से 'वात्सल्य' रखने वाले उनके मित्रों में से किसे बुरा भला प्रतीत नहीं होगा! खैर। 'गतं न शोचामि कृतं न मन्ये'! अब उस बात का कोई उपाय भी नहीं है। आगे तो कम से कम इन संकेतों को विशेष रूप से ख्याल में रखकर तदनुसार सदसद् विचारपूर्वक और दूर दृष्टि रखकर सद्व्यवहार करना चाहिये—यह सब लिखने का यही तात्पर्य है। इस स्पष्टीकरण के साथ हम आगे बढ़ते हैं।

स्वामी दयानंद सरस्वती के जीवन चरित्र और कीर्ति को सुनकर अमेरिका के अनेक लोग उनके भक्त बन गये थे। (भजनी लागले)। उनमें से कुछेक लोग तो भारत आकर स्वामी जी की सेवा में तल्लीन हो गये थे। इन अमेरिका प्रदेशस्थ थियोसाफिकल सोसाइटी के लोगों से तो हमारे पाठक सुपरिचित होंगे[३६]। इस सोसाइटी का 'थियोसाफिस्ट' नामक पत्र प्रतिमास प्रकाशित होता है। और इस पत्र [में प्रकाशित जीवन चरित्र-आत्मकथा] के माध्यम से दयानंद जी की लोकप्रियता और विद्वत्ता अखिल भूमंडल में व्याप्त हो गई है। स्वामी जी की कीर्ति को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुंचाने में उपर्युक्त मासिक की बहुत बड़ी भूमिका रही है, और इसी के फल-स्वरूप सुदूर देश के लोग भी स्वामी जी के विषय में पूछताछ और स्पष्टीकरण भी चाहने लगे हैं। हमें यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि सात समुद्र पार और पाताल (अमेरिका) लोक में भी जिसकी यशोदुंदुभि गूंज रही है, और वहां पर जिसकी कीर्ति पताका निरंतर (सदोदित) फहरा रही है। इस प्रकार का अद्वितीय व अपूर्व महापुरुष, सद्धर्म संस्थापकों में स्वामी दयानंद सरस्वती के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हुआ। अतः (आतां) उपर्युक्त थियोसाफिकल सोसाइटी और स्वामी जी में (आगे चलकर जो) थोड़ा सा मतभेद या विरोध (=संबंध विच्छेद) हो जाने के पश्चात् भी थियोसाफिकल सोसाइटी के सभासदों में स्वामीजी के निर्वाण पर जो श्रद्धांजली परक (मृत्युलेख) लेख लिखा था, उससे इस तथ्य की पुष्टि होती है। इस प्रकार इस सत्पुरुष को समस्त जाति और संप्रदायों (धर्मों) की ओर से बहुत अधिक आदर प्राप्त हुआ था, निःसंशय [डंके की चोट के साथ] हम यह कहते हैं कि उस आदर के लिये वह महापुरुष पूर्णतया [शतप्रतिशत] योग्य था।

स्वामी जी ने अपनी ग्रंथ संपदा में व अन्यत्र जो अपने मत प्रतिपादित किये हैं, उनका उनके [स्वर्गवास के] पश्चात् सदुपयोग और मूल्यांकन जिस प्रकार से होना होगा, अवश्य होगा। परंतु अत्यल्प समय [जन्म १८२४ निर्वाण १८८३] में उनसे जितना कार्य संभव हो सका, उतना उन्होंने किया[३७] और अब उन्होंने अपना वह कार्य अपने अनुयायियों और सच्छिष्यों को सौंप दिया है। उसका वे जैसा सदुपयोग या दुरुपयोग करेंगे, वैसा ही होगा। छत्रपति शिवाजी महाराज ने दुष्ट यवनों को धूलि-धूसरित कर गो ब्राह्मण प्रतिपालन के लिये राज्य शासन (सुयंत्र राज्यकारभाराची) योग्य व्यवस्था की थी; परंतु शिवाजी के बाद जिनके हाथों में वह राज्य सत्ता आयी, उन लोगों के आचरण के अनुसार ही उस राजतंत्र की परिणति हुई, उसी प्रकार स्वामी जी ने व्यवस्था की है, उस व्यवस्था को कार्यरूप में परिणत करना भी उनके अनुयायियों पर निर्भर है। (तिचा परिणामही तिच्या बहिवाटदारा प्रमाणे आणिकारभाऱ्या प्रमाणे होणार आहे)। जिस धुन और योग्यता से वे कार्य करेंगे, वैसा ही वह कल्पवृक्ष पल्लवित और पुष्पित होगा। उनके अनुयायियों और कार्यकर्त्ताओं का जैसा स्वामी जी के प्रति अनुराग (प्रेम), और उनकी अपनी जैसी योग्यता, निष्ठा, दृढता (निश्चय दार्ढ्य) व आस्था होगी, उसी प्रकार सब घटनायें अनुकूल या प्रतिकूल घटित होती रहेंगी। स्वामी जी ने सद्धर्म का मार्ग बतलाकर अनेक स्थानों पर आर्यसमाज की शाखाओं [संस्थाओं] को, अपने द्वारा संस्थापित सद्धर्म प्रसार के लिये अपनी सहयोगिनी संस्था के रूप में स्थापित किया है। उन आर्यसमाजों का सहयोग, स्वामी जी के सद्धेतु महदुद्देश्य तथा निर्मल

यश को, अप्रतिबद्ध रूप से, दुनिया में अपना उत्तम रूप बतलायेगा, और उनका असहयोग हुआ तो उनका वह सुयश और सद्धेतु उनकी पुस्तकों और विचारों तक ही सीमित रह जायेगा। उसका उत्तरदायित्व अब स्वामीजी पर न रहकर उनके द्वारा नियुक्त उपर्युक्त सहयोगी, अनुयायी और कार्यकर्त्ताओं पर निर्भर है, उसी प्रकार बाजारों की दुकान में श्रेष्ठ व सर्वोत्कृष्ट (शेलक्या) माल का ढेर पड़ा हुआ है। परन्तु उसकी बिक्री होकर लोकोपयोगी होना, यह सब ग्रामीण लोगों की [रुचि और] सामर्थ्य पर ही निर्भर है। उच्चतम माल की बिक्री के लिये लोगों में सम्पन्नता होनी जरूरी है। कंगाल और निर्धन (नादार) लोगों में उसकी बिक्री होना कठिन है, क्योंकि वे 'भिक्षुक' लोग उच्चतम माल की ओर नजर उठाते हुए भी भयभीत से होते हैं। उसी प्रकार स्वामी जी का 'सद्धर्मत्व' दुनिया के सामने पड़ा हुआ है। उनकी सदसद् बुद्धि के अनुसार उस धर्मतत्त्व को ग्राहक मिलेंगे। तदनुसार [वेदमंथन कर] धर्मतत्त्व प्रस्तुत करनेवाले सत्पुरुष का सद्धेतु सफल या विफल होगा। इस सफलता-विफलता का श्रेय या दुःश्रेय, दयानन्द सरस्वती के अनुयायियों पर निर्भर है। अब तो स्वामी दयानन्द जी, अपने परिश्रम वृक्ष को, किस प्रकार के फल आये हैं, यह देखने के लिये तो इस मृत्युलोक में आयेंगे नहीं। और यदि उनके द्वारा लगाया हुआ अमृतवृक्ष लोगों की अकर्मण्यता (हयगईनें) या उपेक्षा से (हेलसांडीने) मुरझा (वठून) या झुलस भी गया तो स्वामी जी को अब किसी भी प्रकार का दुःख नहीं होगा। और यदि लोगों ने पुनः आस्थापूर्वक उस अमृतवृक्ष की उपासना [सतर्कता से देखभाल] की, और पूरी लगन से उसका सिंचन किया तो उसे कालांतर में जो फल (फलभार) आयेगा, उसका परिपूर्ण उपभोग किया तो भी उससे स्वामी जी को कोई प्रत्यक्ष सुख-लाभ भी होने वाला नहीं है। उनके द्वारा लगाये गये सद्धर्मरूपी छायावृक्ष की, बड़े ही ध्यानपूर्वक सतर्कता से उस की सेवा-रक्षा की गई तो, वह अपने ऐहिक मानव जीवन के लिये ही विशेषरूप से उपयोगी सिद्ध होने वाला है। इससे अधिक कुछ कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है।

यह तो हम प्रारम्भ में ही लिख चुके हैं कि स्वामी जी को मृत्यु किसी षड्यंत्र का परिणाम नहीं हैं (स्वामी जीच्या मृत्यूस फारसें काठी कारण झाले नाहीं)। फिर भी उन्हें यह अनुभव हो गया था कि इस बीमारी से (दुखण्यांतून) मैं बच नहीं पाऊंगा। इसीलिये उन्होंने अपने द्वारा स्थापित [परोपकारिणी] सभादि संस्थाओं में अपने [देहावसान के] बाद किस प्रकार की व्यवस्था करनी चाहिये, इत्यादि विषयों के स्पष्टीकरण के लिये एक मृत्युपत्र (स्वीकृति पत्र=वसीयतनामा) तैयार करके रखा है।[३५] वह मृत्युपत्र उदयपुर के महाराणा जी की शासकीय मुद्रा (शिक्का) व हस्ताक्षरों से युक्त है। अब स्वामी जी के निधन के पश्चात् उस मृत्युपत्र के अनुसार स्वामी जी द्वारा स्थापित सभा [संस्थाओं] की सब व्यवस्था होगी। अपने इस मुम्बई [महाराष्ट्र] प्रांत में प्रसिद्ध विष्णुबुवा ब्रह्मचारी के अनुयायी जिस प्रकार उनका मृत्यु [निर्वाण] दिवस महाशिवरात्रि के दूसरे दिन 'पुण्यतिथि' के रूप में मनाते हैं। ऐसा विश्वास है कि ठीक उसी प्रकार समस्त आर्यसमाजीय बन्धु-बांधव स्वामी जी के निर्वाण (मृत्यु) दिवस को महत्वपूर्ण समझकर (पवित्र मान तील) पुण्यतिथि के रूप में मनायेंगे। स्वामी जी ने अपने उपर्युक्त 'मृत्युपत्र' में अनेक व्यक्तियों के नाम अंकित (नमूद) कर

उनकी स्वदेशहितकारिणी [परोपकारिणी] नाम की एक सभा बनाई है (नेमिली)। हमने सुना है कि स्वामी जी अपने 'मृत्युपत्र' में लिख गये हैं कि—स्वदेशहितकारिणी सभा का कर्त्तव्य है कि वह एक शिरोमणिसभा के रूप में, उदयपुर के महाराणा की अध्यक्षता में समस्त भारतवर्षीय आर्य-समाजों के काम-काज का निरीक्षण करे और स्वामी जी के नाम पर जो भी कार्य करना हो वह इस 'स्वदेशहितकारिणी' सभा की अनुमति (के विचार) से ही प्रारम्भ होना चाहिये। हमें इसमें कोई संशय नहीं कि स्वामी जी के मृत्युपत्र के अनुसार ही सभी कार्य सम्पन्न होंगे[३६]।

स्वामी जी के निधन का समाचार तार द्वारा संपूर्ण देश में पहुंचने के साथ ही, उनकी समस्त मण्डली शोक सागर में डूब गयी। (जो हल कोल्लोल उडाया तो सांगता पुर्वत नाहीं)। और शोक विह्वल लक्षावधि लोगों की ओर से शोक-संवेदना सम्बन्धी पत्र तार और स्वयं महाराणा उदयपुर के पास पहुंचे। स्वामी जी के समस्त शिष्य वर्ग में उदयपुर के महाराणा पट्टशिष्य थे। और—उनके [स्वामी जी के] पश्चात् महाराणा उदयपुर के हाथ से प्राय: (बहुतेक) सर्वविध व्यवस्था होनी चाहिये'। स्वामी जी द्वारा लिखित मृत्युपत्र (वसीतनामे) के इस आशय के अनुसार तो, यह महाराणा उदयपुर की पट्टशिष्य सम्बन्धी सत्यवार्त्ता, पाठकों को सहजरूप में ही समझ में आ जायेगी। इसके अतिरिक्त सभी को यह आशा [एवम् विश्वास] है कि उदयपुर के राजा ऐश्वर्य सम्पन्न (श्रीमान्) और राजा उपाधिधारी [राजपदधारी] हैं, अत: अपने मूल उद्देश्य के अनुसार सभी विषयों को यथोचित संपन्न कराने में, वे किसी भी प्रकार दुर्बल (असमर्थ) न होने से, उनके द्वारा की गई व्यवस्था सभी अच्छी तरह और विश्वासनीय (शाश्वतीची) होगी। गत दिसम्बर मास में उदयपुर में समस्त भारतवर्ष के सैकड़ों लोग (स्वामी जी के पश्चात्) 'स्वामी जी के महान् ध्येय को पूर्ण करने की दिशा में हमें कौन से कदम उठाने चाहिये'। इस विषय पर विचार करने के लिये एकत्रित हुये थे। इसके सिवाय स्वामी जी के भक्तों की यथार्थ भक्ति का परिचय भी तो नहीं मिल सकता है।

इस प्रकार इस महापुरुष के विषय में हमें जो कुछ लिखना था वह सब लिखकर यह लिखा हुआ भी हम उस सत्पुरुष के चरण कमलों में समर्पित करते हैं[४०]।

[दयानन्द सरस्वती : समाचार पत्रों के अभिप्राय]

इससे आगे हमने स्वामी जी के विषय में जो देशी व विदेशी पत्रकारों ने अपनी शोक-संवेदनायें और अभिप्राय समाचार पत्रों में प्रकाशित किये हैं, उनमें से कुछ (कित्येक) पत्रों के उद्धरण उद्धृत करते हैं। इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जायेगा कि स्वामी दयानन्द जी कितने लोकप्रिय थे। उन्हें हिन्दू, मुसलमान, पारसी, यूरोपियन, यहूदी आदि सभी जाति, वर्ण व संप्रदायों (धर्मों) के लोग कितना चाहते थे। मुंबई में 'वाइस आफ इंडिया' अर्थात् 'भारतवर्ष का कहना' इस नाम का एक

पाक्षिक पत्र (पुस्तक) निकलता है, पहले वह मासिक था, उसमें विविध महत्वपूर्ण विषयों के पृथक्-पृथक् स्तम्भ देकर उस-उस स्तम्भ के नीचे स्वदेशी पत्रकारों के उस विषय के सम्बन्ध में क्या अभिप्राय हैं, वह संक्षेप में (अंग्रेजी भाषा में) देने की प्रथा (वहिवाट) है। तदनुसार गत नवम्बर के 'वाइस आफ इंडिया' के अंक में दयानन्द सरस्वती' शीर्षक से एक स्वतन्त्र स्तम्भ देकर, उसके नीचे उस महापुरुष के सम्बन्ध में स्वदेशी पत्रकारों के अनेक (बहुतेक) उद्धरण उद्धृत किये हैं। उसके अतिरिक्त समस्त भारतवर्ष के और इंग्लैण्ड (विलायत), अमेरिका आदि प्रसिद्ध 'विदेशीय' पत्रकारों के क्या-क्या अभिप्राय (मत) हैं। उन सब अभिप्रायों को एकत्रित करना (म्हणजे=अर्थात्) [अपने आप में] महत्प्रयास और दीर्घकालीन काम होने के कारण, जितने अभिप्राय समय पर प्राप्त हो सके, उतने यहां हमने संकलित (निवड) कर निम्न प्रकारेण उद्धृत किये हैं। चरित्र लेखन की नवीन परिपाटी के अनुसार उस नायक के विषय में [प्रसिद्ध] लोगों के अभिप्रायों (संमतियों) का संकलन करने का यह एक नया ही संप्रदाय [मार्ग] दिखलाई देगा, फिर भी वह नितांत ही नया नहीं है। यह तो हमारे पाठकों को मालूम ही है कि जिन अंग्रेजों के चरित्र लेखन पद्धति का हमने अनुकरण किया है, उन अंग्रेजों के चरित्रों में इस प्रकार का लोकाभिप्राय [जनमत] संकलित [अंकित] करने की बहुत बड़ी व अतिशय दृढ प्रथा है। इसलिये हमारा भी यह विश्वास है कि स्वामी जी विषयक यह भाग पाठकों के लिये पठनीय होगा। उसी प्रकार स्वामी जी ने कौन-कौन से ग्रंथ लिखे हैं, उन ग्रंथों की सूची भी अंत [परिशिष्ट २] में दी गई है। उससे यह समझ में आ जायेगा कि उनका कैसा और कौन सा प्रयास (उद्योग) किस प्रकार चल रहा था[४१]।

पं० स्वामी दयानंद के विषय में अनेक समाचार पत्रों के अभिप्राय निम्न प्रकार हैं:—

पंडित दयानंद सरस्वती साधारण योग्यता के धर्मोपदेशक नहीं थे, उनके धर्म-मत चाहे हमें मान्य हो या न हों, उनके द्वारा किये गये वेदार्थ से चाहे हम असहमत हों, उस विषय में हमें कुछ कहना नहीं है। वे योगी थे और उन्होंने संसार का त्याग किया था। फिर भी उन्हें सांसारिक (लौकिक) ज्ञान इतना उत्कृष्ट था कि वैसा ज्ञान बहुत ही कम लोगों में दिखलाई देता था। उनके निधन से उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज की ही अपूरणीय क्षति (अनिवार्य हानि) हुई हो, ऐसी बात नहीं, अपितु उनके निधन से समस्त राष्ट्र की ही विलक्षण क्षति हुई है। उनकी अप्रतिम विद्वत्ता को लोग कभी भी नहीं भुला पायेंगे, और स्वामीजी (पंडित जी) की याद सभी को अनवरत आती रहेगी और उनके प्रति सभी को गौरवानंद भी अनुभव होता रहेगा।

—बंगाली, (कलकत्ता)[४२]

हमें शोकाकुल कर परलोकवासी हुये स्वामीजी (पंडित जी) के उपदेशों का परिणाम केवल आर्यसमाज पर ही हुआ हो, ऐसी बात नहीं, अपितु आर्यसमाज के अतिरिक्त अन्य लोगों के विचारों में भी परिवर्तन हुआ है। उन्होंने जो कुछ बताया या उपदेश किया वह सभी हमें मान्य है, ऐसी बात नहीं, फिर हम यह कहे विना नहीं रह सकते कि, पंडित दयानंद एक असाधारण (मोठया) योग्यता के महापुरुष थे, और उनकी बुद्धि विशाल थी। उन्होंने अपनी अद्वितीय बुद्धि सामर्थ्य से [अनार्ष]

शास्त्रों में पाये गये सभी पाखंडों को खंडित किया था (भुगारून दिली)। यह बात अतिशय अभिनंदनीय है कि, उनकी याद निरंतर बनी रहे, इसलिये उनकी भक्तमंडली इस शहर में एक पाठशाला, उसमें वेद और अंग्रेजी के अध्ययन की व्यवस्था करवा रही है। यह बात भी सच है कि इस प्रकार की पाठशाला निर्बाध रूप से संचालित होने के लिये विपुल द्रव्य संकलित होना चाहिये। और हमें यह विश्वास है कि स्वामीजी को चाहने वाले असंख्य लोगों के होने से वह द्रव्य अनायास ही एकत्रित हो जायेगा।

—ट्रिब्यून, (लाहौर)[४३]

आर्यसमाज के प्रसिद्ध संस्थापक और वर्तमान पीढ़ी के प्रतिष्ठित (नामांकित) सुधारक स्वामी दयानंद के निधन की अति दुःखद वार्त्ता यथासमय न दे पाने के कारण हमें अतिशय पश्चात्ताप हो रहा है। उनकी अगाध विद्वत्ता, अनुपम तार्किकता(कोटिकस) और प्रशंसनीय स्वातन्त्र्य प्रेम इत्यादि गुण इस युग के लोग कभी भी नहीं भुला सकेंगे।

—इंडियन एम्पायर (कलकत्ता)[४४]

पंण्डित दयानंद श्रेष्ठ वेदांती थे। और वे वेदों की ऋचाओं का [अन्य वेदभाष्यकर्ता विद्वानों से अलग, निघुंट-निरुक्त पर आधारित] नया ही अर्थ करते थे। वे जब संस्कृत में बोलते थे, तब उनके व्याख्यानों की मधुरता (रसाव्वता) से अतिशय (विलक्षण) आनंद मिलता था।

—हिंदू पेट्रिअट, (कलकत्ता)[४५]

संस्कृत के मार्मिक विद्वान्, आर्य धर्म ग्रंथों के पारंगत, मनोहर वाक्चातुर्य, उत्तम आदर-सत्कार(आदरातिथ्य)इत्यादि जो-जो गुण उत्कृष्ट धर्मोपदेशकों में होने चाहियें। वे सब पं० दयानंद जी में थे, धार्मिक क्षेत्र में सुधार करने के उद्देश्य से उनके द्वारा स्थापित आर्यसमाज चिरकाल तक टिकेगा। 'भारत में आगे कौन-सा धर्म चले' जब इस सम्बन्ध में निर्णय लिया जायेगा, तब लोग उनके उपदेशों को भूलेंगे नहीं, हिंदू धर्म का पुरातन विशुद्ध रूप पुनः प्रस्थापित कर उसमें रूढ हुये पाखण्डों को बहिष्कृत करना—यह स्वामी जी का मुख्य उद्देश्य था।

—इंडियन क्रानिकल (बांकीपुर)

पंडित दयानंद सुप्रसिद्ध संस्कृत पंडित और पूर्णोत्साह से कार्य करने वाले [असाधारण व्यक्ति] थे। उनके निधन से देश की अपरिमित (अतोनात) क्षति हुई है।

—हिंदू आब्झरवर, (मद्रास)

यह तो अत्यन्त ही आवश्यक (इष्ट) है कि स्वामी दयानन्द के अतिप्रचुर (परमोदार) स्वदेशाभिमान के लिये, देशवासियों ने उनका स्मरण निरन्तर करना चाहिये। उनमें वस्तुतः स्वदेशाभिमान के अतिरिक्त और भी अनेक गुण थे। श्रीमच्छंकराचार्य और तत्कालीन अन्य विद्यामहासागरों के समान इस पण्डित शिरोमणि (अवतंस) की योग्यता थी। आधुनिक अतिनिकृष्ट काल

में भी मानवमात्र में दृग्गोचर न होने वाले, परमोत्साह, बुद्धिमत्ता, और पुरुषार्थ (उद्योग), दृढ़तादि गुण स्वामी जी में कूट-कूट कर भरे हुये थे। उनके उपदेशों में प्रतिपादित धर्म, और उनके द्वारा स्वीकारे हुये मत से, यदि कोई असहमत (अमान्य) होता हो, तो हो, परन्तु भारतवर्ष में उत्पन्न हुये महापुरुषों में स्वामी दयानन्द की गणना करने से कतराना (नाकारणे) हमारी दृष्टि में उनके विचारों की अतिशय संकीर्णता और कार्पण्यवृत्ति का परिचायक (प्रकटीकरण) है।

—पंजाब टाईम्स, (रावलपिंडी)

पुरातन प्रणाली के अनुसार धार्मिक क्षेत्र में सुधार करने वाला भारत का एक मुकुटमणि खो गया! आदि ग्रन्थ वेद के श्रेष्ठ विचारों का संमान्य अर्थ करने वाला पण्डित [दयानन्द रूपी] सूर्य अस्त हो गया! इतिहास में निर्मल कीर्तिपताका फहराने वाला पंडितवर्य दयानन्द का अवतार समाप्त हो गया! स्वामी जी द्वारा किये गये वेद मन्त्रों (वेदवाक्यों) के अर्थ की यथार्थता और सत्यता के विषय में किसी को सन्देह प्रतीत होता हो तो हो, परन्तु [अंध विश्वास ग्रस्त निमग्न मानव समाज को] उपदेश देने की उत्सुकता (उपदेशाविषयी औत्सुक्य), सुमधुर भाषा, वाक्चातुर्य द्वारा प्रतिपक्षी को निरुत्तर करनेवाली हृदयस्पर्शिता (वाक्चातुर्यांची निरुत्तरकारी हृदयंगमता), पवित्र ध्येय, निश्चयात्मक दृढ़ता, मन की सरलता, स्वाधीनचेता आचार्य और विचारक (वर्तनाची आणि वृत्तिजी स्वतन्त्रता), तथा धर्म-भ्रम, मूर्तिपूजा, अर्थहीन दंभ, इत्यादि के घोर संकट में डूबे हुये देश का पुनरुत्थान करने की प्रबल आकांक्षा रखनेवाला व्यक्ति अब कहीं भी नजर नहीं आयेगा, क्या इस अभाव की अनुभूति प्रत्येक [व्यक्ति] को नहीं होगी?

—गुजरात मित्र, (सूरत)

श्रीमद्दयानन्द सरस्वती की ग्रन्थमाला[५०] ⚜

१. सत्यार्थप्रकाश
२. संस्कारविधि
३. वल्लभमतखण्डन
४. स्वामी नारायणमतखण्डन
५. वेदान्तिध्वांतनिवारणम्
६. आर्याभिविनय
७. संध्योपासना
८. पंचमहायज्ञविधि
९. गोकरुणानिधि

⚜ इस सूची में पुस्तकों का निर्देश क्रम बद्ध नहीं है, कुछ नाम छूट गये हैं तथा कुछ नाम भ्रामक भी है। यु० मी०

१०. भ्रमोच्छेदन
११. अनुभ्रमच्छेदन
१२. काशी शास्त्रार्थ
१३. चांदपुर शास्त्रार्थ
१४. वेदांग-प्रकाश
  १. वर्णोच्चारण शिक्षा
  २. [संस्कृत] वाक्यप्रबोध
  ३. व्यवहारभानु
  ४. संधिप्रकरणम्
  ५. नामिक
  ६. उणादि [कोष]
  ७. गणपाठ
  ८. निघण्टु
  ९. निरुक्त ❦
  १०. योगशास्त्र ✠
१५. अपूर्व वेदभाष्य ऋङ्माध्यन्दिन [संहिता]
१६. कारकीय
१७. सामासिक
१८. अव्ययार्थ
१९. आख्यातिक
२०. अष्टाध्यायी

स्वामी दयानन्द जी आश्रय से उनके विचारों का प्रतिपादन करने वाले जो मासिक, पुस्तक, [नियतकालिक] पत्र[२१] प्रकाशित होते थे। वे निम्न प्रकार हैं—

१. दयानन्द दिग्विजयार्क : पं० गोपाल हरि शर्मा फर्रुखाबाद रचित ग्रन्थ
२. आर्य (अंग्रेजी)
३. भारत सुदशा प्रवर्त्तक
४. अजमेर हितैषी (देश हितैषी)

❦ निरुक्त का मुद्रण वेदाङ्गप्रकाश के रूप में नहीं हुआ था। इतना ही नहीं उसका प्रकाशन भी ऋ० द० के स्वर्गवास के कई वर्ष पश्चात् हुआ। यु० मी०

✠ इस नाम का कोई वेदाङ्गप्रकाश का भाग वा उनका स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। यु० मी०

आर्यसमाज (काकड़वाड़ी) बम्बई के साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही

आज से लगभग १६-१७ वर्ष पूर्व आर्यसमाज काकड़वाड़ी, बम्बई के पुरोहित एवं आचार्य स्व० श्री पं० ऋषिमित्र जी ने मुझे लिखा था कि 'मुझे आर्यसमाज की रद्दी में से आर्यसमाजों के साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही का एक रजिस्टर मिला है, उस में ऋषि दयानन्द के व्याख्यानों का सार संगृहीत है।' मुझे उसी समय से इस कार्यवाही को देखने की उत्कण्ठा रही, परन्तु कुछ समय तक मैं बम्बई न जा सका और कुछ वर्षों के अनन्तर श्री पं० ऋषिमित्र जी का स्वर्गवास हो गया। तत्पश्चात् बहुत वर्षों तक वह रजिस्टर गुम सा रहा और अन्त में आर्यसमाज को प्राप्त हुआ।

जनवरी ८१ में मुझे बम्बई जाना पड़ा। विशेष कारणवश मैं ३ दिन आर्यसमाज काकड़-वाड़ी में ठहरा। इसी समय अपने मित्र श्री पं० दयाशंकर जी वेदोपदेशक, जो इसी आर्यसमाज से सम्बद्ध हैं, से आर्यसमाज की उक्त कार्यवाही के रजिस्टर की बात की। उन्होंने कहा कि वह रजिस्टर इस समय आर्यसमाज में विद्यमान है। उन्होंने श्री माननीय मन्त्री जी से कह कर उसे दिखाने की व्यवस्था कर दी। उसे पढकर प्रबल इच्छा हुई कि ऋषि दयानन्द के बम्बई-निवास काल के समय की साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही को प्राप्त करके उसमें ऋषि के उपदेशों के जो सारांश संगृहीत हैं, उन्हें बम्बई-प्रवचन के नाम से प्रकाशित कर देना चाहिये, अन्यथा ये अमूल्य विचार नष्ट हो जायेंगे।

मैंने माननीय श्री मन्त्री जी से प्रार्थना की कि इस कार्यवाहा के पृष्ठ ७० से १०२ तक के पृष्ठों की फोटोस्टेट (झेरोक्स) कापी मेरे लिये करा दीजिये। उन्होंने सहृदयता पूर्वक इसे स्वीकार किया। बम्बई से वापस लौट कर श्री पं० दयाशंकर जी के माध्यम से उक्त अंश की झेरोक्स कापी करा देने का अनुरोध करता रहा। मई १९८१ में पूना में सम्पन्न हुई पाणिनिविषयक अन्ताराष्ट्रिय विद्वद्गोष्ठी से निवृत्त होकर बम्बई आया। श्री पं० दयाशंकर जी से दूरभाष के द्वारा संपर्क किया। उन्होंने कहा कि आ० स० के साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही की झेरोक्स कापी तैयार हो गई है, आप सायंकाल आकर ले जावें। इस समाचार को सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। सायंकाल आर्य-समाज में जाने पर ज्ञात हुआ कि श्री मन्त्री जी ने सुरक्षा की दृष्टि से पूरी कार्यवाही की ही झेरोक्स कापी करा ली है। मैंने उन के इस महनीय कार्य के लिये उन्हें धन्यवाद दिया। उन्होंने ३ मास के लिये मुझे उक्त कार्यवाही की झेरोक्स कापी उपयोग के लिये दे दी।

यह कार्यवाही गुजराती भाषा में लिखी हुई है। मुझे मुद्रित गुजराती भाषा पढ़ने वा समझने में तो कुछ कठिनाई नहीं होती है, परन्तु हस्तलिखित गुजराती लिपि पढ़ने में कठिनाई होती है उस पर इस झेरोक्स कापी में अनेक पृष्ट साफ न होने से पढ़े भी नहीं जाते हैं। इस कारण मैं इस को हिन्दी भाषा में अनूदित न कर सका। इसी मध्य हमारी वेदवाणी के ग्राहक ऋषिदयानन्द के भक्त

एवं आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता विसनगर (महसाना-गुजरात) के निवासी श्री चौकसी छगनलाल गंगाराम जी पटेल के सुपुत्र गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक श्री कमलेशकुमार जी मुझ से मिलने के लिये बहालगढ़ आये। उस समय मैंने कुछ पृष्ठों के गुजराती भाषा के लेख को नागराक्षरों में लिखवा लिया। तदनन्तर १९-१८ अक्टूबर १९८१ को उदयपुर में हुई सत्यार्थप्रकाश शताब्दी समारोह से पूर्व ४-५ दिन के लिये मैं श्री भाई छगनलाल जी के यहां चला गया और वहीं श्री कमलेशकुमार जी से आवश्यक अंश के शेष भाग को भी नागराक्षरों में परिवर्तित करा लिया।

मैंने उस के आधार पर ऋषि दयानन्द के प्रवचनों के सारांश को संगृहीत करना आरम्भ किया तो आर्यसमाज के साप्ताहिक अधिवेशनों की इस कार्यवाही में उस समय की आर्यसमाज से सम्बद्ध प्रचीन बहुविध ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध हुई। उसे देख कर इच्छा हुई कि इस सम्पूर्ण भाग को ही वेदवाणी में प्रकाशित कर दिया जाये।

मैं गुजराती का आर्यभाषानुवाद कर सकता हूं तथापि समय बचाने की दृष्टि से जब मैं दिसम्बर १९८१ में पुनः बम्बई गया तो मैंने बम्बई निवासी श्री जगदेवसिंह जी आर्य से उक्त कार्यवाही की हिन्दी भाषा में अनुवाद करने के लिये कहा। आपने इसे सहर्ष स्वीकार किया और अल्पकाल में ही हिन्दी भाषा में इस को अनूदित करके मेरे पास भेज दिया। इस के लिये मैं आपका अनुगृहीत हूं।

आ० स० बम्बई की साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही का विवरण और महत्त्व

आर्यसमाज बम्बई की जिस साप्ताहिक कार्यवाही का (ऋषि दयानन्द के बम्बई निवास के दिनों का) एक भाग हम आगे प्रकाशित कर रहे हैं, उस का विवरण इस प्रकार है—

इस कार्यवाही के दो भाग हैं—

प्रथम भाग—इस भाग की कार्यवाही के लेखन का आरम्भ फाल्गुन कृष्णा[1] १३, रविवार, सं० १९३४=३१ मार्च सन् १८७८ से होकर वैशाख कृष्णा[2] ३, रविवार, संवत् १९३४[3]=१९ मई १८७८ पर समाप्त होता है।

द्वितीय भाग—इस भाग का आरम्भ पौष शुक्ला १० रविवार, सं० १९३९=९ जनवरी १८८१ से होकर श्रावण कृष्णा[4] १, रविवार, सं० १९३९=१२[5] अगस्त सन् १८८३ पर समाप्त होता है।

१. उत्तरभारतीय पञ्चांगानुसार चैत्र कृष्णा १३।

२. उत्तरभारतीय पञ्चाङ्गानुसार ज्येष्ठ कृष्णा ३।

३. यह संवत् निर्देश गुजराती पञ्चाङ्गानुसार है। उत्तरभारतीय वा दाक्षिणात्य पञ्चाङ्गानुसार सं० १९३५ जानना चाहिये। गुजरात में नये संवत् का आरम्भ चैत्र शुक्ला १ के स्थान में कार्त्तिक शुक्ला १ से माना जाता है।

४. उ० भारतीय भाद्र कृष्णा।

५. यहां १९ अगस्त चाहिये।

इसमें प्रथम भाग पृष्ठ १-१३ तक तथा द्वितीय भाग पृष्ठ १४=१८० तक है ।

कार्यवाही का त्रुटित अंश—इस कार्यवाही में वैशाख कृष्णा[1] १० रविवार, सं० १९३४[2]=२६ मई सन् १८७८ से लेकर पौष शुक्ला २ रविवार सं० १९३७=२ जनवरी १८८१ तक के काल के साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही लुप्त है ।

श्री पं० वैद्यनाथ शास्त्री की भूल—शास्त्री जी ने 'आर्यसमाज, काकड़वाड़ी बम्बई स्मृति ग्रन्थ' के पृष्ठ ११२ पर पूर्व निर्दिष्ट कार्यवाही संग्रह के संबन्ध में लिखा है—**इस रजिस्टर में ७ वीं अप्रेल १८७८ से २६ वीं अगस्त १८७३ ई० तक की कार्यवाही अङ्कित है ।'**

शास्त्री जी के लेख में दो भूलें हैं। **प्रथम** कार्यवाही का लेखन ३१ मार्च सन् १८७८ से होता है और समाप्ति १२(१८)अगस्त १८७३ पर होती है, न कि ७ अप्रेल १८७८ से आरम्भ होकर २६ अगस्त १८८३ पर समाप्ति होता है; **दूसरी** भूल यह है कि बीच में २ वर्ष ७ मास ७ दिन के अधिवेशनों की कार्यवाही इस रजिस्टर में नहीं है, उसे उन्होंने या तो देखा ही नहीं या उसे छोड़ दिया। उनके सामान्य लेख से यह भ्रान्ति होगी कि उक्त रजिस्टर में ५ वर्ष ४ मास १९ दिन की कार्यवाही सुरक्षित है ।

भूल का कारण—साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही के प्रसङ्ग में सर्वत्र दो दो तिथि मास संवत् और सन् का निर्देश है। कार्यवाही के ऊपर जो तिथि मास संवत् वा सन् दिया है, वह उस से पूर्व साप्ताहिक अधिवेशन में हुई कार्यवाही का अगले सप्ताह के अधिवेशन में सुनाकर सम्पुष्ट करने की है। और जिस दिन की कार्यवाही का लेखन किया गया है उसका निर्देश कार्यवाही के लेखन के साथ प्रारम्भ में किया गया है। प्रतीत होता है शास्त्री जी ने उक्त कार्यवाही संग्रह को भली प्रकार पढ़ा ही नहीं, जो तिथि तारीख ऊपर लिखी दिखाई पड़ी उसी का निर्देश कर दिया और इसलिये उक्त कार्यवाही संग्रह में जो २ वर्ष ७ मास ७ दिन के अधिवेशनों की कार्यवाही कहीं लिखी गई है, उसकी ओर भी उनका ध्यान नहीं गया ।

स्मृतिग्रन्थ में और भी ऐसी बहुत सी भूलें शास्त्रीजी ने की हैं। यथा—पृष्ठ २४ पर लिखा है—'[आर्यसमाज] ट्रस्ट डीड के दस्तावेज पर भी आर्यसमाज की स्थापना तारीख वही ७ अप्रेल १८७५ लिखी है'। शास्त्री का यह लेख भी मिथ्या है। आर्यसमाज के ट्रस्ट का जो डीड रजिस्टर्ड हुआ उस में स्पष्ट **७ मार्च १८७५** लिखा हुआ है। इस डीड का पाठ हम ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, भाग २, पृष्ठ ६५२ पर छाप चुके हैं। जिन्हें देखना हो वहां देखें। समझ में नहीं आता कि डीड में **७ मार्च** का स्पष्ट निर्देश होते हुए **वही ७ अप्रेल १८७५ ई० लिखी है** कैसे लिख दिया ।

कार्यवाही का लेखन प्रकार—प्रत्येक अधिवेशन की जो कार्यवाही लिखी गई है, उसका विवरण इस प्रकार है—

१. उ० भा० पञ्चाङ्गानुसार ज्येष्ठ कृष्णा ११ ।
२. उत्तरभारतीय पञ्चाङ्गानुसार सं० १९३५ जानें ।

१. आरम्भ में तिथि वार संवत् तथा तारीख मास तथा सन् का लेखन।
२. समाज के नियमानुसार प्रति सप्ताह ५½ बजे अधिवेशन होने का निर्देश।
३. जिस स्थान पर सभा हुई उसका उल्लेख।
४. वेदमन्त्र से ईश्वर स्तुति का निर्देश। तत्पश्चात्
५. गवैया द्वारा स्तुति गायन का उल्लेख करना।
६. पूर्व सप्ताह की सभा की लिखी गई कार्यवाही को सुनाना।
७. समाचार पत्रों में [पहले से] दी गई सूचना के अनुसार—
८. व्याख्याता के नाम और व्याख्यान के विषय का उल्लेख करना।
९. व्याख्यान (सभा में हुए व्याख्यान का सार उद्धृत करना) तत्पश्चात्
१०. गवैया द्वारा पुनः प्रार्थना गायन।
११. अन्त में व्याख्यान के विषय का आर्यसमाज के प्रमुख (प्रधान) द्वारा वा सभा के प्रमुख द्वारा स्पष्टीकरण। तत्पश्चात्—
१२. सभाविसर्जन।

विशेष ध्यान देने योग्य विषय—इस कार्यवाही में कहीं पर भी अधिवेशन के समय सन्ध्या तथा हवन करने का उल्लेख नहीं हैं (वार्षिक उत्सव के समय होने वाले यज्ञ को छोड़कर)। तथा सभाविसर्जन से पूर्व शान्तिपाठ का भी निर्देश नहीं है। सन्ध्या का निर्देश न होने का कारण तो सम्भवतः यह हो कि मध्याह्नोत्तर ५½ बजे सन्ध्या का समय नहीं होता है। हवन सम्भवतः इसलिये नहीं किया जाता था कि उन दिनों साप्ताहिक अधिवेशन, अन्य स्थानों पर होते थे। उस समय तक समाजमन्दिर नहीं बना था। पर **शांतिपाठ** तो हो ही सकता था। हमारी मति में इसका भी एक कारण है, परन्तु उसे दर्शाने और स्पष्ट करने के लिये अधिक स्थान चाहिये। अतः यहां हम नहीं लिख रहे हैं।

कार्यवाही में लिखित मास पक्ष और संवत्— उस समय बम्बई नगर के गुजरात और महाराष्ट्र के सम्मिलित प्रान्त में होने तथा उक्त आर्यसमाज में गुजरातियों की प्रधानता होने के कारण मास पक्ष और संवत् का निर्देश गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार किया गया है। इस कार्यवाही को पढ़ते समय इस बात का ध्यान रखना अत्यावश्यक है। गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार शुक्ल पक्ष के मास के नाम में भेद नहीं होता हैं, परन्तु कृष्ण पक्ष के निर्देश के समय महिने के नाम में उत्तर-भारत की अपेक्षा भिन्नता होती है। वहां महिना शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ होता है और अमावास्या पर समाप्त होता है। इस हेतु से उत्तरभारत का जो चैत्र कृष्ण पक्ष है, वह वहां का फाल्गुन का कृष्ण पक्ष होता है। हमारे यहां शिवरात्रि का पर्व फाल्गुन कृष्णा १३ को जिस दिन और जिस अंग्रेजी तारीख में मनाया जाता है, उसी दिन गुजरात में भी मनाया जाता है। परन्तु गुजराती पञ्चाङ्ग के अनुसार वह माघ कृष्ण की १३ मानी जाती है। इसी प्रकार गुजरात में नये संवत् का आरम्भ चैत्र शुक्ला प्रतिपद् से न होकर कार्तिक शुक्ला प्रतिपद् से होता है। इस प्रकार हमारे वर्ष के

प्रथम ७ महीनों में दोनों के पञ्चाङ्गों के अनुसार वर्ष-निर्देश में भेद पड़ता है। यथा चैत्र शुक्ल ५ को आर्यसमाज का आरम्भ सं० १९३२ में हुआ। परन्तु गुजराती संवत् उस समय १९३१ था।

लिखित कार्यवाही का ऐतिहासिक महत्त्व

अब हम आर्यसमाज काकड़बाड़ी की उपलब्ध साप्ताहिक अधिवेशन की कार्यवाही की महत्ता के विषय में लिखते हैं। हमने सम्पूर्ण कार्यवाही को सरसरी दृष्टि से पढ़ा है। हमारी दृष्टि में इस का महत्त्व न केवल बम्बई आर्यसमाज के पुराने इतिहास के कारण ही है अपितु उसका अन्य कई दृष्टियों से भी महत्त्व है। इस विषय में हम संकेत रूप से कुछ विषयों की ओर आर्य जनता का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं। विशेष करके आर्यसमाज के आरम्भ काल में साप्ताहिक अधिवेशनों के स्वरूप के विषय में। यथा—

१—अधिवेशन के समय आरम्भ में सन्ध्या हवन और अन्त में शान्तिपाठ नहीं होता था।

२—होने वाला अधिवेशन कब कहां तथा उस में किस विषय में व्याख्यान होगा? इसकी दैनिक पत्रों में नियमित सूचना छपती थी।

३—अधिवेशनों में पर्याय से एक बार किसी वक्ता का व्याख्यान होता था तो दूसरी बार ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का वाचन और उसका स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया जाता था। इस पर्याय नियम का अपवाद कुछ ही स्थलों पर देखने में आया है।

४ प्रत्येक अधिवेशन के अन्त में उस दिन के वक्ता के व्याख्यान वा ऋ० भा० भूमिका के प्रस्तुत किये गये अंश पर प्रधान द्वारा विवेचन किया जाता था।

५. आर्यसमाज से सम्बद्ध देशोन्नति समाज-सुधार आदि विषयों पर अन्य मतावलम्बी व्यक्तियों के भी व्याख्यान होते थे। यथा—३० जनवरी १८८१ को रीसालदार मीरजा मुरादअली का 'भारत खण्ड के लोगों की द्वीपान्तर में जाकर बसने की आवश्यकता है' विषय पर व्याख्यान हुआ। १६ अक्तूबर को मुंशी रोबहुसेन का। ता० २४ दिस० १८८२ से १८ फर्वरी १८८३ तक ईस्राइल गृहस्थ सिमियन बेनजामी के विविध विषयों पर ४ व्याख्यान। ७ जनवरी १८८३ को पारसी गृहस्थ दादा भाई का 'मांस नहीं खाना' विषय पर। काशी के पं० बालशास्त्री के शिष्य पं० अचलेश्वर गणेश का १५, २९ जुलाई १८८३ को षट्शास्त्र-मण्डन पर, इन्हीं का १९ अगस्त १८८३ को वर्णाश्रम विषय पर व्याख्यान हुआ।

६—व्याख्यान गुजराती और मराठी के अतिरिक्त **संस्कृतभाषा** में हुए व्याख्यान का उल्लेख १९ नवम्बर १८८२ की कार्यवाही में मिलता है।

७—अधिवेशनों में विविध भाषाओं में लिखित निबन्ध भी पढ़े जाते थे।

८—पं० बालाजी विट्ठल गावस्कर द्वारा मराठी भाषा में लिखे **वेदोक्तसंस्कारप्रकाश** के विषय में इस कार्यवाही से विशेष सूचना प्राप्त हुई। (इस विषय पर वेदवाणी में शीघ्र ही स्वतन्त्र लेख देंगे)।

९—विद्वानों का सत्कार। यथा—श्री रणछोड़ जी ओधव जी शास्त्री के कई व्याख्यान हुए। उन्हें ११ मार्च १८८३ को **पातञ्जल महाभाष्य** भेंट किया गया।

१०—इस कार्यवाही से उस समय के अनेक व्यक्तियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। हमारी आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई के अधिकारियों से साग्रह निवेदन है कि आर्यसमाज के पुराने इतिहास को उजागर करनेवाली दैववशात् सुरक्षित सम्पूर्ण कार्यवाही को देवनागरी अक्षरों में अवश्य प्रकाशित कर।

ऋषि दयानन्द ३० दिसम्बर १८८१ से २४ जून १८८२ तक बम्बई में ठहरे थे। उस समय की आर्यसमाज की कार्यवाही में ऋषि दयानन्द के प्रवचनों का सारांश संगृहीत है। अतः हम उक्त अवधि की कार्यवाही आगे छाप रहे हैं। एक दो स्थानों पर ऋषि दयानन्द का प्रवचन न होने से कार्यवाही का कुछ भाग छोड़ दिया है। कुछ स्थानों पर ऋ० द० के प्रवचन के अभाव में भी कार्यवाही के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होने से समग्र कार्यवाही छापी है।

एक नई समस्या

हम आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई की ऋ० द० के बम्बई-निवास-काल की जो कार्यवाही छाप रहे हैं, इस में ऋषि दयानन्द के २ अप्रेल १८८१ के व्याख्यान के पश्चात् उसी दिन को कार्यवाही के अन्त में ५ अप्रेल को थाना (ठाणा) में ऋ० द० के १ व्याख्यान का निर्देश है परन्तु इस के आगे ९, १६, २३, ३० अप्रेल तथा ७, १४, २१, मई को साप्ताहिक सभाओं में ऋषि दयानन्द के व्याख्यान नहीं हुए। पुनः—२८ मई को उन के व्याख्यान का उल्लेख मिलता है। लगभग पौने दो मास ऋषि दयानन्द मौन क्यों रहे? यह एक समस्या है। ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन के पूर्ण-संख्या ५२२, ५२७, ५३०, ५३२, ५३४ से स्पष्ट हो जाता है कि इन दिनों में ऋषि दयानन्द वाल-केश्वर, बम्बई ठहरे हुये थे। ऋ० द० के भावी चरित-लेखकों को इस पर ध्यान देना होगा।

कार्यवाही के तिथि-निर्देश के सम्बन्ध में आवश्यक सूचना

१—कार्यवाही में जहां कृष्ण पक्ष के साथ महिने का निर्देश है उसे उत्तरभारतीय सज्जन अगले महिने का कृष्ण पक्ष समझें। द्र० पूर्व पृष्ठ ६३।

२. कार्यवाही में चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, मासों के साथ जो संवत् १९३८ लिखा हुआ है उसे उत्तर भारतीय पाठक अपना सं० १९३९ समझें।

———

ऋषि दयानन्द के बम्बई-निवास-काल की आर्यसमाज बम्बई की सभाओं की कार्यवाही

पौष कृष्ण पक्ष ४, रविवार सं० १९३८; ता० ८ जनवरी १८८२ ई०[1]

पौष शुक्ल पक्ष १२, रविवार, सं० १९३८; ता० १ जनवरी १८८२ ईसवी। इस दिन नियमानुसार इस समाज की सभा साढ़े पांच बजे इसी स्थान पर हुई थी। सर्व-प्रथम नियमानुसार परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना की गई। तत्पश्चात् गायक ने स्तुति-गायन किया। तदनन्तर समाचार पत्र में दी गई सूचना अनुसार जगत्-प्रसिद्ध **पण्डित दयानन्द सरस्वती स्वामीजी** (आर्यसमाज के सस्थापक)। जो कृपापूर्वक बम्बई नगरी में पधारे हैं, **उन्होंने** समाज को पवित्र कर **"धर्मोन्नति"** विषय पर सरस, मनोवेधक भाषण दिया। इस भाषण का प्रत्येक शब्द लिखने योग्य था, परन्तु हम लोगों में से कोई शार्टहैंड से लिखनेवाला न होने के कारण यह लाभ नहीं मिल रहा है और इस अमूल्य भाषण की सुगन्ध सबको प्राप्त नहीं हो रही है। स्वामीजी ने धर्माधर्म के विषय में, लोगों को किस प्रकार विवेक पूर्वक विचार करना चाहिये, यह अपने भाषण में भलीभांति स्पष्ट किया था। साथ ही भारतवर्ष में धर्म सम्बन्धी महद् विचार में लोग कितने पिछड़े हुए हैं; मतवादी लोगों ने स्वार्थवश धर्म के नाम पर जाल फैलाकर जनता को किस प्रकार नष्ट भ्रष्ट कर दिया है, उसे सत्त्वहीन बनाकर अज्ञान की स्थिति में कैसे पहुंचा दिया है। इत्यादि के सम्बन्ध में स्वामीजी ने विवेचन करके इनका वास्तविक चित्र श्रोताओं के हृदय पटल पर अंकित कर दिया था। इस भाषण का समझदार और निष्पक्ष श्रोताओं के हृदय पर अत्यन्त उत्तम प्रभाव पड़ा हुआ दिखाई दे रहा था। भाषण के मुद्दे अत्यन्त ध्यान देने योग्य तथा मनन करने योग्य थे। इस देश में ऐसे विचार परिप्लुत भाषण प्रत्येक स्थान पर होने की आवश्यकता प्रतीत होती है। धर्माधर्मसम्बन्धी विचार किये विना लोग सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त नहीं हो सकते, न उनमें पारस्परिक प्रेम ही स्थापित हो सकता है। इसके विना इस देश की उन्नति होने की आशा अथवा सम्भावना भी नहीं है। इस

---

१. विशेष सूचना— प्रत्येक साप्ताहिक सभा की कार्यवाही के ऊपर यह जो मास, पक्ष तिथि, दिन, संवत् अंग्रेजी तारीख, महीना, और सन् लिखा हुआ है, वह नीचे लिखी हुई कार्यवाही को अगली साप्ताहिक सभा में सुनाने के काल का बोधक है प्रत्येक सभा की लिखित कार्यवाही को अगली सभा में सुनाने का निर्देश मिलता है। जिस साप्ताहिक सभा की कार्यवाही आगे लिखी जा रही है उसके काल का निर्देश प्रत्येक कार्यवाही के आरम्भ में किया गया है। इस प्रकार प्रत्येक सभा की कार्यवाही के सम्बन्ध में दो दो तिथि तारीखों को देखकर पाठक भ्रम में न पड़ें।

प्रकार के अनेक पुरुष अपने देश में उत्पन्न हों और उनके द्वारा सदुपदेश प्राप्त हों, इसके लिए सर्व-शक्तिमान परम दयालु परमात्मा की सच्चे अन्तःकरण से प्रार्थना करनी चाहिये। यह भाषण पूर्ण होने के पश्चात् गायक ने नियमानुसार पुनः प्रार्थना-गायन किया। तत्पश्चात् साढ़े सात बजे सभा विसर्जित हुई।

पौष कृष्ण पक्ष ११, रविवार, संवत् १९३८ ता० १५ जनवरी, १८८२ ई०

पौष कृष्ण पक्ष ४, रविवार, संवत् १९३८ ता० ८ जनवरी सन् १८८३ ई०।

इस दिन इस समाज की सभा सायंकाल साढ़े पांच बजे इसी स्थान पर नियमपूर्वक हुई थी। इस सभा में एक हजार से अधिक सद्गृहस्थ विराजमान हुये थे। सर्वप्रथम गायक ने नियमानुसार गायन किया। तत्पश्चात् जगत्-प्रसिद्ध **पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामीजी** ने वेदमन्त्र द्वारा ईश्वरोपासना करके "**धर्मोन्नति**" विषय पर अपना दूसरा व्याख्यान दिया था। यह व्याख्यान वर्तमान काल के लोगों के समझने तथा निष्पक्ष रीति से विचार करने योग्य था। इस भाषण में स्वामीजी ने चारों सम्प्रदायों[1] के मत वादों का स्पष्टीकरण करते हुए कहा था कि इन सम्प्रदायों के मत में तथा इनके मतवादी ग्रन्थों में जो कुछ कहा गया है वह वेदविरुद्ध है। वेदान्त का अद्वैत मत है। मैं इसके विरुद्ध नहीं हूं।[2] परन्तु इन लोगों ने जीव-ब्रह्म की एकता आदि से सम्बन्धित अनुचित विचार प्रचारित किये हैं। इन विचारों से सम्बन्धित महावाक्यों की रचना करके वे जो ज्ञान दे रहे हैं, वह बिल्कुल असत्य है। "**अहं ब्रह्मास्मि**" "**तत्त्वमसि**" इत्यादि वाक्य जो प्रमाण में रखते हैं, वे वेद के नहीं हैं। ये वाक्य ब्राह्मण तथा उपनिषद् ग्रन्थों के हैं। साथ ही इनका जो अर्थ ये लोग करते हैं, वह मूल ग्रन्थ में नहीं है। वहां पर पूर्वापर सम्बन्ध को देखने से उनका अर्थ बिल्कुल भिन्न है।[3] सम्प्रति इन लोगों के द्वारा जो ज्ञान दिया जा रहा है, वह वेद-विरुद्ध है, साथ ही स्वयं के लिए हानिकारक है। इसका समझदार तथा निष्पक्ष पुरुषों द्वारा अवलोकन तथा विचार होना उचित है। उस अद्वैत मत के अतिरिक्त अन्य विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत तथा शुद्धाद्वैत तीन मत हैं[4]। ये एक दूसरे से अधिक

---

१. ये चार सम्प्रदाय हैं—अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, तथा शुद्धाद्वैत।

२. ऋषि दयानन्द का अभिप्राय यह है कि वेदान्त प्रतिपादित अद्वैत मत ब्रह्म सम्बन्धी है। अर्थात् ब्रह्म में द्वैत नहीं, वह एक ही है। इससे जीव और जगत् के उपादान कारण प्रकृति का निषेध में वेदान्त दर्शन का तात्पर्य नहीं है।

३. इस विषय में ऋषि दयानन्द विरचित वेदान्तिध्वान्ति निवारण पुस्तक पढ़नी चाहिये। सत्यार्थप्रकाश के ७ वें तथा ११ वें समुल्लासों में भी इस विषय की विवेचना की गई है।

१, इन में विशिष्टाद्वैत मत रामानुजाचार्य का, द्वैताद्वैत मत निम्बार्काचार्य का शुद्धाद्वैत मत बल्लभाचार्य का है।

भ्रमोत्पादक हैं। यह भली भांति संक्षेप में स्पष्ट किया था। इस विषय का विषय का विशेष विवेचन करने के लिये पर्याप्त समय न मिलने से यह विषय अगले रविवार के लिए स्थगित किया गया, तथा लगभग ८ बजे सभा विसर्जित की गई।

माघ शुक्ल पक्ष ३, रविवार, सवत् १८३८; ता० २२ जनवरी, सन् १८८२ ई०

पौष कृष्ण पक्ष ११, रविवार, संवत् १६३८, ता० १५ जनवरी सन् १८८२ ईसवी। इस दिन इस समाज की सभा सायंकाल साढ़े पांच बजे इसी स्थान पर हुई थी। इसमें प्राय: एक हजार से अधिक सद्गृहस्थ विराजमान हुये थे। सर्वप्रथम गायक ने नियमानुसार स्तुति-गायन किया था। तत्पश्चात् **स्वामीजी** ने वेद मन्त्र से परमात्मा की उपासना करके **"धर्मोन्नति"** विषय पर शेष रहा तीसरा व्याख्यान देकर यह विषय पूरा किया था। इस अन्तिम दिन **विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत** तथा **शुद्धाद्वैत** के मतवाद का उत्तम रीति से स्पष्टीकरण करके श्रोताजनों के मन में विश्वास उत्पन्न कर दिया था तथा लोगों को धर्माधर्म का विचार किस प्रकार करना उचित है, यह बात भलीभांति दर्शा दी थी। धार्मिक अज्ञान तथा अधार्मिक मतवाद के प्रसार से इस देश की कैसी दुर्दशा हुई है और उस-उस धर्मवाद (मतवाद) के अयोग्य (अनुचित) जाल में फंसकर कैसी अज्ञान की स्थिति में यह आर्यसन्तान पहुंच गई, यह भी उत्तमरीत से दर्शाया था। तथा इस स्थिति से कैसे मुक्ति मिल सकती है इस सम्बन्ध में भी उत्तम बोध कराया था। और **लोगों का ध्यान संस्कृत अध्ययन तथा वेदाध्ययन की ओर आकृष्ट कर** स्वामी जी ने विषय पूर्ण किया था। तत्पश्चात् लगभग आठ बजे सभा विसर्जित हुई थी।

माघ शुक्ल पक्ष ११, रविवार, १९३८; ता० २९ जनवरी सन् १८८२ ई०

माघ शुक्ल पक्ष ३, रविवार, संवत् १६३८, ता० २२ जनवरी सन् १८८२ ई० के दिन इस आर्यसमाज की सभा 'फरामजी कावशजी इन्स्टीट्यूट' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। इस सभा में प्राय: दो हजार गृहस्थ उपस्थित हुये थे। सर्वप्रथम गायक ने नियमानुसार स्तुति गायन किया था और उसके बाद जगत्प्रसिद्ध **पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामी जी** ने **"अहिंसा"** और **'क्रिश्चियन्निटी"** इन दो विषयों पर अत्यन्त सरस व्याख्यान दिया था। प्रथम स्वामी जी ने 'हिंसा किसे कहते हैं तथा अहिंसा किसे कहते हैं,' इसका यथायोग्य स्पष्टीकरण किया था। उसका सारांश यह था कि मन, वचन और शरीर इनसे किसी की हानि का विचार करने तथा हानि पहुंचाने का ही नाम हिंसा है और ऐसा करने से दूर रहना अहिंसा है। **इस देश में इस समय विदेशियों की संख्या अत्यधिक बढ़ जाने से हिंसा बहुत बढ़ गई है और इससे देश को बहुत हानि पहुंची है। मनुष्यों का प्रतिपालन**

करनेवाले गौ आदि परोपकारी पशुओं की हत्या इस देश में होने से देश की बड़ी हानि हो रही है।
हिंसा करनेवाले ईश्वर के समक्ष अपराधी हैं। इस प्रकार के पशुवध से कैसी-कैसी हानि होती है, इस
की उत्तम रीति से विवेचना करके स्वामी जी ने यह विषय दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दिया
था। इसके बाद लगभग ७ बजे **"क्रिश्चियन धर्म"** विषय पर व्याख्यान आरम्भ किया था। इस व्या-
ख्यान में क्रिश्चियन लोगों की बाइबल में कैसी न्यायशून्य लीला है, यह बात उत्तम रीति से दर्शाई
थी। अन्त में ८ बजे के लगभग सभा समाप्त हुई थी।

इसके अनन्तर पुनः इसी स्थान पर शुक्रवार को सायंकाल साढ़े पांच बजे सभा हुई थी। इस दिन विद्वान् विचारवान् गृहस्थों को आमन्त्रण पत्र भेजकर बुलाया गया था, क्योंकि पिछली बैठक में समय से पहले अत्यधिक संख्या में श्रोताओं के भर जाने से विचारवान् गृहस्थों को निराश होकर वापस लौट जाना पड़ा था। इस दिन भी **"अहिंसा"** विषय पर और **"क्रिश्चियनिटी"** पर विशेष व्याख्यान किया था। इस व्याख्यान में पहले दिन की अपेक्षा अधिक विवेचन किया गया था। **एक गाय के वध से कितने मनुष्यों के पोषण में हानि पहुंचती है, यह बात आंकड़ों के द्वारा सिद्ध करके बताया था कि इस प्रकार हजारों गायों का वध होने से खेतीबाड़ी के काम में तथा लोगों के पोषण में प्रतिवर्ष कितनी हानि होती है इस बात को आंकड़ों के द्वारा स्पष्ट करके बताया था।** इसके पश्चात् किसी गृहस्थ की प्रार्थना पर **"क्रिश्चियनिटी की लीला"** पर दूसरा व्याख्यान किया था। तत्पश्चात् लगभग साढ़े सात बजे सभा विसर्जित की गई।

———

माघ कृष्ण पक्ष २, रविवार, संवत् १९३८; ता० ५ फरवरी सन् १८८२ ई०

माघ शुक्लपक्ष ११, रविवार संवत् १९३८, ता० २९ जनवरी सन् १८८२ ई० के दिन आर्य-समाज की सभा सायंकाल चार बजे 'हालाइ भाटिआ महाजन बाड़ी' में 'आर्यज्ञानवर्धक सभा' के सभासदों की मांग पर हुई थी। प्रथम गायक ने स्तुति-गायन किया तत्पश्चात् स्वामी जी यहां पधारे। स्वामी जी ने समाचार पत्रों में दी गई सूचना के अनुसार "अहिंसा" विषय पर बहुत ही रसमय व्याख्यान करके श्रोताओं को आनन्दित किया था। उस व्याख्यान का सारांश यह था कि हिंसा करने से स्वधर्म की हानि होती है तथा जनता की स्थिति निर्बल होती है। यदि कोई कहे कि वेदों में अश्वमेध, गोमेध, तथा अजामेध इत्यादि पशुयज्ञों का विधान है, इसका आप किस प्रकार खण्डन करेंगे, तो इसका उत्तर यह है कि उन स्थानों पर अश्व का अर्थ घोड़ा, गो का अर्थ गाय और अजा का अर्थ बकरी नहीं है। वहां अश्व का अर्थ अग्नि, गो का पृथ्वी और अजा का अर्थ प्रकृति है। परन्तु बाद में ब्राह्मणादि स्वार्थी वर्ग के लोगों ने इस प्रकार का अर्थ ठूंस दिया। आजकल अमर-

१. इस विषय को विस्तार से जानने के लिये ऋषि दयानन्दकृत 'गोकरुणानिधि' ग्रन्थ का अवलोकन करना चाहिये। इस विषय का विवेचन ऋ० द० ने सत्यार्थप्रकाश के १० वें समुल्लास में भी किया है।

कोश के आधार पर लोग असत्य अर्थ करते हैं। अमरकोश की रचना जैन पण्डित ने की है। जैन लोग वेद धर्म के विरोधी हैं। यह बात सभी लोग जानते हैं। भला उनके द्वारा रचे हुए कोश में वेद के शब्दों का सच्चा अर्थ कैसे हो सकता है? वेद के शब्दों का वास्तविक अर्थ देखना हो तो इसके लिए यास्क मुनिकृत निघण्टु इत्यादि अन्य अनेक कोश ऋषि मुनि कृत हैं। उनमें देखने, तथा शतपथ, निरुक्त आदि ग्रन्थों को देखने पर इस सम्बन्ध में विश्वास होगा। इस व्याख्यान में, **ब्रह्मा ने मोहित होकर अपनी पुत्री सरस्वती के साथ संग किया, शेषनाग पर पृथ्वी रखी हुई है, गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के साथ इन्द्र ने जार कर्म किया, गौतम के शाप से इन्द्र हजार भगवाला हो गया,** इस प्रकार जो कथायें पुराणों में लिखी हुई हैं उनकी पोल खोली थी। साथ ही ये कथायें ऐतरेय ब्राह्मण इत्यादि में रूपकालंकार में किस प्रकार वर्णित की गयी हैं, इन बातों का स्वामी जी ने स्पष्टीकरण किया था।[1] इसके पश्चात् स्वामी जी ने मूर्ति के विषय में कुछ भाषण किया था। उन्होंने कहा कि माता, पिता, आचार्य तथा अतिथि ये चार दृश्य मूर्त्तियां और पांचवीं अदृश्य मूर्त्ति परमात्मा इन पांच को मैं वेद के आधार पर मानता हूं। इसके अतिरिक्त अन्य किसी को अथवा अन्य किसी मूर्त्ति को मैं नहीं मानता। माना भी जाय, तो उससे कोई लाभ नहीं। और जिस से लाभ नहीं उस मूर्त्ति को मानना किसी को योग्य नहीं। व्याख्यान का सारांश इसी प्रकार का था। यह व्याख्यान लगभग ७ बजे पूर्ण हुआ था। इसके अनन्तर आर्यसमाज तथा आर्यज्ञानवर्धक सभा दोनों की इस संयुक्त सभा का विसर्जन हुआ था।

———

माघ कृष्ण पक्ष ६, रविवार, संवत् १९३८। ता० १२ फरवरी सन १८८२ ई०

माघ कृष्णपक्ष २, रविवार, संवत् १९३८, ता० ५ फरवरी स० १८८२ ई० के दिन आर्यसमाज की सभा सायंकाल पांच बजे 'हालाइ भाटिया महाजन वाड़ी' में हुई थी। प्रथम गायक ने नियमानुसार स्तुतिगायन किया था। तत्पश्चात् समाचारपत्र में दी गयी सूचना के अनुसार जगत्प्रसिद्ध **पंडित श्री दयानन्द सरस्वती स्वामी** ने **"मनुष्योन्नति"** विषय पर उपयुक्त मनोवेधक सरस भाषण किया था। उसका सारांश यह है—शारीरिक शक्ति बढ़ाने तथा उत्तम बलवान् बुद्धिशाली और दीर्घजीवी प्रजोत्पत्ति करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए बुद्धि बल बढ़ाने तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये एकान्त में गुरुगृह में अथवा पाठशाला में रहकर, भली भांति विद्याध्ययन करना चाहिये। पुरुष को अधिक से अधिक ४८ वर्षों का तथा कम से कम २५ वर्षों का ब्रह्मचर्य-पालन करना चाहिये स्त्रियों को अधिक से अधिक २४ वर्षों का तथा कम से कम १६ वर्षों का ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिये। यह वेदाज्ञा है। जो पुरुष

---

१. इन कथाओं में से एक आध को छोड़कर सभी कथाओं का ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार जो रूपकालंकार है उनका विवरण ऋषि दयानन्द ने 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के ग्रन्थ 'प्रामाण्याप्रामाण्य' विषय में तथा वेदभाष्य के स्वरूप निदर्शनार्थ प्रकाशित एक विज्ञापन' में दिया है। यह विज्ञापन 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' संग्रह के पूर्ण संख्या ३५ पृष्ठ ६७) पर छपा हैं। पाठक इन दोनों का अवलोकन करें।

४८ वर्षों का ब्रह्मचर्य पालन करके चारों वेदों का सम्पूर्ण अध्ययन करता है वह पूर्णरूप से पुरुषार्थी और न्यायशील होता है। ऐसा ही व्यक्ति राजा, प्रधान और सेनापति के पद के योग्य होता है।[1] ऐसे ही लोगों के हाथों उनके पद का कार्य समुचित पुरुषार्थ से सम्पन्न होता है। अन्य पद न्यून ब्रह्मचर्य पालन करने वालों के लिए हैं। यदि इस प्रकार व्यवस्था की जायें तो राजनीतिक तथा सांसारिक व्यवस्था में सुधार हो सकता है। प्रारब्ध का आधार संचित और क्रियमाण पर है। संचित और क्रियमाण का सुधार पुरुषार्थ से होता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को पुरुषार्थ पर ध्यान देना चाहिये। इसी के द्वारा क्रियमाण, संचित तथा प्रारब्ध की स्थिति सुधरती है। इससे मनुष्य उत्तम स्थिति प्राप्तकर उन्नति का पात्र होता है। स्वामीजी के भाषण का यही तात्पर्य था। शेष अन्य अत्यन्त जानने योग्य बातें विस्तारपूर्वक प्रस्तुत की थीं। परन्तु उन सबका समावेश इस स्थान पर न हो सकने के कारण संक्षेप में मुद्दे की बात लिखी है। **१२ फरवरी १८८२ के गुजराती समाचार पत्र—'जामेजमशेद' और 'मुम्बई समाचार' में सम्पादकों ने इस भाषण के सम्बन्ध में समुचित रूप से लिखा है।** जिन लोगों ने यह पढ़ा होगा। इस अवसर पर **सभा के सभापति मोरवी के ठाकुर साहेब वाघ जी बहादुर जी थे।** अपने सभापति पद से स्वामी का उनके उत्तम श्रम के लिए अत्यधिक उपकार माना था। अन्त में साढ़े सात बजे सभा विसर्जित हुई।

———

फाल्गुन शुक्ल पक्ष २, रविवार, संवत् १९३८; ता० १९ फरवरी, सन् १८८२ ई०

माघ कृष्ण पक्ष ६, रविवार, सवत् १९३८ ता० १२ फरवरी सन् १८८२ ई० के दिन इस आर्य-समाज की सभा सायंकाल साढ़े चार बजे 'फरामजी कावसजी इन्स्टीट्यूट' में हुई थी। प्रथम गायक ने नियमपूर्वक स्तुति-गायन किया था। तत्पश्चात् **श्रीमत् पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामीजी ने "मनुष्योन्नति"** विषय पर तीसरा व्याख्यान किया था। इस में मनुष्यों की शारीरिक शक्ति और बुद्धिबल क्यों नष्ट भ्रष्ट हो गये और होते जा रहे हैं, इस बात को उत्तम रीति से स्पष्टीकरण करते हुए दर्शाया था। साथ ही स्वामीजी ने कहा कि पुरुषों को वीर्यरक्षा करनी चाहिये, परन्तु वे नहीं करते हैं। वीर्य रक्षण विद्या भूल जाने से मनुष्य पशुओं से भी नीचे गिर गया हैं। तात्पर्य यह है कि पशु निश्चित काल में वीर्यदान करता है, परन्तु मनुष्य दिन अथवा रात, ऋतुकाल अथवा अऋतुकाल इन बातों पर बिल्कुल ध्यान नहीं देता। पुरुष और स्त्रियों को पहले वेदाज्ञा के अनुसार ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करके वीर्य सुदृढ़ तथा परिपक्व करना चाहिए। परन्तु ऐसा वे नहीं करते। उल्टा अयोग्य समय में बालविवाह करके कच्चे वीर्य को नष्ट भ्रष्ट करके अपना शरीरबल तथा बुद्धिबल छिन्न-भिन्न करते हैं। कितने ही व्यभिचार में डूबकर वेश्यागमन तथा परस्त्री गमन करते हैं। स्त्रियां भी पतिव्रत भंग करके परपुरुष गमन करती हैं। इस प्रकार ये स्त्री पुरुष अपने शरीर तथा बुद्धि को

---

१. सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च। सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ मनु ॥ १२।१००।

निबल कर रहे हैं। इनकी सन्तान भी अल्प वीर्यवान् तथा अल्पायुषी होती है। फलस्वरूप इन लोगों को सदैव वैद्यों के यहां दौड़ लगानी पड़ती है। ऐसे लोगों से कोई महान् कार्य नहीं होता। क्योंकि इन के नष्टवीर्य होने से इनमें शौर्य अथवा धैर्य होता ही नहीं। बलहीन होने से नपुंसक जैसे हो जाते हैं। इसी प्रकार और भी स्पष्टीकरण स्वामी जी ने किया था। इस सब का तात्पर्य यही था कि ठीक-ठीक नियमपूर्वक वीर्यरक्षा करके **यथावत् प्रतिमास एक बार वीर्यदान द्वारा उत्तम प्रजोत्पत्ति करनी चाहिये**। यह भाषण सायंकाल साढ़े छह बजे पूर्ण हुआ और सभा विसर्जित हुई।

———

फाल्गुन शुक्ल पक्ष ९, रविवार, संवत् १९३८। ता० २६ मी फरवरी सन् १८८२ ई०

फाल्गुन शुक्ल पक्ष २, रविवार, संवत् १९३८, ता० १९ फरवरी, सन् १८८२ ई० के दिन इस आर्यसमाज की सभा 'फरामजी कावशजी इन्स्टीट्यूट' में सायंकाल चार बजे हुई थी। सर्व प्रथम गायक ने परमात्मा का स्तुति गायन नियमानुसार किया था। तत्पश्चात् **पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामी जी ने "मनुष्योन्नति"** पर अपना अन्तिम व्याख्यान किया था। इसमें स्वामी जी ने दर्शाया था कि पुरुषार्थ सभी उन्नतियों का मूल है। क्रियमाण, संचित तथा प्रारब्ध तीनों अनुक्रम से वृक्ष[1] हैं। यदि पुरुषार्थ उत्तम होगा तो तीनों अनुक्रम से उत्तम होंगे। यदि वह बिगड़ गया तो समझना चाहिए कि सभी बिगड़ गये। और फिर उसका फलभोग भी दुःखदायक ही होगा। परमेश्वर ने प्रारब्ध से प्रथम जगत् की रचना नहीं की। पुरुषार्थ और कर्मानुसार प्रारब्ध की रचना होकर विद्वान् अविद्वान् सभी को सुख दुःख प्राप्त होते हैं। परमेश्वर स्वतन्त्र है। परन्तु जीव सभी बातों में स्वतन्त्र नहीं है। जीव मात्र पुरुषार्थ करने तथा कर्म करने में स्वतन्त्र है। परन्तु वह पाप-पुण्य का फलभोगने में परतन्त्र है। अर्थात् न्यायकारी परमात्मा उसके अनुसार सुख दुःख देकर शासन करता है। **परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना करने से वह न्यायकारी प्रसन्न नहीं होता** तथा **जीव पाप पुण्य का फल भोगने से मुक्त नहीं होता**। परन्तु जो परमेश्वर की वेदयुक्त आज्ञा के अनुसार उत्तम पुरुषार्थ तथा उत्तम कर्म का आचरण करता है उससे विना स्तुति प्रार्थना अपने आप परमात्मा प्रसन्न होता है। और जीव उत्तम कर्म के अनुसार अपने आप उत्तम फल प्राप्त करता है। वर्तमान समय में मनुष्यों का आयुष्य कम होता जाता है। इसका कारण यही है कि उनका पुरुषार्थ बिगड़ गया है। वे अपना वीर्य क्षीण करते जा रहे हैं। अतः यदि यह सब सुधारना है तो वीर्य रक्षा की जाये, पुरुषार्थ और कर्म सुधारे जायें। इस प्रकार सब कुछ सुधर जायगा, तथा उन्नति होगी। यह भाषण का सारांश था। इसके अतिरिक्त **सगुण-निर्गुण, उपासना, स्तुति प्रार्थना** इत्यादि पर बहुत सरस विवेचन किया था। साथ

१. तीनों अनुक्रम से वृक्ष हैं—पुरुषार्थ मूल का वृक्ष क्रियमाण कर्म है, क्योंकि वह पुरुषार्थ के विना नहीं होता। क्रियमाण का संचित कर्म वृक्ष रूप है, क्योंकि वह क्रियमाण से बनता है। सञ्चित ही प्रारब्ध का मूल है अतः संचित का प्रारब्ध वृक्ष है। यु० मी०

ही अन्य विवेचन भी पर्याप्त मात्रा में किया था। परन्तु उस सब का समावेश इस स्थान में नहीं हो सकता। यह भाषण सायंकाल छह बजे पूर्ण हुआ और सभा विसर्जित की गयी।

फाल्गुन शुक्ल पक्ष ६, गुरुवार, संवत् १९३८, ता० २३ फरवरी १८८२ के दिन आर्यसमाज की सभा उसी स्थान पर सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। स्वामी जी ने **'अवतार'** विषय पर व्याख्यान किया था। स्वामीजी ने कहा ईश्वर का अवतार मानना वेद विरुद्ध तथा समस्त आर्ष ग्रन्थों के विरुद्ध है। किसी स्थान पर अवतार का प्रतिपादन नहीं किया गया है। उलटा वहां पर अवतार का खण्डन है। स्वामीजी ने **"पर्यगाच्छुक्रमकाय०"** (यजु० ४०।८) इत्यादि वेद मन्त्रों से तथा अन्य आर्ष ग्रन्थों के प्रमाणों से सिद्ध कर दिया था कि ईश्वर का अवतार नहीं होता उन्होंने कहा कि युक्ति से भी ईश्वर का अवतार सिद्ध नहीं होता। इस प्रकार युक्ति तथा वेदादि सर्व शास्त्रों के द्वारा अवतार का खंडन किया था। तत्पश्चात् **नास्तिक मत का भली भांति खंडन** किया था। **पुराणादि** आधुनिक ग्रन्थों में जहां-तहां ईश्वर अवतार का तथा मूर्तिपूजा का मंडन किया हुआ दिखाई देता है। वह वेदादि सब शास्त्रों तथा ऋषिमुनिकृत आर्ष ग्रन्थों के बिलकुल विरुद्ध और न्यायशून्य है। उन पुराणों तथा अन्य आधुनिक ग्रन्थों का अभिप्राय और मंडन **एक दूसरे के विरुद्ध** है। **वे एक दूसरे का खंडन** करते हैं। अर्थात् एक ने शिव के चौबीस अवतारों का वर्णन किया है, तो दूसरे ने विष्णु के और तीसरे ने देवी के। इस प्रकार प्रत्येक पुराण में भिन्न भिन्न गप्पें हैं। **इनमें एक दूसरे की निन्दा और खंडन है।** तात्पर्य यह कि वेदादि समस्त आर्ष ग्रन्थों का जैसा एक सिद्धान्त है, वैसा पुराणादिक आधुनिक ग्रन्थों का नहीं है। परन्तु उनमें तो आपस में भारी विरोध स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर होता है। अतएव वे विद्वानों के लिए स्वीकार करने योग्य नहीं है। इस आशय का उस दिन के भाषण का सारांश था। यह भाषण रात के साढ़े सात बजे पूर्ण हुआ था। तत्पश्चात् तत्काल सभा विसर्जित की गयी थी।

फाल्गुन कृष्ण पक्ष १, रविवार, संवत् १९३८। ता० ५ मार्च, सन् १८८२ ई०।

फाल्गुन, शुक्लपक्ष ९ संवत् १९३८, रविवार, ता० २६ फरवरी, सन् १८८२ के दिन आर्य समाज की सभा 'फरामजी कावशजी इन्स्टीट्यूट' में सायंकाल चार बजे हुई थी। सर्वप्रथम गायक ने नियमानुसार स्तुतिगायन तम्बूरे के साथ किया था। तत्पश्चात् समाचार पत्रों में दी गई सूचना के अनुसार **"पुनर्जन्म तथा सृष्टिविद्या,"** विषय पर जगत्प्रसिद्ध **पंडित दयानंद सरस्वती स्वामीजी** ने उत्तम भाषण किया था। जीवों का पुनर्जन्म अर्थात् पुनः पुनः जन्म, विभिन्न योनियों में अपने किये हुए पापपुण्य के अनुसार **पशु योनि तथा वनस्पति योनि में जीव शरीर धारण करता है।** पाप-पुण्य समान हो तो मनुष्य देह की प्राप्ति होती है तथा अधिक पुण्य से उत्तम मनुष्य होता है जीव मनुष्य देह में उत्तम ज्ञान, गुण को प्राप्त कर, पुरुषार्थ करके, उत्तम क्रियमाण करे, तो संचित प्रारब्ध का

सुधार होकर, अन्त में मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। इत्यादि बातों का विवेचन प्रथम भाग में था भाषण के उत्तर भाग में **'सृष्टि विद्या'** अर्थात् सृष्टि का निर्माण पालन और उसका नाश कालान्तर में किस प्रकार होता है और ऐसा करने में क्या प्रयोजन है इत्यादि बातें थीं। सृष्टि ईश्वर के महद्गुणों का उसमें विवेचन था। इस प्रकार यह भाषण साढ़े सात बजे पूर्ण हुआ था और सभा विसर्जित हुई थी।

फाल्गुन कृष्ण पक्ष ७, संवत् १९३८; रविवार। ता० १२ मार्च सन् १८८२ ई०

फाल्गुन कृष्ण पक्ष १, संवत् १९३८ रविवार, ता० ५ मार्च सन् १८८२ के दिन सायंकाल पांच बजे तथा **फाल्गुन कृष्ण पक्ष ५ शुक्रवार ता० १० मार्च** के दिन सायंकाल साढ़े पांच बजे आर्यसमाज की सभा 'फरामजी कावशजी इन्स्टीट्यूट' में हुई थी। पहले रविवार की सभा में नियमानुसार गायक के स्तुति गायन करने के पश्चात् स्वामी जी ने समाचार पत्रों में दी गयी सूचना के अनुसार **"पुनर्जन्म और सृष्टि विद्या"** इन दो विषयों पर दूसरा व्याख्यान करके इन के सम्बन्ध में विशेष व्याख्यान किया था। पुनर्जन्म मानने के लिये सबल प्रमाण देकर श्रोताओं को इस सम्बन्ध में निःशंक कर दिया था। उन्होंने पुनर्जन्म न मानने से कौन से दोष उत्पन्न होते हैं यह सिद्ध करके दिखाया था। साथ ही सृष्टि रचना से सम्बन्धित जानने योग्य बातों का उत्तमतापूर्वक स्पष्टीकरण किया था। **शुक्रवार की रात की दूसरी सभा में** भी सृष्टि विद्या के ही सम्बन्ध में तीसरा भाषण किया था। और वह सम्पूर्ण जानने योग्य आवश्यक विषय उस दिन पूर्ण किया था। इन दोनों सभाओं में नियमानुसार ठीक दो घण्टे भाषण हुये थे।

फाल्गुन कृष्ण पक्ष ३०, रविवार, संवत् १९३८। ता० १९ मार्च सन १८८२ ई०

फाल्गुन कृष्ण पक्ष ७, रविवार, सवत् १९३८, ता० १२ मार्च सन् १८८२ ई० के दिन सभा साढ़े पांच बजे 'मादक-वस्तु-निषेध सभा' के साथ, आमन्त्रण के अनुसार 'झवेर बाग' में (मोतीरुघ के बाग में) हुई थी। प्रथम नियमानुसार गायक ने स्तुति गायन तंबूरे के साथ किया था। पश्चात् समाचारपत्रों में दी गयी सूचना के अनुसार **"मादक-द्रव्य-निषेध"** विषय पर स्वामी जी ने, प्रथम वेदमन्त्र से ईश्वरोपासना करके, अपना व्याख्यान प्रारम्भ किया था। इस व्याख्यान में **मदिरा, ताड़ी, भांग, गांजा, अफ़ीम, चंडू** इत्यादि मादक पदार्थों के सेवन से मनुष्यों की कैसी बरबादी हुई है और होगी, इस सम्बन्ध में भली-भांति विवेचन किया था। उन्होंने कहा कि अंग्रेज लोगों की संगति से अभक्ष्य पदार्थ मदिरा और मांस हमारे भीतर घुस गये हैं। उन लोगों के ये दुर्गुण लेकर भ्रष्ट तथा

तमोगुणी पदार्थों का सेवन करने से शरीरबल तथा बुद्धिबल का कैसे नाश होता है, यह भी उत्तम रीति से दर्शाया था। साथ ही वैदिक रीति से यह सिद्ध किया था कि इन पदार्थों के सेवन से आयु कैसे कम हो जाती है। स्वामी जी ने कहा कि अंग्रेजी डाक्टर इस देश की स्थिति, प्रकृति की जांच किये बिना प्रत्येक रोग पर यूरोप के लोगों के अनुकूल पड़ने वाली दवा देते हैं। उनमें भी विशेष रूप से मादक पदार्थ मिश्रित करके देते हैं। इससे यह दवा जितनी चाहिये उतनी अनुकूल नहीं बैठती। साथ ही ठीक-ठीक प्रभाव भी नहीं करती। इत्यादि वर्णन उत्तम रीति से किया गया था। अन्त में साढ़े पांच बजे सभा विर्जाजत गई थी।

चैत्र शुक्ल पक्ष ७, रविवार, संवत् १९३८। ता० २६ मार्च, १८८२ ई०

फाल्गुन कृष्ण पक्ष अमावस्या, रविवार, संवत् १९३८, ता० १९ मार्च, सन् १८८२ ई० के दिन आर्य समाज की सभा 'रा० रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। प्रथम वेद मन्त्र से ईश्वर स्तुति और गायक द्वारा स्तुति गायन करने के पश्चात् समाचारपत्र में दी गयी सूचना के अनुसार कवि कृष्णराय इच्छाराम ने "देशोन्नति" विषय पर सरस भाषण किया था।

तत्पश्चात् दूसरे दिन अर्थात् **चैत्र शुक्ल पक्ष प्रतिपदा, सोमवार संवत् १९३८, ता० २० मार्च सन् १८८२ ई०** के दिन 'आर्यसमाज का जन्म दिन होने के कारण **महोत्सव'**[1] **किया गया था।** इस दिन प्रातःकाल आठ बजे समाज के नये खरीदे गये भवन में महोत्सव का यज्ञ किया गया था। इस अवसर पर **दक्षिण शुक्ल**[2] **तथा गुजराती शुक्ल' इत्यादि कितने ही वेदरक्षक ब्राह्मणों ने वहां आकर इस मांगलिक क्रिया में सम्मिलित होकर, स्वामी जी की आज्ञानुसार होम-क्रिया करके होमाहुति दी थी।** इस समय वेद मन्त्र पढ़ने के लिये दो टुकड़ियां बनायी गयी थी। **एक ओर स्वामी जी के शिष्य ब्रह्मचारी गौरानन्द जी और दूसरी ओर से पूर्व कहे गये शुक्ल आदि अन्य ब्राह्मण** वेद मन्त्रों का घोष

---

१. आर्यसमाज के इस महोत्सव की सूचना ऋ० द० ने चैत्र बदी १३ शुक्रवार सं० १९३८ (=१७ मार्च १८८२) के दिन स्वामी कृपाराम को लिखे गये पत्र में इस प्रकार दी थी—'३ दिन के पश्चात् वार्षिक उत्सव समाज का ७ सातवां होगा। द्र० ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ५०७ का पत्र, भाग २, पृष्ठ ५४२। इस पत्र में **वार्षिक उत्सव** शब्द का प्रयोग है। कार्यवाही के उपर्युक्त लेख से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि आर्यसमाज का जन्म दिन चैत्र शुक्ला १ को मनाने का उपक्रम उन दिनों हो चुका था। इस पर विशेष विचार 'ऋ० दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' भाग २, पृष्ठ ९५६-९५८ तक देखें।

२. यहां 'शुक्ल' शब्द से 'कर्मकाण्डी' का अभिप्राय है। यद्यपि ब्राह्मणों में 'शुक्ल' नाम की एक उपजाति भी है तथापि उसका यहां ग्रहण नहीं है।

करके चारों दिशाओं से सभी एक साथ अभ्याहुति[1] देते थे। इस अवसर पर आर्यसमाजी तथा अन्य बाहर के बहुत से ज्ञानी गृहस्थ भी इस शुभ कार्य को देखने के लिए, तथा यज्ञनारायण के दर्शन करने के लिए पधारे थे। यह क्रिया निरन्तर[2] तीन घण्टों तक चली थी। पूर्णाहुति होने के बाद शुक्ल इत्यादि ब्राह्मणों को यथावत् दक्षिणा देकर सत्कार किया गया था।

तत्पश्चात् उसी दिन उसी स्थान पर सायंकाल पांच बजे महोत्सव की सभा हुई थी। इस सभा में ज्ञानी विद्वान् तथा सेठ साहूकारादि सज्जन गृहस्थ पधारे थे। स्वामी जी ने "वेद विषय" पर सरसमय व्याख्यान करके श्रोताजनों को प्रसन्न किया था। इस समय श्रोताओं को स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिया था कि "वेद" विद्याओं के मूल का भण्डार है और वह ईश्वर-प्रणीत अर्थात् ईश्वर प्रदत्त ज्ञान है। इसका रचयिता कोई मनुष्य नहीं है। परन्तु इस ज्ञान के द्रष्टा पूर्व ऋषि-मुनि हो गये हैं। वेद से भिन्न कोई अन्य पुरानी पुस्तक इस पृथ्वी पर नहीं है। वेद पुस्तक में अन्य किसी भी ग्रन्थ का लिया गया आधार दिखाई नहीं देता। साथ ही उसमें जो कुछ दर्शाया गया है उसमें से कुछ भी न्याय विरुद्ध अथवा अन्य आक्षेपार्ह नहीं है। परन्तु जो कुछ है वह मनुष्यमात्र के लिये ग्रहण करने योग्य है। अर्थात् उसे ईश्वर प्रणीत मानने में कोई बाधा भी नहीं आती। पहले से ही ऋषि मुनि आदि महात्माओं से लेकर साधारण मनुष्यों तक चारों वर्णों के आर्य लोग उसे ईश्वर प्रणीत मानते आये हैं। अर्थात् अब उसे अकारण तथा विना किसी दोष के, ग्राह्य होने पर भी छोड़ देना, अज्ञानता तथा दुराग्रह का कारण कहा जायेगा। ऐसे ही लोगों को मनुस्मृति में नास्तिक[3] माना गया है तथा उन्हें अनार्य संज्ञा दी गयी है। इस प्रकार उस भाषण का सारांश था। इस भाषण के पश्चात् प्रसाद बांटा गया था। तत्पश्चात् प्रायः आठ बजे महोत्सव की सभा विसर्जित हुई थी।

इसके बाद दूसरी सभा चैत्र शुक्ल पक्ष ३, बुधवार, संवत् १९३८, ता० २२ मार्च सन् १८८२ के दिन सायंकाल पांच बजे इसी स्थान पर पुनः हुई थी। इस दिन भी स्वामी जी ने फिर 'वेद विषय' पर ही विशेष व्याख्यान किया था। इसका सारांश भी उसी सिद्धान्त के अनुसार था। साथ ही वेद में जो-जो विद्यायें प्रदर्शित हुई हैं, उनका स्पष्टीकरण किया था। इस दिन भी रात्रि के आठ बजे सभा विसर्जित हुई थी। इस सभा में भी पूर्व सभा की भांति सभी सज्जन गृहस्थ पधारे थे।

---

१. 'अभ्याहुति' शब्द का अर्थ ज्ञातव्य है। यहां होम के किसी द्रव्य का उल्लेख नहीं मिलता।

२. यहां मूल गुजराती पाठ 'बरोबर' है। इस का अर्थ निरन्तर है। अन्य ठीक-ठीक, उचित मात्रानुसार आदि अर्थ भी होते हैं। इस प्रसंग में 'निरन्तर' अर्थ उचित है। हिन्दी में भी इसी अर्थ में 'बराबर' शब्द का प्रयोग होता है।

३. नास्तिको वेदनिन्दकः। मनु० २।११॥

चैत शुक्ल पक्ष १४, रविवार, १९३८; दि० २ अप्रेल, सन् १८८२ ई०

चैत्र शुक्ल पक्ष ७, रविवार, संवत् १९३८, ता० २६ मार्च सन् १८८२ ई० के दिन आर्यसमाज की सभा सायंकाल साढ़े पांच बजे 'फरामजी कावशजी इन्स्टीटयूट' में हुई थी। इस अवसर पर समाचारपत्र में दी गयी सूचना के अनुसार स्वामी जी ने '**आर्यसमाज तथा थिओसोफिकल सोसायटी का सम्बन्ध**'' विषय पर भाषण किया था।[1] इसमें आर्यसमाज का थिओसोफिकल सोसायटी के साथ प्रथम किस प्रकार तथा किस की मांग पर सम्बन्ध हुआ और यह सम्बन्ध आज तक किस पद्धति से तथा किस प्रकार चलता रहा है इत्यादि बातों का स्वामी जी ने यथावत् सत्य वर्णन किया था। इस व्याख्यान के समय **कर्नल अल्काट तथा मैडम ब्लेवेटस्की के समस्त पत्र, जो स्वामी जी को भेजे गये थे स्वामी जी ने सुनवाये थे।** इन पत्रों में इन लोगों के द्वारा की गयी स्वीकारोक्ति तथा स्वामीजी की प्रशंसा के विपरीत यहां आने के बाद वे कितना उल्टा चल रहे थे, तथा इस समय भी चल रहे हैं, यह सब स्वामी जी ने यथातथ्य दर्शा दिया था साथ ही वे थिओसोफिकल सोसायटी के नाम तथा नियमों के कितना विरुद्ध आचरण करते हैं, यह भी स्पष्ट किया था। ये लोग मीठा-मीठा प्रभावकारक बोलकर, सत्य को ढककर, इस देश के लोगों को अपने मोह जाल में लाने के लिए दिखावे के लिए प्रत्येक धर्म की कैसी स्तुति करते हैं, परन्तु स्वयं कितना विरुद्ध आचरण करते हैं, इसका स्वामी जी ने यथातथ्य वर्णन किया था। ये लोग अन्दर से कैसे नास्तिक मत के हैं तथा अपनी सोसायटी के नाम के विरुद्ध होकर ईश्वर का अस्तित्व तक नहीं मानते, ये सभी बातें स्वामी जी ने खोलकर रख दी थी। यह भाषण साढ़े सात बजे लगभग पूर्ण हुआ था तथा सभा विसर्जित हुई थी।

इसके पश्चात् **चैत्र शुक्ल पक्ष ११, गुरुवार, संवत् १९३८, ता० ३० मार्च सन् १८८२ ई०** के दिन सायंकाल साढ़े पांच बजे इसी स्थान पर पुनः सभा हुई थी। इस सभा में स्वामी जी ने फिर से तीसरी बार '**वेद विषय**' पर व्याख्यान किया था। यह भाषण भी इसी विषय पर पहले किये गये भाषणों के पूरकरूप में था सभा साढ़े सात बजे के लगभग विसर्जित हुई।

---

१. ऋषि दयानन्द ने २२ मार्च १८८२ के पत्र में २८ मार्च १८८२ मंगलवार के दिन आप लोगों (कर्नल अल्काट और ब्लेवेत्सकी) के विरुद्ध व्याख्यान देने का निर्देश किया है (द्र० 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या ५१२, भाग २, पृष्ठ ५४५)। ऐसा ही उल्लेख पं० लेखरामजी कृत जीवनचरित, हिन्दी सं० पृष्ठ ८७८ पर मिलता है। हमारा विचार है कि २६ मार्च १८८२ तक उक्त पत्र का उत्तर प्राप्त न होने से कर्नल अल्काट और मैडम ब्लेवेत्सकी के विरुद्ध आर्यसमाज की रविवासरीय सभा में ही ऋषि दयानन्द ने उक्त भाषण दिया। इस कार्यवाही के अनुसार ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्रों में संशोधन होना चाहिये।

चैत्र कृष्ण पक्ष ६, रविवार, संवत् १९३८; ता० ९ अप्रेल, सन् १८८२ ई०

चैत्र शुक्ल पक्ष १४, रविवार, संवत् १९३८, ता० २ अप्रेल सन् १८८२ ई० के दिन आर्यसमाज की सभा 'फरामजी कावशजी इन्स्टीटयूट हाल' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। इस अवसर पर **स्वामीजी** ने समाचार पत्र में दी गयी सूचना के अनुसार "**आयसमाज तथा ब्रह्मसमाज के नियम**" विषय पर व्याख्यान किया था। इसमें आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज तथा प्रार्थना समाज के प्रत्येक नियम को पढ़कर, उनकी तुलना करके, कितने नियम समान हैं तथा कितने परस्पर विरुद्ध हैं, लोगों के समक्ष इस बात का स्पष्टीकरण किया था। ब्रह्मसमाज तथा प्रार्थना समाज के कौन-कौन से नियम अयोग्य, हानिकारक साथ ही देश के हितों के प्रतिकूल हैं, यह सब स्पष्ट किया था। यह भाषण साढ़े सात बजे पूर्ण हुआ था। तत्पश्चात् सभा विसर्जित हुई थी।

इसके अनन्तर दि० ५ अप्रेल बुधवार को स्वामी जी थाने[1] (ठाणे) गये थे और वहां '**वेद विषय**" पर एक व्याख्यान किया था।

चत्र कृष्ण पक्ष १३, रविवार संवत् १९३८। ता० १६ अप्रेल १८८२ ई०

चैत्र कृष्ण पक्ष ६, रविवार संवत् १९३८, ता० ९ अप्रेल सन् १८८२ ई० के दिन आर्यसमाज की सभा रा० रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। प्रथम वेद मन्त्र से ईश्वर-स्तुति करने के पश्चात् गायक ने स्तुति गायन किया था। तत्पश्चात् समाचार पत्र में दी गयी सूचना के अनुसार **रा०रा० आत्माराम बापूजी दलवी**[2] ने 'वेंगुर्ला'[3] में वेदोक्त संस्कार [प्रकाश][4]

---

१. थाना (ठाणा) बम्बई से लगभग २२ मील दूर है। उन दिनों यह स्वतन्त्र कसबा था। अब यह बृहद् बम्बई के अन्तर्गत आ गया है।

२. ये महाशय प्रधान उपप्रधान आदि के रूप में आर्यसमाज (काकड़वाड़ी) बम्बई से बहुत समय तक सम्बद्ध रहे।

३. जिला रत्नागिरी, कर्णाटक।

४. 'वेदोक्तसंस्कार प्रकाश' नाम का ग्रन्थ श्री बालाजी बिट्ठल गोवस्कर ने लिखा था। यह ग्रन्थ मराठी भाषा में है। यह वि० सं० १९३८ के आरम्भ में छपा था और श्री रा० रा० आत्माराम बापूजी दलवी को ही समर्पित किया गया है। आर्यसमाज काकड़वाड़ी बम्बई की हस्तलिखित कार्यवाहीं पृष्ठ ६४ के अनुसार प्राण जीवन दास काहनदास ने इस पुस्तक के 'सामान्य संस्कार और विवाह संस्कार पर १३ नवम्बर १८८१ को व्याख्यान दिया था। इसी प्रकार (पृष्ठ ६५ के अनुसार) एक व्याख्यान 'गर्भाधान संस्कार और गृहस्थाश्रम पर २७ नवम्बर १८८१ को व्याख्यान दिया था। प्राण जीवनदास काहनदास ने इस पुस्तक का सं० १९३८ में ही गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित कर दिया था। यह गुजराती अनुवाद ऋ० द० के संग्रह में विद्यमान था। इधर ३-४ वर्षों में ही यह उस संग्रह से नष्ट हो गया। इस ग्रन्थ का ऋ० द० कृत संस्कारविधि के साथ बहुत महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। इस विषय पर हम वेदवाणी में कभी स्वतन्त्र लेख देंगे।

के अनुसार पंडित बालाजी के यहां पर हुए "उपनयन संस्कार का वृत्तान्त" सुनाया था। उसका सारांश इस प्रकार था, इस वेदोक्त संस्कार के विरुद्ध आजकल के आधुनिक प्रापंचिक संस्कारवाले उलटी बाधा डालने के लिए तत्पर हुये थे तथा इन लोगों ने अपने दुष्ट उपायों का अवलम्बन किया था। परन्तु सत्य के सम्मुख उनकी एक भी न चली थी। उलटा पराजित होकर बेपरदा हो गये थे। संस्कार के अवसर पर आमन्त्रित लोग तथा अन्य अनाहूत दर्शक सत्य संस्कार पद्धति देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। इन लोगों ने यह प्रकट किया था कि यदि इस प्रकार की पद्धति का प्रसार हो तो वे प्रसन्न होंगे। संस्कार के उपरान्त उन लोगों ने रा० रा० आत्माराम बापूजी दलवी तथा शास्त्री कृष्ण-राय इच्छाराम के व्याख्यान करवाये थे। उन लोगों ने इन वक्ताओं का उपकार माना था। दलवीजी के भाषण का यह सारांश था। इस भाषण के उपरान्त गायक ने पुनः प्रार्थना गायन किया था। प्रायः ८ बजे के लगभग सभा विसर्जित की गयी थी।

———

वैशाख शुक्ल पक्ष ६, रविवार, संवत् १९३८। ता० २३ अप्रेल, सन् १८८२ ई०

चैत्र कृष्ण पक्ष १३, रविवार, संवत् १९३८, ता० १६ **अप्रेल सन्** १८८२ ई० के दिन आर्य-समाज की सभा 'रा० रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। प्रथम वेद मन्त्र से नियमानुसार ईश्वर स्तुति तथा स्तुति गायन किया गया था। तत्पश्चात् समाचारपत्र में दी गयी सूचना के अनुसार **रा० रा० अन्ना मार्तंड जोशी** ने **"कीर्तन"** विषय पर व्याख्यान किया था। उसका सारांश यह था कि कीर्तन प्रथा की उत्पत्ति के समय उस का हेतु भिन्न था परन्तु वर्तमान समय में उसका अर्थ भिन्न हो गया है। सर्वप्रथम वक्ता ने कीर्तन शब्द की व्याख्या की। यह प्रथा कब से तथा किस के समय से उत्पन्न हुई प्रतीत होती है। इस सम्बन्ध में अपनी खोज तथा अनुमान श्रोताओं के सम्मुख उपस्थित किये। तत्पश्चात् कीर्तन किसे करना चाहिये। किस भाव से करना चाहिए, तथा कीर्तन करने का वास्तविक प्रयोजन क्या है, इन बातों का यथातथ्य वर्णन किया था। इसके अनन्तर उन्होंने इस सम्बन्ध में विवेचन किया था कि वे रामकृष्ण आदि पुरुषों को क्या मानते हैं तथा उनका कीर्तन क्यों करते हैं। इस विवेचन में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि मैं रामकृष्ण आदि को ईश्वर नहीं मानता। सद्गुणी महात्मा पुरुष होने के कारण मैं कीर्तन के द्वारा उनकी स्तुति गाता हूं। उनके गुणों का स्मरण करके शक्त्यनुसार उनको ग्रहण करता हूं। इसी से अपनी मान्यता को सब के सामने प्रकट करके, मैं एक राम मन्दिर के राम महोत्सव में उसके कार्यकर्ता के आग्रह पर गया था। वहां मैंने अपने उद्देश्य के अनुसार कीर्तन किया था। इसी प्रकार कीर्तन होना चाहिये। मैंने उनके उद्देश्य तथा विचार के अनुसार कीर्तन किया ही नहीं। प्रत्येक कीर्तनकार को अपने काम में सुधार करना चाहिये। इतने पर भी विरोधी लोग मेरे सम्बन्ध में मनमानी बातें कहें, तो निस्सन्देह वे निन्दक, झूठे तथा कपटी हैं। इस प्रकार कहकर उन्होंने अपना भाषण समाप्त किया था। तत्पश्चात्

नियमानुसार गायक द्वारा पुनः प्रार्थना गायन करने के बाद इस सम्बन्ध में कितने ही गृहस्थों ने अपने विचार प्रकट किये थे। इनमें से एक विद्वान् ने स्पष्टरूप से कहा था कि यदि कीर्तनकार इस पद्धति से कीर्तन करके स्थान-स्थान पर कथा करें तथा ठीक-ठीक सत्य अर्थ समझायें, तो अंग्रेजी पद्धति के वक्ता भी उस से भली-भांति लाभान्वित हों तथा देश में द्रुतगति से सुधार हो। उनकी यह बात सत्य तथा सर्वमान्य प्रतीत हुई थी। तत्पश्चात् पेशावर वाले बाबा करमशी (कर्मसिंह) ने कुछ विवेचन करते हुए अपने विचार रखे थे। अन्त में अध्यक्ष आत्माराम बापू जी दलवी ने अपना न्याययुक्त अभिप्राय प्रकट करके सभा विसर्जित की थी।

———

वैशाख शुक्ल पक्ष १२, रविवार, संवत् १९३८। ता० ३० अप्रेल सन् १८८२ ई०

वैशाख शुक्ल पक्ष ६, रविवार, संवत् १९३८ ता० २३ अप्रेल सन् १८८२ ई० के दिन आर्य-समाज की सभा 'रा० रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। प्रथम नियमानुसार वेदमन्त्र से ईश्वरस्तुति और गायन हुआ था। पश्चात् समाचारपत्र में दी गयी सूचना के अनुसार पेशावर आर्यसमाज के करमशी ने **"नास्तिकमत तथा नवीन वेदान्त मत खण्डन"** इन दो विषयों पर हिन्दी में व्याख्यान किया था। यह स्वामीजी के सिद्धांत के अनुकूल था। इसका सारांश यह था। सृष्टिमण्डल तथा खगोलमण्डल की नियमानुसार रचना, उस मण्डल में विद्यमान नियमानुसार कालगति, उसकी गतिमानता, फलस्वरूप उसमें घट रही नानाविध क्रियायें, हलचल इत्यादि प्रत्यक्ष देखने में आती हैं। ये सारी क्रियायें कर्त्ता के बिना हो नहीं सकतीं न अपने नियम में ही रह सकती हैं। कर्त्ता के बिना उनका वियोग-संयोग स्वयं उनके द्वारा नियमानुसार नहीं हो सकता। वे अमुक स्थान पर अस्तित्व में रहकर यहां पुनः अपना काम नियमानुसार नहीं कर सकते। सभी कुछ नियम में रह सकना असम्भव है। यदि स्वयमेव कोई रचना होगी तो निरुपयोगी होगी और उसमें कोई क्रम नहीं रहेगा। अतएव ईश्वर का अस्तित्व तो मानना ही चाहिये। यह भाषण-कर्त्ता का दृढ़ सिद्धान्त था। नवीन वेदान्तियों के मत के खण्डन में उन्होंने जो कुछ कहा था वह इस प्रकार था। जीव ब्रह्म की एकता मानने से जैसे ईश्वर न्यायकारी, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और उपाधि तथा सुख-दुःख रहित अनेक गुणयुक्त है, वह उत्पत्ति-प्रलय करता है, वैसे ही जीव को भी मानना पड़ेगा। और फिर जीव को किसी की प्रार्थना, उपासना करने की आवश्यकता न रहेगी उसके पाप पुण्य का न्यायकर्ता और फल देनेवाला भी जीव से भिन्न ईश्वर नहीं माना जायगा। जैसे स्वयं ही अपनी मूर्खताओं का न्याय करके स्वयं ही दण्ड ले लिया जाय इस प्रकार कहा जायगा। इसके विरुद्ध विचार करने पर ज्ञात होता है कि सर्वज्ञ कभी भूल नहीं करता साथ ही पाप-पुण्य का भी अधिकारी नहीं होता। ये लोग कहते हैं कि संसार मिथ्या है, जो कुछ दिखाई पड़ता है वह कुछ नहीं है, केवल भ्रान्ति से दृष्टिगोचर होता है। यह भी कहते हैं कि मानों न कुछ हुआ है न होगा। परन्तु इससे यहां बहुत बड़ी बाधा उपस्थित होती है। भ्रान्ति में जो कुछ मिथ्या हम देखते हैं वह दिखानेवाला और

कहनेवाला होना चाहिये । परन्तु यह मिथ्या आभास दिखाने का प्रयोजन क्या है ? मिथ्या को व तु रूप में देखनेवाला कहां से आया ? और जब मिथ्या देखा, तो द्रष्टा सत्य कैसे हो सकता है, साथ ही उसका अनुमान भी कैसे सत्य हो सकता है ? जब जीव ब्रह्म की एकता होने से जीव ब्रह्मरूप हो जायगा, तो मिथ्या भान से भ्रान्ति में पड़कर देखनेवाला भी स्वयं भ्रान्ति रूप ब्रह्म ठहरता है । यदि ऐसा माना जाय तो उसकी सर्वज्ञता नहीं रहती । इसी प्रकार अन्य गुण होने के कारण वह ईश्वर ही नहीं ठहरता । यह वक्ता के कथन का भावार्थ था । इस भाषण के बाद वेदान्तियों (गोजा–मुसलमान) ने कितनी ही शंकाएं उठायी थीं । उनका उचित उत्तर देने के बाद अध्यक्ष ने इस पर अपना न्याययुक्त अभिप्राय प्रकट करके आठ बजे के लगभग सभा विसर्जित की थी ।

वैशाख कृष्ण पक्ष ४, रविवार, संवत् १९३८ ता० ७ मई सन् १८८२ ई०

वैशाख शुक्ल पक्ष १२, रविवार, संवत् १९३८, ता० ३० अप्रेल सन् १८८२ ई० के दिन आर्य-समाज की सभा 'रा० रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी । प्रथम नियमानुसार वेदमन्त्र से ईश्वर स्तुति तथा स्तुति गायन किया गया था । तत्पश्चात् समाचारपत्र में दी गयी सूचना के अनुसार **रा०रा० आत्माराम बापूजी दलवी ने**[1]......विषय पर व्याख्यान किया था । परन्तु उस दिन मन्त्री के बम्बई में न होने से उस भाषण की रिपोर्ट नहीं ले सका । इससे उस भाषण का सारांश इस स्थान पर नहीं दे सका। परन्तु भाषण के अन्त में नियमानुसार गायक ने प्रार्थना गायन किया था । सभा नियमानुसार आठ बजे के निकट समाप्त हुई थी ।

वैशाख कृष्ण पक्ष १२, रविवार, संवत् १९३८ । ता० १४ मई, सन् १८८२ ई०

वैशाख कृष्ण पक्ष ४, रविवार, संवत् १९३८, ता० ७ मई सन् १८८२ ई० के दिन आर्यसमाज की सभा 'रा०रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायं साढ़े पांच बजे हुई थी । प्रथम नियमानुसार वेदमन्त्र से ईश्वर-स्तुति तथा स्तुति गायन किया गया था । तत्पश्चात् समाचार पत्र में दी गयी सूचना के अनुसार **रा० रा० अन्ना मार्तंड जोशी** ने **"उपवास तथा गंगा स्नान से क्या मोक्ष प्राप्त होती है?"** विषय पर व्याख्यान किया था । इसमें वक्ता का भावार्थ यह था कि उपवास करने से अजीर्ण, ज्वर तथा अजीर्ण से हुए अन्य रोगों के क्लेश से छुटकारा मिलता है । परन्तु देह धारण करने के बन्धन से तथा पाप-पुण्य के भोग से उपवास करने वाला मुक्त नहीं होता । गंगादि के स्नान से

---

१. मूल कार्यवाही में यहां स्थान खाली छोड़ा है । मन्त्री जी के बम्बई में न होने से (आगे द्रष्टव्य) जिस व्यक्ति ने यह अंश लिखा वह 'विषय' भूल गया, ऐसा प्रतीत होता है ।

देह की शुद्ध होती है तथा कितने ही शरीर विकार भी पानी-गुण से दूर होते हैं। परन्तु देह धारण तथा पाप-पुण्य इससे नहीं छूटते। यदि इतनी सुगमता से मोक्ष होता हो, तो सभी मोक्ष-सुख की प्राप्ति कर सकते हैं। विद्याभ्यास, सन्त समागम तथा पठन-पाठन करके वेद सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने की, वेदादि शास्त्र में प्रदर्शित ईश्वरीय नियमों के प्रमाण की तथा उनको पालन करने की कोई आवश्यकता ही न रहे। यदि इस प्रकार उपवास करने से मोक्ष होता हो, तो अकाल में उपवास से मरने वाले सभी लोगों को मोक्ष की प्राप्ति हो। गंगा स्नान से मोक्ष प्राप्त होता हो, तो सदैव जल में पड़ी रहने-वाली मछलियां सब की सब मोक्ष-सुख को प्राप्त करें। यदि फल, कन्द-मूल और घास-पात खाने से मोक्ष प्राप्त होता हो, तो वे पशु पक्षी जो सदैव ऐसा ही भोजन करके मनुष्य जाति को अनेक प्रकार के सुख देकर परमार्थ करते हैं, उन्हें तो सबसे पहले मोक्ष होना चाहिये। यदि यह हो तो मनुष्य देह सभी पशु आदि के देहों से नीच तथा दुःखदायक माननो चाहिये। अतः ऐसे विचार प्रकट करनेवाला कपटी, माननेवाला तथा समझनेवाला बिल्कुल अज्ञानी और भोला है। इस प्रकार वे एक दूसरे का अहित अज्ञानता से अपने हाथों कर लेते हैं। इस प्रकार समझकर इन लोगों को अन्धकार से बचाने के लिए ज्ञानियों को सदैव उपदेश करना चाहिये। यह वक्ता का भावार्थ था। भाषण के उपरान्त गायक ने पुनः प्रार्थना-गायन नियमानुसार किया था। पश्चात् कितने ही बुद्धिमान जनों ने अपने अमूल्य विचार प्रदर्शित किये थे। तत्पश्चात् अध्यक्ष प्राणजीवन दास ने इन पर अपना न्याययुक्त अभिप्राय देकर प्रायः आठ बजे सभा विसर्जित की थी।

————

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष ४, रविवार, संवत् १९३८। ता० २१ मई, सन् १८८२ ई०

वैशाख कृष्णपक्ष १२, रविवार, संवत् १८३८, **ता० १४ मई, सन्** १८८२ के दिन आर्यसमाज की सभा 'रा० रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। प्रथम नियमानुसार वेद मन्त्र से ईश्वर प्रार्थना और स्तुति गायन किया गया था। पश्चात् समाचार पत्र में दी गयी सूचना के अनुसार रवरशाड़ (बलसाड़ का गांव) के निवासी **कवि कृष्णराम इच्छाराम शास्त्री** ने अपनी गोमान्तक देश में (गोवा प्रान्त में) की गयी यात्रा तथा वेंगुर्ला में आर्यसमाज के निश्चय के अनुसार शास्त्रीजी द्वारा वेदोक्त उपनयन संस्कार कराये जाने का विवरण उपस्थित किया। इस भाषण में पर्याप्त जानने योग्य बातें थीं। वक्ता ने अपने भाषण में सम्पूर्ण गोमान्तक प्रान्त का जैसा का तैसा चित्रण उपस्थित किया था। वहां के पर्वत, नदी, नाले, वनस्पति, बाग बगीचों की शोभा, फिरंगियों (पोर्तुगालियों) तथा आर्य लोगों के देवस्थानों का वर्णन, उनकी उत्पत्ति वहां के लोगों का व्यवहार धर्म सम्बन्धी विचार, अभ्यागतों के आगत-स्वागत की पद्धति, फिरंगी राज्य की व्यवस्था, स्मार्त और वैष्णवों के परस्पर विरोधी खानपान और स्वभाव और वहां उत्तम गृहस्थों की सभ्यता इत्यादि बातों का उत्तमता पूर्वक विवेचन किया था। वक्ता ने अपनी वेंगुर्ला यात्रा का वर्णन करते हुए

कहा था कि वहां उसने पंडित बालाजी गावस्कर के यहां स्थानीय ब्राह्मणों के समक्ष वेदोक्त उपनयन संस्कार कराया था। वहां उसके भाषण से लोग सन्तुष्ट हुए थे। सावन्तवाड़ी (कोंकण का एक शहर) में उपनयन संस्कार विषय पर वाद विवाद करके उन लोगों को पराजित किया था तथा अपने भाषण से लोगों को सन्तुष्ट किया था। गोवा में अपने भाषणों द्वारा वहां के लोगों को वेद, स्वामीजी और आर्यसमाज से परिचित कराकर उन्हें प्रसन्न किया था। वक्ता ने विस्तार से इन सब का विवरण उपस्थित किया था। उसने कहा कि वहां के लोगों में सत्य धर्म जानने के लिए बहुत जिज्ञासा है। स्वामीजी जैसे महात्मा पुरुष की वहां जाने की अत्यन्त आवश्यकता है। कार्यक्रम के अन्त में पुनः प्रार्थना गायन हुआ था। रा० रा० आतमाराम बापूजी दलवी के साक्षी रूप वक्तव्य के अनन्तर अध्यक्ष अन्ना मार्तंड जोशी ने अपना न्याययुक्त अभिप्राय देकर सभा विसर्जित की थी।

———

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष ११, रविवार, संवत् १९३८। ता० २८ मई, सन् १८८२ ई०।

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष ४, रविवार, संवत् १९३८, ता २१ मई सन् १८८२ के दिन आर्यसमाज की सभा 'रा० रा० गोविन्द विष्णु की पाठशाला' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। प्रथम नियमानुसार वेदमन्त्र से परमात्मा की स्तुति की गयी थी। पश्चात् गायक ने स्तुति गायन किया था। तत्पश्चात् समाचार पत्र में दी गयी सूचना के अनुसार रा० रा० **तुकजाराम चुनीलाल** ने **"लग्न विचार"** विषय पर अपने लिखित निबन्ध का कुछ भाग पढ़कर सुनाया था।

[आगे का अंश हमने छोड़ दिया है। यु० मी०]

———

ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष ३, रविवार संवत १९३८। ता० ४ जून सन् १८८२ ई०

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष ११, रविवार, सं० १९३८, ता० २८ मई[1] सन् १८८२ ई० के दिन आर्यसमाज की सभा 'एस्प्लेनेड थियेटर' में सायंकाल साढ़े चार बजे हुई थी। इस दिन श्रोताओं की उपस्थिति बहुत अधिक थी। प्रथम नियमानुसार गायक के स्तुति-गायन करने के बाद, प्रख्यात **पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामी जी** ने वेदमन्त्रों से परमात्मा की प्रार्थना करके समाचार पत्र में दी गयी सूचना के अनुसार "देशोन्नति" विषय पर अति सुन्दर बोधकारक व्याख्यान किया था। इस व्याख्यान में **बालविवाह, देशाटन, क्रय-विक्रय में प्रामाणिकता, विद्याभ्यास, सत्य-भाषण** इत्यादि बहुत

१. इस कार्यवाही में २ अप्रैल के ऋ० द० के व्याख्यान के अनन्तर ९, १६, २३, ३० अप्रैल तथा ७, १४, २१ मई की सभाओं में अथवा इन लगभग पौने दो मास के समय में बम्बई में रहते हुए भी ऋषि दयानन्द के व्याख्यान क्यों नहीं हुए, यह विचारणीय है।

से उन्नति के विषयों पर अत्यन्त प्रभावशाली भाषण किया था देश की उन्नति के लिए किन-किन उपायों को कार्यान्वित किया जाय, इत्यादि बातें स्वामी जी ने स्पष्ट की थीं। उनका सम्पूर्ण भाषण अंकित करने योग्य था। परन्तु उस सम्पूर्ण भाषण का समावेश करने से यह विवरण बहुत बड़ा हो जायगा, अतः पूर्ण वृत्तान्त यहां नहीं अंकित किया जा रहा है। फिर भी सारांश[1] यहां दिया जा रहा है।

बालविवाह करने से विद्यार्थियों से अपेक्षित विद्याभ्यास नहीं होता, साथ ही अयोग्य समय में विषयानन्द के तुच्छव्यसन में पड़कर शरीर का विनाश करते हैं। इससे आगे जाकर वीर्यहीन, बुद्धिहीन और बलहीन होकर शरीर सामर्थ्य तथा बुद्धिबल विनष्ट कर देते हैं। ऐसे व्यक्ति जगत् में निरुपयोगी तथा अन्य लोगों के लिए विनाशक सिद्ध होते हैं। अतएव बालविवाह की प्रथा बन्द करके वीर्य परिपक्व होने तक ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करवाकर भलीभांति विद्याभ्यास करवाना चाहिये तथा विद्यार्थियों के शरीर, बल, बुद्धि बढ़ाने के उपाय करने चाहिये। इससे वे पराक्रमी और देशोपयोगी पुरुष बन सकेंगे। यह बालविवाह के सम्बन्ध में सारांश था।

देशाटन के सम्बन्ध में यह सारांश था कि पुराणों की गप्पों में देशाटन को धर्म विरोधी बताया गया है, जो बिल्कुल झूठ है। वेदादि सत्य आर्ष ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में ऐसा कुछ भी नहीं हैं। उलटा इन ग्रन्थों से ऐसा ज्ञात होता है कि अपने देश के आर्य लोग तथा बड़े-बड़े ऋषि मुनि जैसे लोग समस्त भूमंडल में घूमते थे। यहां के राजा दूरदेश की कन्याओं से विवाह करते थे। स्वामी जी ने इन बातों के कितने ही उदाहरण दिये थे। साथ ही देशाटन करने से मनुष्यों में शरीरबल, बुद्धिबल, साहस तथा जानकारी बढ़ती है। अन्य देशों की राज्यनीति, व्यापार, कलाकौशल के कामों को देख-सीखकर, अपने देश में उनका प्रचार करने से, स्वदेशवासियों के सुख में वृद्धि होगी। देशाटन करनेवाले व्यक्ति उत्साह और आग्रहपूर्वक इन बातों के प्रचार में प्रयत्नशील होंगे, जिससे स्वदेश की समृद्धि होगी। अतः देशाटन करनेवाले लोगों के मार्ग में बाधा उपस्थित करना मूर्खता है। इतना ही नहीं अपने ही हाथों अपने देश का विनाश करना है। इसलिये ज्ञानवान् धनाढ्य व्यापारियों को इस सम्बन्ध में एकमत से विचार करके भावी दुर्भाग्य से बचने के लिये अवश्य सोचना चाहिये। शास्त्र के अनुसार परदेश जाने में कोई दोष अथवा धर्मभंग नहीं है। स्वामीजी ने देशाटन के सम्बन्ध में इस प्रकार के विचार प्रकट किये थे। स्वामी जी ने इस सम्बन्ध में विशेष बात कही थी कि विदेशी लोग वेद में वर्णित अभक्ष्य वस्तुओं का भक्षण करते हैं। यह धर्म-विरुद्ध है। हम लोगों को ये वस्तुयें नहीं ग्रहण करनी चाहिये। खानपान में ऐसे लोगों के संसर्ग से दूर रहकर अपने खाने-पीने की विधि

१. ऋ० द० के इस व्याख्यान का सारांश जितने विस्तार से कार्यवाही में अङ्कित किया है, उसने विस्तार से अन्य व्याख्यानों का सारांश भी अङ्कित हो तो अनेक ऐसे विज्ञानों का ज्ञान होता जिनका उल्लेख उनके ग्रन्थों में नहीं मिलता। यथा इसी व्याख्यान में देशान्तर में जाने वालों के सम्बन्ध में देशकालानुसार प्रायश्चित्त का विचार प्रकट किया है।

सुरक्षित रखने की व्यवस्था विदेश में करनी चाहिये। **जब तक इस प्रकार की व्यवस्था न हो जाय**
तब तक अपने देश की पद्धति के अनुसार देह शुद्धि के लिये प्रायश्चित की विधि करनी चाहिए। यहां
के लोगों को न चिढ़ाना ही बुद्धिमत्तायुक्त है। अभक्ष्य वस्तुओं का भक्षण न करने के लिये वेदोक्त धर्म
का अंकुश रखना चाहिए।

तीसरे विषय **क्रयविक्रय** के सम्बन्ध में स्वामी जी ने कहा कि हमारे आर्य पूर्वज पुरातनकाल
में सभी व्यवहारों में प्रामाणिक और न्यायी थे। इससे उस समय विदेशों में उनकी प्रामाणिकता
और प्रतिष्ठा प्रथम श्रेणी की थी। परन्तु आजकल हमारे देश के लोगों ने क्रिय-विक्रय के व्यवहार में
पूर्वजों की प्रामाणिकता छोड़ दी है। व्यापार में अत्यन्त अप्रामाणिकता का व्यवहार करते हैं तथा
नाना प्रकार के षड्यन्त्र रचते हैं। इससे व्यापारियों की प्रतिष्ठा स्वदेश में भी कम हो गयी है।
इस समय लेन देन में तथा दिये गये वचन पर बाप बेटे अथवा भाई भाई का एक दूसरे पर
विश्वास नहीं है। फलस्वरूप आपस में धन इत्यादि से एक दूसरे की सहायता करनी इन लोगों ने
छोड़ दी है एक दूसरे का बिल्कुल विश्वास नहीं करते। विदेशियों को प्रेमपूर्वक लोन, शेर(शेयर)
इत्यादि अनेक बातों में करोड़ों रुपये देते हैं। इस देश में व्यापारार्थ आये हुए विदेशियों को
करोड़ों रुपये देकर उनकी कमाई में वृद्धि करते हैं। परन्तु अपने भाइयों को उनका अप्रामाणिक
वर्तन देखकर कोई एक फूटी कौड़ी भी ऋण नहीं देता। इससे देश की समृद्धि नष्ट होती है।
हम अपनी आंखों से देखते हैं कि हमारे ही लोग माल देने में अत्याधिक धोखा धड़ी करते हैं।
विक्रेता तथा क्रेता दोनों ही माल का वास्तविक मूल्य नहीं जानते, फिर भी एक अधिक तथा
दूसरा कम मूल्य कह-कह कर अपना-अपना समय झगड़े में नष्ट करते है। ये व्यर्थ ही अप्रामाणिता
की छाप प्राप्त करते हैं। साथ ही हमारे कितने ही व्यापारी दिखाते हैं एक वस्तु और देते है
दूसरी, जिस माल में कोई मिलावट सम्भव होती है, उसमें मिलावट कर देते हैं। कितने ही
माप भी झूठा रखते हैं। कितने ही बड़े व्यापारी अपना घर धनादि से भरकर दीवाला निकाल
निकलवा कर दूसरों को जान बूझकर रुलाते हैं। इसमें अपनी तथा अपने वंशजों की भविष्य के लिए
प्रतिष्ठा नष्ट होती है। विश्वास उठ जाने से आगे चलकर व्यापार धन्धे में कोई एक दूसरे को एक
कौड़ी भी उधार नहीं देते इससे अपने वंशजों की भविष्य में दुर्दशा होगी। वे अत्यन्त दुःखी होंगे। ये
लोग सामान्य बुद्धि से भी नहीं सोचते कि इस प्रकार का धिक्कार योग्य व्यवहार करने से कचहरी
दरबार में अनेक प्रकार के झगड़े खड़े होते हैं, जिनमें लाखों रुपये नष्ट होते हैं। कोर्ट में जानेवाले
अन्त में निर्धन होकर पश्चाताप करते हैं। अतः कहने का तात्पर्य यह है कि क्रय-विक्रय में अप्रामा-
णिकता, धोखाधड़ी और षड्यन्त्र करने से तथा अकारण ही भाई-भाई की मूर्खता से कचहरी दरबार
में न जाकर प्रामाणिकता का पालन करते हुए सत्यता पूर्वक क्रय विक्रय करना चाहिये। आपस में
विश्वास बढ़ाना चाहिये। एक-दूसरे की सहायता करके परस्पर अपनी समृद्धि करनी चाहिये। इस
प्रकार देश देशान्तर सें अपनी साख जमानी चाहिये। इस प्रकार स्वामी जो ने क्रय-विक्रय के सम्बन्ध
में अपने मन के वास्तविक भाव व्यक्त किये थे।

तत्पश्चात् स्वामी जी ने **विद्याभ्यास** के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञानवर्धक बातें कही थीं। उनका तात्पर्य यह था कि पारमार्थिक ईश्वर सम्बन्धी तथा व्यावहारिक पदार्थ विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान जिससे प्राप्त हो, उसी का नाम विद्या है। इसे पढ़ना-पढ़ाना तथा लोगों की उन्नति करना ही मानव धर्म है। इसे प्रत्येक व्यक्ति को अंगीकार करना चाहिये। यही उसका पुरुषार्थ है। यदि वस्तुतः यह विद्या हम लोग प्राप्त करना चाहते हैं, तो वेदादि आर्ष ग्रन्थों तथा महान् ऋषिमुनियों द्वारा आदरित ग्रन्थों का भलीभांति अध्ययन करना चाहिये। सत्य क्या है? ईश्वर कौन है? कैसा है? मनुष्य को उसकी आज्ञा क्या है? मनुष्य का कर्तव्य तथा उसे निभाने का धर्म क्या है? इन सब बातों को सबसे पहले जान लेना चाहिये। इसी के साथ व्यावहारिक, राजकीय तथा पदार्थ विद्या का ज्ञान उत्तमता पूर्वक सम्पादन करना चाहिये। **संसार के लोगों की भाषाओं के ग्रन्थों से यदि उत्तम ज्ञान मिले तो उसे भी प्राप्त करना चाहिये**। उनकी भाषाएं भी सीखनी पड़े तो अवश्य सीखनी चाहिये। उनमें से जहां भी सत्य प्राप्त हो उसे ग्रहण करना चाहिये। इसी का नाम विद्याभ्यास है। अन्यथा विदेशी भाषा सीखकर उन लोगों के दुराचरण ग्रहण करना तथा अपनी भाषा के तत्त्व भंडार की ओर से आंख मूंद लेना उसके सत्य की उपेक्षा करके मौन हो जाना, थोड़ी विद्या के बल पर दुराग्रह करना सर्वज्ञ की भांति होकर पाखंडी लोगों का बिल्कुल होटलपन्थी[1] हो जाना इत्यादि विद्याभ्यास नहीं है। इससे अपना अथवा संसार का कल्याण नहीं हो सकता। यह अविद्या का प्रकाशन (प्रकट करना) कहा जायगा। इस प्रकार का पढ़ा लिखा बाहर से स्वच्छ बोलने में मधुर, विनम्रता प्रदर्शन में चतुर, अल्प विद्या से सन्तुष्ट होकर सर्वज्ञता के अभिमान में दुराग्रही होता है। अपने मानसिक कलुष के कारण वह पक्का स्वार्थी होता है। इस व्यवहार के द्वारा प्राप्त किये धन से वह अत्यन्त मदोन्मत्त होकर विषयानन्द भोगने में डूबा रहता है। ऐसा व्यक्ति स्वदेशी भाई की स्थिति के सम्बन्ध में कोई परवाह नहीं करता। ईश्वर के सम्बन्ध में उसके भीतर किसी प्रकार का भय नहीं रहता। वह प्रत्येक विषय में अग्रगण्य होकर देशी भाइयों को दुःखी करने तथा उनमें फूट उत्पन्न करने का मार्ग स्वीकार करता है। उनके दुःख-क्लेश बढ़ाने में अपने ज्ञान का उपयोग करता है। इस से लोगों की और दुर्दशा होती है। अतएव यदि देश की अर्थात् स्वदेश के भाइयों की कोई परवाह हो, तो वेदादि आर्षग्रन्थों का अध्ययन अभिमान और हठवादिता त्यागकर अपने पूर्वज आर्यों की भांति उत्तम गुण तथा उत्तम ज्ञान को ग्रहण करना चाहिये। यही मुख्य आर्यधर्म है। इस प्रकार स्वामीजी ने विद्याभ्यास के सम्बन्ध में भाषण किया था। इसी प्रकार उन्नति के अन्य विषयों पर भी बहुत कुछ कहा था। इसका ठीक ठीक ज्यों का त्यों चित्रण असम्भव है। यह भाषण ठीक साढ़े छह बजे समाप्त हुआ था। अन्त में सभा विसर्जित हुई थी।

इसके पश्चात् **ता० ३ जून सन् १८८२, शनिवार** के दिन आर्यसमाज की सभा 'गइटी थिएटर' में सायंकाल साढ़े चार बजे हुई थी। इस अवसर पर स्वामीजी ने **"अहिंसादि देशोन्नति"** विषय पर

१. यहां 'होटलपन्थी' शब्द का अभिप्राय ज्ञातव्य है।

पहले भाषण के पूरक रूप में अत्यन्त ज्ञानवर्धक भाषण किया था। इसका सार उपर्युक्त भाषण से बहुत कुछ मिलता हुआ होने के कारण उसका वृत्तान्त देने की आवश्यकता नहीं है। इसीलिये वह वृत्तान्त नहीं दिया गया। इस दिन बहुत अधिक वर्षा होने पर भी सभा में उपस्थिति बहुत अच्छी थो। सेठ लक्ष्मीदास खीमजी तथा मथुरादास लवजी इत्यादि बहुत विचारवान् गृहस्थ कष्ट उठाकर बीच बरसात में पधारे थे। यह भाषण सायंकाल साढ़े छह बजे पूर्ण हुआ था। तत्पश्चात् यद्यपि मकान के स्वामी पारसी गृहस्थ थे[1] तथापि अपना यह उत्तम मकान भक्ति पूर्वक लोगों के लाभार्थ निःशुल्क उपयोगार्थ दे दिया था। इसके उपलक्ष्य में उनका महान् उपकार मानकर सभा तुरन्त विसर्जित की गई थी।

आषाढ़ शुक्ल पक्ष ३, रविवार, संवत् १९३८। ता० १८ जून, सन् १८८२ ई०[2]

(पहले मुंशी समर्थदान के व्याख्यान का उल्लेख है, जो **ज्येष्ठ कृष्ण ३ रविवार सं० १९३८, ता० ४ जून १८८२** को हुआ था। हमने उसे छोड़ दिया है। सम्पा०)

इसके अनन्तर पुनः आर्यसमाज की सभा 'फरामजी कावशजी इन्स्टीटयूट' में **कृष्ण पक्ष ११, रविवार संवत् १९३८, ता० ११ जून सन्** १८८२ के दिन सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी। गायक के स्तुतिगायन करने के पश्चात् समाचार पत्र में दी गयी सूचना के अनुसार श्री**मत् पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामीजी** ने "**मूर्त्ति, मन्त्र, देव, ऋषि, पितृ, उपासना आदि कर्तव्याकर्तव्य**" विषय पर अत्यन्त सरसमय व्याख्यान किया था।

प्रथम स्वामी जी ने **मूर्त्तिपूजा** को वेदविरुद्ध बताते हुए कहा कि यह जैनों से आई है। इससे कोई लाभ नहीं है। मूर्त्तिपूजा की निस्सारता वेदादि आर्ष ग्रन्थों के द्वारा स्वामीजी ने सिद्ध की थी। मूर्त्तिपूजा बच्चों के खेल सदृश है। इससे ईश्वरादि के सम्बन्ध में किसी प्रकार का कल्याणकारी ज्ञान कुछ भी नहीं होता। परन्तु उसके मोह में पड़कर इस विश्वास से कि उससे कल्याण होगा, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन चार पदार्थों की सिद्धि के लिए जो ज्ञान, पठन-पाठनादि के द्वारा सम्पादन करना चाहिए वह नहीं किया जाता। **आय लोगों में जो रामकृष्ण आदि समर्थ महापुरुष हो गये हैं, उनके गुण, आचरण तथा पराक्रम को स्मरण करके अपने आचरण में लाना चाहिये।** परन्तु यह न करके उन्हें ईश्वर का अवतार मानकर उनकी मूर्ति बना बनवाकर पूजते पुजाते हैं। उनके नाम पर बड़े-बड़े आचाय बनकर देश के अज्ञानी भोले लोगों को धर्म के बहाने फंसाते हैं। कुछ दूसरे

---

१. इन गृहस्थ के नाम का उल्लेख आवश्यक था।

२. यहां जिस तिथि तारीख का निर्देश है वह ज्येष्ठ कृष्णा ३, ४ जून की दृष्टि से नहीं है। अपितु अगली ज्येष्ठ कृष्णा ११; ता० ११ जून की सभा की कार्यवाही की दृष्टि से दी गई है।

लोग साधु सन्त का स्वांग करके राम कृष्णादि महात्मा पुरुषों की मूत्तियां बनाकर उन्हें रास्ते की धूल मिट्टी खाते हुए ठण्डी गर्मी में बैठाकर, उनके नाम से भीख मांगकर अपना पापी पेट भरते हैं तथा राम, कृष्णादि महात्माओं तथा चक्रवर्ती राजाओं को संसार में भिखारी सिद्ध करते हैं। **यदि इस समय उनका राज्य होता तो ऐसे ढोंगियों की दुर्दशा होती इस बात की कल्पना ज्ञानीजन स्वयं** कर सकते हैं परमेश्वर सर्वव्यापक है अपनो अनन्त सम्पदाओं से सभी पूर्ति करता है। राम कृष्णादि महापुरुष अपने सद्गुण तथा पराक्रम से चक्रवर्ती राजा बने। इनकी मूर्त्ति बनाकर 'बालाजी तथा ठाकुर जी को आज भोग नहीं है' इस प्रकार कह कर अपने पेट के लिये भीख मांगना, हरामखोरी करना, अन्य सद्गृहस्थों को भीख दिलाना क्या लज्जाजनक नहीं है? क्या यह विचारवान् देशी-परदेशी लोगों के लिये उपहास्द तथा तिरस्करणीय नहीं है? जो व्यक्ति अपने जन्मदाता तथा पोषणकर्त्ता को भूखों मरते भिखारी की भांति प्रकट करते हैं क्या वे मनुष्य संज्ञा के अधिकारी हैं? जिस परमेश्वर ने अपनी महान् अद्भुत शक्ति से सूर्य चन्द्रादि अनेक लोकों का निर्माण किया है उसकी कल्पना पाषाणादि मनुष्यकृत मूर्त्ति में करना क्या बुद्धिमान् का काम है? और क्या इससे ईश्वर-भक्ति अथवा ईश्वरोपासना होती है? इत्यादि मूर्ति पूजा के विषय में और बहुत कुछ वर्णन करके स्वामी जी मन्त्र विषय पर आये थे।

स्वामी जी ने मन्त्र का अर्थ बताते हुए कहा था कि **मन्त्र अर्थात सद्विचार दर्शक संक्षिप्त वचन**। इसी के आधार पर राजा के प्रमुख पदाधिकारियों को मन्त्री संज्ञा प्राप्त हुई थी। मन्त्री अर्थात् सद्विचार दर्शक व्यक्ति मन्त्र तथा मन्त्री का यही मूल अर्थ है। इसे स्वार्थी लोगों ने मोहन, मारण, उच्चाटन की सिद्धि से जोड़कर कितने ही, स्वार्थसाधक वाक्य रचकर, उन्हें मन्त्र नाम देकर उनके द्वारा ये लोग ठगाई का व्यापार चला रहे हैं पर उनसे यह कोई नहीं पूछता कि **तुम्हारे पास मारण मन्त्र है, जीवन मन्त्र क्यों नहीं**? क्या ईश्वर अथवा तुम्हारा अन्य देवता तुम्हारे मन्त्र से दूसरों का घात करने की शक्ति तो रखता है, पर इसी प्रकार किसी को जीवित करने की शक्ति क्या उसमें नहीं है? क्या ये देवता हत्यारे हैं? तथा तुम्हारी आज्ञा में रहकर ऐसे ऐसे ही काम करते हैं? क्या उनमें तुम्हारी जैसी बुद्धि नहीं है कि जिस से वे तुम्हारे इस प्रकार का दुष्ट दासत्व करते हैं? लोगों को यह विचार करना चाहिये कि ईश्वर-ज्ञान-सम्बन्ध में क्या ऐसी बातें उचित हैं और वे शोभा देती हैं? और **यदि ऐसा हो तो ऐसे लोग इस देश को कभी भी परतन्त्र होने अथवा रहने देते**? अतएव विद्वज्जनों को इसके सम्बन्ध में विचार करना चाहिये तथा मन्त्र सिद्धि सम्बन्धी इस प्रकार की गप्पाष्टक कभी नहीं माननी चाहिये। परन्तु चार वेदों के मन्त्र जो सद्विचार तथा सद्विद्या से भरे हुए हैं, उनका मनन करना चाहिये। इनमें से जो ज्ञान प्राप्त हो उसके अनुसार प्रत्येक को आचरण करना चाहिए। यही मन्त्र सिद्धि है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की मन्त्र सिद्धि इस संसार में नहीं है। यह बात निश्चय पूर्वक जान लेनी चाहिए। इस प्रकार मन्त्र के विषय में व्याख्यान करने के पश्चात्—

देव, ऋषि, पितृ तथा उपासना आदि के विषय में, इन शब्दों के वास्तविक अर्थ करके,

विस्तार पूर्वक समझाया था । इसका विस्तार पूर्वक वर्णन इस विवरण में नहीं किया जा सकता । परन्तु उनके द्वारा की गई इन शब्दों की व्याख्या इस स्थान पर **संक्षेप** में दे रहें हैं जिस से बुद्धिमान् जन सारांश समझ लेंगे । देव का अर्थ है—दिव्य गुणवाला अपना कल्याण करनेवाला । **ऋषि** अर्थात् पठन-पाठन क्रिया चलाकर ग्रन्थों की रचनाकर विद्या का प्रकाश करनेवाला । **पितृ** का अर्थ है—माता, पिता, आचार्य, अतिथि ये चार प्रत्यक्ष देवता तथा अन्य बड़े लोग, महान् विद्वान्, वृद्ध पुरुष जो जीवित हैं, उन्हें पितृ समझना चाहिये । इनकी जीवित अवस्था में श्राद्ध के द्वारा तृप्ति करनी चाहिये अन्य की नहीं । मृत्यु के उपरान्त किसी के द्वारा श्राद्ध करने से उनकी तृप्ति नहीं हो सकती । मृत्यु के पश्चात् उनके निमित्त ढोंग करना बिल्कुल असत्य तथा धर्मशास्त्र के विरुद्ध है । इस प्रकार स्वामीजी ने अत्यन्त रसमय व्याख्यान किया । तत्पश्चात् साढ़े सात बजे सभा विसर्जित हुई थी ।

इसके अनन्तर आर्यसमाज की सभा **ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष १३, मंगलवार ता० १३ जून** के दिन 'फरामजी कावशजी इन्स्टीट्यूट' में सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी । इस दिन भी पिछले विषय पर शेष रहा हुआ विशेष व्याख्यान किया था । अन्त में साढ़े सात बजे सभा विसर्जित हुई थी ।

तत्पश्चात् पुनः तीसरी बार आर्यसमाज की सभा 'फरामजी कावशजी इन्स्टीट्यूट' में **आषाढ़ शुक्ल २, शनिवार, ता० १७ जून,** सायंकाल साढ़े पांच बजे हुई थी । इस दिन स्वामी जी ने **"योग विद्या"** विषय पर अन्तिम व्याख्यान किया था । इसका सारांश निम्नलिखित है—

योग का अर्थ है चित्तवृत्ति का निरोध । बुरा काम करनेवाली रजो [गुण वा] तमो गुणवाली वृत्ति को रोककर चित्तवृत्ति को शुद्ध सत्त्व गुणवाली वृत्ति में प्रेरित करने को योग कहते है । योग आत्मा के साथ तथा आत्मा परमेश्वर के साथ सम्बन्ध रखता है । वियोग पूर्वक योग होता है । स्वयंभू सर्वव्यापक है । उसे योग और वियोग कुछ नहीं होता । मन, इन्द्रिय तथा आत्मा का विचार जो मनुष्य नहीं करता वह अयोगी रहता है । उसे अन्तर का कोई ज्ञान नहीं होता साथ ही इन्द्रिय के साथ मन और मन के साथ आत्मा बहिर्मुख हो जाती है, जैसे नशे में । ध्यान से प्रत्येक पदार्थ को समझता है तथा अपने स्वरूप को ठीक-ठीक पहचानता है । आवृत्तचक्षु होकर अर्थात् बाह्य इन्द्रियों को अन्दर खींच मनन करे, उसको योग का ज्ञान होता है । तथा जिस पदार्थ (कारण) से जगत् बना है उसके साथ आत्मा का योग होता है और उसके साथ सर्व कार्य रूप जगत् का भी ज्ञान होता है । कोई इस प्रकार की शंका करे कि मन, इन्द्रिय तथा आत्मा को रोककर एकान्त में बैठा रहे, तो इससे मनुष्य मूढ़ बन जायगा, तो यह शंका असत्य है । किसी वस्तु को आप एक स्थान से रोकेंगे तो वह जल की भांति दूसरे स्थान से फैलेगी । इसी प्रकार आत्मा के विषय में समझना चाहिए । स्थूल जगत् में से मन-वृत्ति को हटाएंगे तो मनवृत्ति दूसरे स्थान पर लग जायगी और भीतर का ज्ञान होगा । मनुष्य रात दिन कामकाज करे, परन्तु निद्रा न ले तो इससे उसके शरीर और मन का कितना बिगाड़ होता है । इसी पर से विचार करना चाहिए कि एकान्त में बैठने से कितना लाभ होता है । कोई वस्तु यदि हम भूल गयें हों तो याद करने के लिये मनवृत्ति को स्थिर करना पड़ता है ।

'भीतर के पदार्थ बहुत महान् तथा गुह्य है' इस स्थूल जगत् में जो गुण तथा चमत्कार देखने में आते हैं उनसे करोड़ों गुने अधिक गुण तथा चमत्कार भीतर विद्यमान हैं। बाहर के चमत्कार इन्द्रियों से ग्रहण कर सकते हैं। परन्तु मनुष्य स्थिर होकर शोध (खोज) करेगा तो उससे बहुत अधिक चमत्कार भीतर के उसे दिखाई पड़ेंगे। इस प्रकार की भीतरी चमत्कृतियों का कारण यह है कि योग में विभु पदार्थों के साथ आत्मा का संयोग होने से उसे दुर्लभ्य ज्ञान होता है। दृश्य विषयों से मन को हटाने से मन अदृश्य स्वरूप को विषय बनाता है। जिसने कभी विचार नहीं किया है, उसे मन, आत्मा तथा भीतर का कुछ आभास ही नहीं है। जिस समय आत्मा घबराहट में होती है उस समय कोई भी सोचने का काम मनुष्य से नहीं होता, मनुष्य के समस्त बाह्य व्यवहार भीतरी व्यवस्था के कारण हैं। ध्यान में विचार करने से मनुष्य की वृत्ति परमेश्वर के साथ एकरूप हो जाती है। तब इस प्रकार का ध्यानी पुरुष बाह्य वृत्ति में कैसे रहेगा? ऐसा पुरुष बाह्य व्यवहार तथा योग इन दोनों में ही शुद्ध रहेगा। मनुष्य पूरे दिन [ईश्वर का नाम] रटता रहे और सायंकाल दो घड़ी भी समाधि (सन्ध्योपासना) न करे तो उसका बल क्षीण होगा। जो व्यवहार के साथ ही योग आरंभ करेगा, उसकी शक्ति बहुत बढ़ेगी।

इस संसार में पांच प्रकार की वृत्ति चल रही है—(१) **प्रमाण** जिसमें प्रत्यक्ष, अनुमान तथा शब्द। (२) **विपर्यय ज्ञान** अर्थात् मिथ्या ज्ञान (३) **विकल्प वृत्ति** अर्थात् विद्या सत्संग के बिना जहां शब्द सुने वैसा ज्ञान। जैसे कि एक देश ऐसा देखा कि जहां मनुष्य शरीर से चलता है और पैर से खाता है। (४) **निद्रा** की वृत्ति (५) **स्मृति** अर्थात् अनुभव किये हुए विषय का स्मरण करना। रजो [गुण] तमो गुणवाली वृत्ति क्लेशयुक्त तथा सात्त्विक गुणवाली वृत्ति क्लेश रहित है। संसार की इन पांच वृत्तियों को रोकने के दो उपाय हैं—(१) **योगाभ्यास** तथा (२) **वैराग्य। अभ्यास** अर्थात् ऐसा प्रयत्न कि जिससे मन, इन्द्रिय तथा आत्मा स्थिर हों। मन तथा आत्मा से पहचाने जानेवाले पदार्थों को जानने का अभ्यास नित्य (प्रतिदिन) तथा बहुत लम्बे समय तक [करना] चाहिए। मन को वश में करना समस्त संसार को वश में करने के समान है। **मन को वश में करने का अर्थ है अभ्यास करने योग्य विषय से उसे बाहर न जाने देना तथा समस्त बाह्य व्यवहार स्थिर [होकर] करना।**

योगाभ्यास के लिए हजारों उपाय कहे गये हैं। उनमें प्राणापान अथवा श्वासोच्छ्वास लेना श्रेष्ठ है। श्वासोच्छ्वास (अन्दर प्राण खींचना **श्वास** है तथा बाहर निकालना **प्रश्वास**) के लिए लोग कहते हैं कि [श्वासोच्छ्वास] बन्द करने से मृत्यु होती है तथा बिगाड़ उत्पन्न होता है। परन्तु अभ्यास से ऐसा नहीं होता। आत्मा को इस वायु का स्पर्श होने से (आत्माने वायुनी झपट् लावाथी) ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता अर्थात् वायु रोकने से आत्मा के ज्ञान की ज्योति ठीक-ठीक स्फुरित होती है। आजकल योगाभ्यास में बहुत विकृति आ गयी है। प्राण भिन्न प्रकार से रोकते हैं। योगी होने के लिए सकरे मुंह की वायु बन्द हुई गुफा में जाकर बैठना चाहिए, इस प्रकार का विचार लोगों में फैला हुआ है। परन्तु ऐसा करने से तो मनुष्य बिल्कुल रोगी हो जायगा। अतएव जिस स्थान पर बाहर तथा भीतर की वायु का संयोग हो ऐसे स्थान पर योगाभ्यास करना चाहिये। आजकल के प्रसिद्ध योगी मुख के मार्ग से पेट में कपड़ा उतार कर पुनः बाहर निकालते हैं। यह एक प्रकार का जुलाब है।

शरीर की हड्डियां तक टूट जायं इस प्रकार के महा कष्टदायक आसन करते हैं। यह एक प्रकार की नट-क्रिया के अतिरिक्त कुछ नहीं है। आसन तो ऐसे होने चाहिये कि जिससे मन स्थिर होकर अपने आप में स्थित होवे। योग का तो आत्मा तथा मन के साथ सम्बन्ध होता है, परन्तु शरीर के साथ नहीं।

जो मनुष्य क्षिप्त विक्षिप्त तथा मूढ़ है, वह कभी योग नहीं कर सकता। **योगी का सच्चा स्वरूप और लक्षण यह है कि वह प्रपंची नहीं होता। बुरे काम से उसकी आत्मा दूर रहती है। भीतर तथा बाहर से पवित्र रहता है।** आहार शुद्ध रहता है, **मद्य-मांस नहीं खाता। सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान**—आत्मा को ईश्वर के अनुकूल करना, **विशोकवृत्ति**—शोकरहित वृत्ति तथा **प्रत्याहार**—इन्द्रियों का मन के साथ एकाकार होना, इन लक्षणों से रहित पुरुष में योग का लेश भी नहीं होगा। विशेष करके उनमें ये पांच लक्षण होने चाहिए—**अहिंसा, सत्य, अस्तेय** (चोरी न करना) **उपस्थ-इन्द्रिय-निग्रह** (ब्रह्मचर्य) और **अपरिग्रह**। योग के आठ अंग अष्टांग कहलाते हैं। उनमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार ये **पांच बाहर के अंग** तथा धारणा ध्यान और समाधि **ये तीन भीतर के अंग** कहलाते हैं, जिन में आत्मा का परमात्मा से साथ संयोग होता है। योगी परमेश्वर से वियुक्त नहीं है। उसके साथ संयोग स्थापित करना योगी का मुख्य काम है।

योग में होनेवाले विघ्न—**व्याधि, स्त्यान, चित्तमलिनता, संशय, प्रमाद, आलस्य, भ्रान्ति, अलब्ध-भूमिकत्वं** (बीच में ही छोड़ देना)। और **अनवस्थितत्व हैं**, इन विघ्नों से योग में सफलता नहीं मिलती। मन को शुद्ध करने के लिए चार प्रकार की भावना चाहिए—सुखीजन के साथ **मित्रता** दुःखी जन के साथ **करुणा**, पुण्यात्मा के साथ **हर्ष**, दुष्ट के साथ **उपेक्षा** (प्रीति अप्रीति कुछ नहीं)।

[इसके आगे मूल गुजराती में लिखी कार्यवाही में एक पृष्ठ खाली छोड़ा हुआ है प्रतीत होता है लेखक इस भाषण का शेष भाग भी लिखना चाहता था परन्तु किसी कारण वश नहीं लिख सका। इस से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषण भी अधूरा रह गया। सम्पा०]

परिशिष्ट

पूर्व मुद्रित आ० स० बम्बई की कार्यवाही के शेष भाग से विशिष्ट अंशों का संकलन

आर्यसमाज काकड़वाड़ी, बम्बई की साप्ताहिक अधिवेशनों की कार्यवाही का जो पुराना रजिस्टर उक्त समाज में सुरक्षित है और जिस के एक भाग का हिन्दी अनुवाद 'ऋषि दयानन्द के बम्बई-निवास-काल की सभाओं की कार्यवाही' के शीर्षक से हमने छापा है, उसका संक्षिप्त विवरण और उसकी महत्ता का परिचय हम पूर्व

पृष्ठ ६१ पर दे चुके हैं। हमने उस कार्यवाही को सरसरी दृष्टि से पढ़ा है। उस में से किस अधिवेशन में किस का भाषण किस विषय पर हुआ इसका संकलन भी हमने अपने ज्ञान के लिये कर लिया है। उसमें से कतिपय अत्यन्त उपयोगी अंशों को हम नीचे उद्धृत करते हैं। इन से उस समय के आर्यसमाज के अधिवेशनों की सर्वतोमुखी गतिविधि तथा अतिशय उदार दृष्टि का परिज्ञान मिलता है। यहां हम तिथि तारीख के साथ केवल वक्ता का नाम और विषय का ही उल्लेख कर रहे हैं।

चैत्र कृष्ण पक्ष (उ० **भा०** वैशाख कृष्ण पक्ष) ४, रवि, सं० १९३४ (उ० **भा० सं०** १९३५)= २१ अप्रेल १८७८—श्रीकृष्ण शास्त्री गोडबोले—वैदिक ज्योतिष।

चैत्र कृष्ण पक्ष (उ० **भा० वैशाख कृष्ण पक्ष**) ११, रवि, सं० १९३४ (उ० भा० सं० १९३५)= २८ अप्रेल १८७८—राजे श्री शोपुर जी लीमजी भाई तारापारेवाला—पेगम्बर जरथोस्त।

वैशाख शुक्ल १०, **रवि० सं०** १९३४ (उ० भा० सं० १९३५)=१२ मई १८७८—राजे श्री सदल जी शोपुरजी—खेतीबाड़ी का लाभ।

वैशाख कृष्ण पक्ष (उ० **भा० जेष्ठ कृष्ण पक्ष**) ३, रवि, सं० १९३४ (उ० भा० सं० १९३५)= १९ मई १८७८—राजे श्री विष्णुभास्कर लेले—स्वदेशाभिमान।

माघ शुक्ल पक्ष १, रवि, सं० १९३७=३० **जनवरी** १८८१—काठियावाड़ के प्रख्यात रीसालदार नीरजा मुरादअलीबेग—भारत खण्ड के लोगों को द्वीपान्तर में जाकर बसने की आवश्यकता है।

फाल्गुन शुक्ल पक्ष ६, रवि, सं० १९३७=६ **मार्च** १८८१—थीयोसोफिकल सोसाइटी के प्रधान—कर्नल अल्काट साहब—उत्तर भारत में स्वयं प्रवास करके आया (अंग्रेजी में)।

फाल्गुन कृष्ण पक्ष(उ० **भा० चैत्र कृष्ण पक्ष**)१२, रवि, सं० १९३७=२७ **मार्च** १८८१—प्रार्थना समाज के महोत्सव पर प्रार्थना समाज द्वारा आर्यसमाज को आमन्त्रण देने पर आर्यसमाजस्थ पुरुष उनके महोत्सव में सम्मिलित हुए।

वैशाख शुक्ल पक्ष ३, रवि, सं० १९३७ (उ० भा० सं० १९३८)=१ मई १८८१—प्रार्थना समाज के रा० रा० पाण्डुरंग सदाशिव केलकर—यज्ञ (पशुहिंसा के विरुद्ध)।

ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष २, रवि, सं० १९३७ (उ० **भा०** सं० १९३८)=२९ **मई** १८८१—राजे श्री अंकुश (?) रामचन्द्र गाडेकर—देशी कारीगरी।

आश्विन कृष्ण पक्ष (उ० भा० कार्त्तिक कृष्ण पक्ष) ९, रवि, सं० १९३७ (उ० भा० सं० १९३८)=१६ **अक्टूबर** १८८१—मुन्शी रोव हुसेन वलदेशेजर (?) चांदनरकर—हितोपदेश से।

कार्त्तिक कृष्ण पक्ष (उ० **भा० मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष**), रवि, सं० १९३८=१३ **नवम्बर** १८८१—प्राणजीवनदास काहनदास—पं० बालाजी[1] कृत वेदोक्त संस्कारप्रकाश में से सामान्य-संस्कार और विवाह संस्कार।

१. इन का पूरा नाम 'बालाजी विट्ठल गांवस्कर' था।

मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष ५, रवि, सं० १९३८=२७ नवम्बर १८८१—प्राणजीवनदास काहनदास-
पं० वाला जी कृत वेदोक्त संस्कार प्रकाश में से गर्भाधानसंस्कार और गृहस्थाश्रम ।

३० दिसम्बर शुक्रवार १८८१—भावनगर के रिसालेदार मीरजा मुरादअलीबेग—हिन्दुस्थानी
मां एक टुकु पण·········।

मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष १५, रवि, सं० १९३९=२४ दिसम्बर १८८२—ईस्रायल गृहस्थ मी०
सीमियन बेनजामी—नीति की उत्पत्ति ।

मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष(उ० भा० पौष कृष्ण पक्ष) १३, रवि, संवत् १९३९=७ जनवरी १८८३—
ईस्रायल गृह[illegible] सीमियन बेनजामी—अहिंसा की ओर मेरा आगमन पारसी गृहस्थ, दादा भाई—मांस
नहीं खाना चाहिये ।

पौष शुक्ल पक्ष १३, रवि, सं० १९३९=२१ जनवरी १८८३—ईस्रायल गृहस्थ सीमियन बेन-
जामी—'मनुष्य में आत्मा है और गवादि पशु में आत्मा नहीं है' इस बाइबिल के वाक्य का खण्डन ।

पौष कृष्ण पक्ष (उ० भा० माघ कृष्णपक्ष) १२, रवि, सं० १९३९=४ फर्वरी १८८३—ईस्रायल
गृहस्थ सीमियन बेनजामी प्राणियों में उत्पन्न मति और तर्क शक्ति ।

माघ शुक्ल पक्ष १२ रवि, सं० १९३९=१८ फर्वरी १८८३—ईस्रायल गृहस्थ सीमियन बेन-
जामी—सरकारी मराठी पाठशाला में लगी हुई पहली से छठी पुस्तकों में जो कवितायें लिखी हैं उन
पर टीका इन में छपी कवितायें बच्चों को नहीं पढ़ानी चाहिये । उनमें विद्या और नीति सिखाने
वाली कवितायें होनी चाहिये। विषयानन्द की अनीति के मार्ग पर चलाने वाली कवितायें नहीं होनी
चाहियें आदि विस्तार से ।

फाल्गुन शुक्ल पक्ष ३, रवि, सं० १९३९=११ मार्च १८८३—आर्य ज्ञानवर्धक सभा के आम-
न्त्रण पर उस सभा की·····महाजनवाड़ी में आर्यसमाज लगी।·········आर्यज्ञानवर्धक सभा के
निश्चयानुसार पहले वक्ताओं को इनाम मिलने के पीछे·········। शास्त्री रणछोड़ जी ओधनजी को
पूर्वनिश्चयानुसार पातञ्जल महाभाष्य समाज की तरफ से भेंट किया गया··········।

चैत्र कृष्ण पक्ष (उ० भा० वैशाख कृष्ण पक्ष) ७ रवि, सं० १९३९ (उ० भा० सं० १९४०)=६
मई १८८३—ईस्रायल गृहस्थ सीमियन बेनजामी—योगसाधन ।

आषाढ़ शुक्ल पक्ष ११, रवि, सं० १९३९ (उ० भा० सं० १९४०)=१५ जुलाई १८८३—पं०
अचलेश्वर गणेश—षट्शास्त्र मण्डन और आधुनिक शास्त्र खण्डन (ये काशी के प्रसिद्ध पं० बालशास्त्री
के शिष्य हैं)।

विशेष—इस सम्पूर्ण कार्यवाही में ऋषि दयानन्द के बम्बई-निवास-काल को छोड़कर प्रायः सभी अधि-
वेशनों में पर्याय से—एक बार व्याख्यान और दूसरी बार ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के प्रकरणों का वाचन और उन
का स्पष्टीकरण होता था।

ऋषि दयानन्द के द्वारा संगृहीत हस्तलिखित तथा मुद्रित पुस्तक

जो उनके निधन के समय विद्यमान थीं

ऋषि दयानन्द के निर्वाण के समय उनके पास किन-किन पुस्तकों का संग्रह था और वह कहां-कहां रक्खी हुई थीं, इसका एक लेखा श्रीमती परोपकारिणी सभा के तात्कालिक उपमन्त्री श्री पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने तैयार कराकर सन् १८८५ के सभा के अधिवेशन में **आवेदन-पत्र** के रूप में उपस्थित किया था। वह सं० १९४२ सन् १८८५ में वैदिक यन्त्रालय में छपकर प्रकाशित हुआ था। उसकी हमने १९४४ में प्रतिलिपि की थी। उसके अनुसार हम ऋषि दयानन्द के द्वारा छोड़ी गई पुस्तकों की सूची नीचे दे रहे हैं।

आवेदन पत्र के मुख्य पृष्ठ पर निम्न लेख है--

वार्षिक आवेदन

पण्डित श्री मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या
उपमन्त्री श्रीमती परोपकारिणी सभा निवेदित
श्रीमद्दयानन्दस्वामीकृत स्वीकारपत्र संबन्धिनी
श्रीमती परोपकारिणी सभा कार्यालय उदयपुर
ता० ६ दिसम्बर सन् १८८५ ई०

इस आवेदन पत्र के पृष्ठ २ पर निम्न लेख छपा है--

(१) पुस्तकों की एक फैरिस्त इसके साथ पेश करता हूं कि जिस पर (क) चिह्न है, यह सब पुस्तकें मेरे पास उदयपुर में धरी हैं और इसी के साथ दूसरी पुस्तकों की एक फैरिस्त (ख) चिह्न की जो मुंशी समर्थदान जी ने मेरे पास भेजी है, पेश करता हूं, उसमें लिखी सब पुस्तकें वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में हैं।

(क) पुस्तकों की फैरिस्त जो उदयपुर में उपस्थित हैं ⚜

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
१	वेष्टन १ ऋग्वेद-	ऋग्वेद संहिता मूल जिल्द १ छपी	१		प्रयाग भेजे गये

⚜ यह फैरिस्त आवेदन पत्र के पृष्ठ ७--१६ तक छपी है। ऐसी ही एक पुस्तक सूची परोपकारिणी सभा की सन् १८९१-९२-९३ के सम्मिलित 'वार्षिक वृत्तान्त' के अन्त में 'नकशा नंबर' १७ के अन्तर्गत 'पुस्तकालय' शीर्षक के नीचे पृष्ठ ५-१२ तक छपी है इस सूची में उत्तरकाल में संगृहीत पुस्तकों का भी निर्देश है।

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
२	विषयक पुस्तकानि	ऋग्वेद संहिता पदपाठ जिल्द १ छपी	१		प्रयाग भेजे गये तथा
३		ऋग्वेद सभाष्य जिल्द २ छपी भाग ३ और ४ था २	२		,,
४		वेदार्थयत्न पुस्तक १ छपी अंक १✲	१		,,
५	वेष्टन २ यजुर्वेद-	संहिता मूल १ छपी	१		,,
६	विषयक पुस्तकानि	यजुर्वेद संहिता पदपाठ पुस्तक १ लिखी	१		,,
७		यजुर्वेद संहिता सभाष्य पुस्तक १ छपी	१		,,
८		यजुर्वेद अनुक्रमणिका पुस्तक १ लिखी	१		,,
९	वेष्टन ३ सामवेद- विषयक पुस्तकानि	सामवेद संहिता मूल पुस्तक १ छपी	१		,,
१०		,, ,, ,, ,, लिखी हुई	१		,,
११		,, ,, ,, पदपाठ लिखित	२		,,
१२	वेष्टन ४ अथर्ववेद- विषयक पुस्तकानि	अथर्ववेद संहिता मूल पुस्तक २ छपी	१		
१३		† ,, ,, ,, पदपाठ आठवें काण्ड तक लिखित		१	,,
१४		† अथर्ववेद की अनुक्रमणिका पुस्तक १ लिखित		१	,,
१५		† अथर्ववेद संहिता मूल पुस्तक १ प्राचीन लिखित सं० १९४१ की पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्डया को भेंट करी हुई			
१६		† अथर्ववेद संहिता मूल पुस्तक १ प्राचीन १३ काण्ड			

✲ अगली दूसरी सूची में '७० अंक' लिखे हैं।

† राथ और ह्विटनी ने शौनकीय अथर्वसंहिता का सम्पादन सन् १८५६ (सं० १९१३) में किया था। ऋ० द० ने अपने ग्रन्थों में अथर्ववेद के पाठ इसी संस्करण के अनुसार दिये हैं। अथर्ववेद का भाष्य करने के लिये उन्होंने सन् १८८२ के उत्तरार्ध में बम्बई आर्यसमाज के मन्त्री श्री सेवकलाल कृष्णदास को अथर्ववेद की टीका, ऋषि, छन्द और मूल ग्रन्थ की हस्तलिखित पुस्तक ढूंढने के लिये लिखा था। इसका निर्देश सेवकलाल कृष्णदास

सं० नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
	से १७ काण्ड तक सं० १८२२ की लिखित पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्डया को भेंट करी हुई		१	,,
१७	† अथर्ववेद संहिता मूल पुस्तक १ प्रथम काण्ड से ६ काण्ड के २७ सूक्त के पहिले मन्त्र तक पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्डया को भेंट करी हुई		१	,,
१८	† अथर्ववेद संहिता मूल ११ वें काण्ड से १६ तक **प्राचीन** पण्डित मोहनलाल जी विष्णु जी पण्डया को भेंट करी हुई		१	,,
१९	† अथर्ववेद संहिता मूल पदपाठ १ दूसरे काण्ड के पहिले सूक्त के चौथे मन्त्र से चौथे काण्ड के पन्दरहवें सूक्त के दूसरे मन्त्र तक **प्राचीन** पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्डया को भेंट करी हुई।		१	,,
२० वेष्टन ५ ब्राह्मण–	शतपथ ब्राह्मण १ छपी		१	प्रयाग भेजे
२१ पुस्तकानि	ऐतरेय ब्राह्मण १ छपी		१	,,
२२	आर्षेय ब्राह्मण १ छपी		१	,,
२३	तथा तथा १ **लिखित**		१	,,
२४	संहितोपनिषद् ब्राह्मण १ छपी		१	,,
२५	वंशब्राह्मण १ छपी		१	,,

के २० जनवरी सन् १८८३ के पत्र में मिलता है। (देखो श्री म० मुंशीराम सं० पत्रव्यव० पृष्ठ २६९, २७०)। इसके लिये सेवकलाल कृष्णदास ने प्रयत्न भी किया था। अतः सम्भव है, अथर्ववेद के उक्त हस्तलिखित ग्रन्थ सेवकलाल कृष्णदास के सहयोग से श्री स्वामी जी ने प्राप्त किये होंगे जैनियों के भी बहुत से हस्तलिखित ग्रन्थ सेवकलाल कृष्णदास ने ही संग्रह करके ऋ० द० को भेजे थे। अथर्ववेद के इन हस्तलेखों में से एक भी हस्तलेख श्रीमती परोपकारिणी सभा के संग्रह में विद्यमान नहीं है। आवेदन पत्र में इन हस्तलेखों के विषय में, "पण्डित मोहनलाल जी विष्णुलाल जी पण्डया को भेंट करी हुई" लेख कुछ सन्देह प्रकट करता है कि कहीं पण्डया जी ने इन्हें दबाने के लिए ही ये शब्द नहीं लिख दिए? सेवकलाल कृष्णदास ने राथ ह्विटनी द्वारा प्रकाशित अथर्ववेद की प्रतिलिपि सन् १८८४ में लीथो प्रेस में छपवाई थी।

† यह टिप्पणी पूर्व पृष्ठ पर देखें।

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
२६		षड्विंशब्राह्मण १ छपी	१		
२७		कौषीतकी ब्राह्मण १ छपी	१		
२८		गोपथ ब्राह्मण १ छपी	१		
२९	वेष्टन ६ वेदाङ्ग-पुस्तकानि	वेदाङ्ग की पुस्तक १ प्राचीन लिखित सं० १९६२ जिस में शिक्षादि	१		
३०		अष्टाध्यायी की पुस्तक १ लिखित सं १९६२	१		
३१		निरुक्त पुस्तक १ प्राचीन लिखित सं १९६२	१		
३२		तथा एक तथा सं० १८९९	१		
३३		तथा तथा १ सभाष्य १ छपी कलकत्ते को अंक ६	१		
३४		निघण्टु मूल पुस्तक १ प्राचीन लिखित सं० १८५३	१		प्रयाग भेजे
३५		निघण्टु और निरुक्त की पुस्तक १ छपी	१		
३६		पाणिनीय शिक्षा सभाष्य १ छपी	१		
३७		अष्टाध्यायी मूल १ छपी	१		
३८		तथा तथा १ काशिका सहित छपी २	१		
३९		तथा तथा १ छपी	१		
४०		धातुपाठ मूल १ लिखित सं० १९२७	१		
४१		उणादिपाठ १ लिखित	१		
४२		तथा तथा सवृत्ति १ छपी	१		
४३		पाणिनीय लिङ्गानुशासन १ छपी	१		
४४		वार्तिकपाठ सभाष्य १ स्वामी जी का बड़े भाष्य से छंटाया लिखी	१		
४५		पिङ्गलसूत्र सभाष्य १ छपी	१		
४६		परिभाषेन्दुशेखर १ छपी	१		
४७		महाभाष्य कैयटविवरण सहित भाग ५ छपी	१		प्रयाग भेजा
४८		चरणव्यूह १ लिखी	१		
४९		कात्यायन प्रातिशाख्य १ छपी	१		

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
५०		सोपसर्ग धात्वादर्श पुस्तक १ छपी	१		
५१	वेष्टन ७ **षट्शास्त्र**–	न्यायदर्शन सभाष्य १ छपी	१		
५२	**पुस्तकानि**	वैशेषिक दर्शन १ छपी	१		
५३		वैशेषिक प्रशस्तपादभाष्य १ लिखी	१		
५४		पूर्वमीमांसा दर्शन १ छपी	१		
५५		उत्तरमीमांसा १ छपी	१		
५६		तथा तथा अंक १ छपी	१		
५७		सांख्यदर्शन १ छपी सूत्र	१		
५८		वेदान्त सभाष्य १ छपी	१		
५९		योग पातञ्जल सभाष्य १ छपी	१		
६०		वेदान्त तत्त्वसार रामानुज कृत १ लिखित	१		
६१		सर्वदर्शन संग्रह १ छपी	१		
६२		षड्दर्शन चिन्तामणिका अंक	१		
६३	वेष्टन ८ **उपनिषद्**– **पुस्तकानि**	ईशावास्यादिक उपनिषद् सभाष्य १ छपी	१		
६४		मैत्र्युपनिषद् १ छपी	१		
६५		छान्दोग्य उपनिषद् १ छपी	१		प्रयाग भेजे
६६		मन्त्रोपनिषद् पाठ मूल १ लिखित	१		
६७		तैत्तिरीय आरण्यक १ छपी	१		प्रयाग भेजे
६८	वेष्टन ९ **धर्मशास्त्र**–	मनुस्मृति भाषाटीका सहित १ छपी	१		
६९	**पुस्तकानि**	तथा मूल १ छपी	१		
७०		शुक्रनीति १ छपी[1]	१		
७१		संन्यास पद्धति १ लिखित	१		
७२		संस्कारविधि[2] गुजराती टीका सहित १ छपी	१		प्रयाग भेजे

१. क्या यह पं० जीवाराम विद्यासागर (कलकत्ता) द्वारा प्रकाशित है वा अन्य ?

२. यह संभवतः पं० बाला जी विठल गांवस्कर द्वारा लिखित 'वेदोक्त संस्कार प्रकाश' की पुस्तक होगी। वेदोक्त संस्कार का ऋ० द० कृत संस्कार विधि (संशोधित सं०) के साथ गहरा संबन्ध है। परोपकारिणी सभा के सन् १८९१-९२-९३ के सम्मिलित वार्षिक वृत्तान्त में नक्शा नं० १६ के अन्तर्गत 'पुस्तकालय' शीर्षक के नीचे छपी पुस्तकों में पृष्ठ ८ पर 'वेदोक्त धर्म प्रकाश गुजराती में' निर्दिष्ट है।

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले† वृत्तान्त के अनुसार
७३		मनुस्मृति के उपयोगी श्लोकों का संग्रह १ पुस्तक १ लिखी	१	
७४		विदुर प्रजागर के उपयोगी श्लोकों का संग्रह पुस्तक १ लिखी	१	
७५		अग्निहोत्र १ लिखी		प्रयाग भेजो
७६	वेष्टन १० कोश—	अमरकोश भाषाटीका सहित १ छपी	१	” ”
७७	पुस्तकानि	नानार्थाभिधान कोश १	१	
७८	वेष्टन ११ वैद्यक—	अमृतसागर १ छपी	१	
७९	पुस्तकानि	वैद्यक कोश १ छपी	१	
८०		निघण्टुभाषा १ छपी	२	
		नाडीतत्त्व बोधिनी १ छपी		
८१		ओषधियों का यादीपत्र—स्वामी जी के लिखे हुए†	१	प्रयाग भेंजी
			१	
८२	वेष्टन १२ कुरान—	कुरान अरबी भाषा का १ छपी		प्रयाग भेंजी
८३	पुस्तकानि	तथा हिन्दीभाषा में अनुवाद स्वामी जी का बनाया हुआ लिखी*	१	
			१	
८४	वेष्टन १३ ईसाई—	बाईबल जिल्द ३		
८५	मतकी	भट्टमोक्षमूलर कृत अंग्रेजी में ऋग्वेदभाष्य	१	
			१	
८६		तथा तथा कृत व्याख्यान अंग्रेजी	१	
८७	वेष्टन १४ जैनीमत—	जिनपूजा संग्रह १ छपी	१	
८८	की पुस्तकें	रत्नसार भाग १ छपी	१	
८९		विवेकसार १ छपी	१	
९०		जैनप्रभाकर १ छपी	१	
९१		कल्पभाष्य १ छपी	१	
९२		तत्त्वविवेक १ छपी		

† सम्भव है ऋ० द० का लिखा हुआ ओषधियों का यह यादी-पत्र वही होगा, जो 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में पूर्ण संख्या ८०१ (पृष्ठ ८०१-८०६) पर '३४ ओषधियों का खरड़ा' छापा है।

* इसके विषय में विशेष देखिए हमारा 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' पृष्ठ १९२-१९४ तथा 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' पूर्ण संख्या २०७ का पत्र तथा पृष्ठ २६० की टिप्पणी २।

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृतान्त
९३		श्राद्धदिन कृत्य १, छपी पार्श्वजिनत्र महिमन स्तोत्र १	२		
९४		प्राकृत भाषा का संस्कृत शब्दों के साथ अनुवाद		१	
		अस्तव्यस्त स्वामी जी का बनाया, लिखित पुस्तक		१	
९५		जैन फुटकर श्लोकों का संग्रह स्वामी जी कृत लिखौ		१	
९६	वेष्टन १५ पदार्थ–	रामस्नेही मत गुटका १ लिखी	१		
९७	विद्यादि विषयक–	चन्द्रालोक काव्य १ संस्कृत छपी	१		
९८	सर्वभाषा के पुस्तक–	भोजप्रबन्ध १ छपी	१		
९९		पदार्थविद्या की पुस्तक हिन्दी १ छपी	१		
१००		भूविद्या की पुस्तक हिन्दी १ छपी	१		
१०१		प्रार्थनासमाज की प्रार्थनादि पुस्तक ३ छपी	१		
१०२		ब्राह्मसमाज की पुस्तक १ छपी		१	
१०३		दयानन्द दिग्विजयार्क अंक ३ छपी	१		
१०४		अहिंसाधर्मप्रकाश १ छपी*			
१०५		भाषाभास्कर १ हिन्दी छपी		१	
१०६		इतिहासतिमिरनाशक खण्ड ३ के ७ छपी		१	
१०७		नीलदेवी १ छपी		१	
१०८		कुटुम्बवत्सल १ छपी		१	
१०९		विजयनीविजयवैजयन्ती १ छपी		१	
११०		भारत जननी १ छपी		१	
१११		गोमहिमा १ छपी		१	
११२		दुःखिनी बाला १ छपी		१	
११३		स्वामी जी कृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका उर्दू अनुवाद†	१		
११४		वेदविरुद्धमतखण्डन		१	
११५		दयानन्द सरस्वती मुखचपेटका १ जैनियों की		१	

* यह 'वेदोक्त संस्कार प्रकाश' के लेखक पं० बाला जी बिट्ठल गावस्कर कृत मराठी में छपा ग्रन्थ है।

† इसके विषय में विशेष देखिए "ऋ० द० के ग्रन्थों का इतिहास" पृष्ठ १००, १०१। तथा म० मुंशी राम जी सं० पत्र व्यवहार पृष्ठ ३०५।

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
११६		थियोसोफिकल सोसाइटी के दोषों का स्वामी जी का उत्तर*		१	
११७		अंग्रेजी में आर्य प्रश्नोत्तर १ छपी		१	
११८	वेष्टन १६ दयानन्द स्वामी सरस्वती कृत सर्व सूचीपत्र	चारों वेदों का अकारादि क्रम से सूची ※ १ लिखी	१		
१ ९		ऋग्वेद सूचीपत्र १ लिखी	१		
१२०		अथर्ववेद के मन्त्रों का सूची १ लिखी	१		
१२१		उपनिषदों की सूची १ लिखी	१		
१२२		अकारादि क्रम से चार वेद और ब्राह्मणों की सूची ९ लिखी	१		
१२३		ऐतरेय ब्राह्मण की सूची १	१		
१२४		शतपथब्राह्मण की सूची १	१		
१२५		निरुक्त सूची	३		
१२६		निरुक्त और शतपथ अमूल (१) सूची	१		
१२७		निघण्टु सूची ३	३		
१२८		धातुपाठ सूची २ अकारादि क्रम से	२		
१२९		उणादि सूची २	२		
१३०		वार्तिक सूची ३	३		
१३१		ऋग्वेद के विषयों की यादी के लिये सूची २	३	१	

* सम्भव है, यह उत्तर वही विशिष्ट विज्ञापन हो जो ऋषि दयानन्द ने "थियोसोफिस्टों की गोलमाल पोलपाल" नाम से बम्बई में छपवाया था। वह 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' में पूर्ण संख्या ५१७, पृष्ठ ५४८-५५४ पर छपा है।

※ यह वही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिस में ऋषि दयानन्द ने वेदभाष्य का आरम्भ करने से पूर्व चारों वेदों का पूर्ण मन्थन करके सूक्त-अध्याय-मन्त्र के अनुसार चारों वेदों के विषयों का संकलन किया है। ऋषि दयानन्द द्वारा रचे गए चतुर्विध भाष्य में से यह प्रथम कोटि का अति संक्षिप्त भाष्य चारों वेदों का उपलब्ध है। श्रीमती परोपकारिणी सभा की कार्यकारिणी ने २३-३-५७ की मीटिङ्ग में इतने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का कुछ भी मूल्याङ्कन न करके इसे 'न छापने' का अविवेकपूर्ण निश्चय किया था, परन्तु मेरे तथा अन्य कई व्यक्तियों द्वारा इसे प्रकाशित करने का अन्दोलन करने पर सन् १९७१ में इसे छाप दिया। परन्तु इस का मुद्रण बहुत अशुद्ध हुआ। हमने इसे पुनः हस्तलिखित प्रति से मिलान करके इसे १९७५ में 'दयानन्दीय-लघु-ग्रन्थ-संग्रह' में प्रकाशित किया है।

सं० नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
१३२	कुरान की सूची १		१	
१३३	बाइबल की सूची १		१	
१३४	जैनियों की सूची १		१	
१३५ वेष्टन १७ **स्वामी**	ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका			
१३६ **जी कृत** और	ऋग्वेदभाष्य ३ अंक १+४८+५०+५१ तक		१	
१३७ **मुद्रित पुस्तकें**	यजुर्वेदभाष्य पुस्तक ३ अंक १+४८+५०+५१ तक		१	
१३८	सत्यार्थप्रकाश पुराने छापे का			
१३९	वेदाङ्गप्रकाश व्यवहारभानु	१		
१४०	तथा सन्धिविषय	१		
१४१	तथा नामिक	१		
१४२	तथा कारकीय	१		
१४३	तथा सामासिक	१		
१४४	तथा स्त्रैणतद्धित १	१		
१४५	तथा अव्ययार्थ	१		
१४६	तथा आख्यातिक	१		
१४७	तथा सौवर	१		
१४८	तथा पारिभाषिक	१		
१४९	तथा गणपाठ	१		
१५०	सन्ध्योपासनादि[1]	१		
१५१	पञ्चमहायज्ञविधि	१		
१५२	वेदान्तिध्वान्तनिवारण	१		
१५३	आर्योद्देश्यरत्नमाला	१	१	
	गोकरुणानिधि	१	१	
	भ्रमोच्छेदन	१	१	
	अनुभ्रमोच्छेदन	१	१	
	काशी शास्त्रार्थ	१	१	
	महेशचन्द्र न्यायरत्न के किये वेदभाष्य पर दोषों का उत्तर[2]	१	१	

१. यह सं० १९३१ की छपी पंचमहायज्ञविधि है।

२. अर्थात् 'भ्रान्तिनिवारण' नामक पुस्तक।

सं०	नाम वेष्टन	पुस्तक का नाम	अजमेर के संभाले के अनुसार	उदयपुर के संभाले के अनुसार	वृत्तान्त
	वेष्टन १८	श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य का अशुद्ध लेख[1] अर्थात् संस्कृत शोधकर भाषा बनाने का		१	प्रयाग भेजा
	वेष्टन १९	श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य का शुद्ध[2] लेख भाषा सहित छापने योग्य		१	तथा
	वेष्टन २० छोटा	श्री स्वामी जी कृत ऋग्वेदभाष्य भाषा सहित, इसकी शुद्ध प्रति लिखी जाकर वेष्टन संख्या १९ में रखनी चाहिये और इसी में संस्कारविधि के पत्रे हैं अर्थात् उनकी शुद्ध प्रति करके छपवानी होगी		१	तथा
	वेष्टन २१	ऋग्वेद यजुर्वेद सौवर पारिभाषिक उणादि कुछेक अष्टाध्यायी की संख्या और संस्कारविधि के रद्दी कागज		१	तथा
	वेष्टन २२	स्वामी जी कृत और मुद्रित विक्री पुस्तक की फैरिस्त		१	
	वेष्टन २३	मूल्य सहित जुदी है जिसमें हिसाब की बही ४ और नोटबुक २			
	वेष्टन २४	गोरक्षार्थ हस्ताक्षरी पत्र विना छाँटे बहुत गड़बड़[3]		१	

ह० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या
उपमन्त्री

(ख) श्री स्वामी जी महाराज की पुस्तकें जो वैदिक यन्त्रालय प्रयाग में हैं जिसकी फैरिस्त[4]

संख्या	नाम पुस्तक	संख्या पुस्तक	संख्या	नाम पुस्तक	संख्या पुस्तक
१	महाभारत सम्पूर्ण जिल्द ४ में	१	३	सामवेद संहिता ३७ जिल्द[5] में	१
२	तथा सूची जिल्द ४ में	१	४	शतपथ ब्राह्मण लिखा	१

१. 'अशुद्ध लेख' का अर्थ है पाण्डुलिपि (रफ कापी)। यही अर्थ आगे ही स्पष्ट कर दिया है। ऋषि दयानन्द कृत वेद भाष्य के मुद्रण से शेष भाग के विषय में श्री मोहन लाल विष्णु लाल पाण्ड्या के निर्देश से ब्रह्मचारी रामानन्द ने विवरण तैयार करके दिया था उसे हमने 'ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन' के तृतीय परिशिष्ट में पृष्ठ ९४०-९४२ पर छापा है। उस में भी 'अशुद्ध' शब्द का अभिप्राय रफ कापी से ही है।

२. 'शुद्ध' का अर्थ है—मुद्रणयोग्य प्रतिलिपि (प्रेस कापी)। यही अर्थ आगे स्पष्ट कर दिया है।

३. यदि ये पत्रे सुरक्षित रहते तो इनसे ऋ० द० के गोरक्षा संबन्धी महान् कार्यपर अद्भुत प्रकाश पड़ता। परोपकारिणी सभा को पुराने कागजों के ढेर में इन्हें ढुंढवाना चाहिए।

४. यह फैरिस्त आवेदन पत्र के पृष्ठ १७-१८ तक छपी है।

५. यहां जिल्द से अभिप्राय खण्ड का है। यह ऐशियाटिक सोसाइटी बंगाल से सौ सौ पृष्ठों के खण्डों में छपा था।

संख्या	नाम पुस्तक	संख्या पुस्तक	संख्या	नाम पुस्तक	संख्या पुस्तक
५	विक्रमोर्वशी नाटक	१	३५	गुरु तेगबहादुरसिंह का वृत्तान्त	१
६	रेखागणित भाग २	२	३६	ऐतरेय ब्राह्मण अंग्रेजी में हाग[कृत]	१
७	बीजगणित जिल्द १	१	३७	ऋग्वेदसंहिता अंग्रेजी में भाग ४	१
८	क्षेत्रमिति	१	३८	"	
९	पाटीगणित भाग ९	४	३९	सैक्रेट एन्थालोजी	१
१०	ऐतरेय ब्राह्मण	१	४०	वेदोक्तधर्मप्रकाश[3]	१
११	इङ्गलेण्डीय व्याकरण भाग २	२	४१	सर्वशास्त्र का सूचीपत्र	१
१२	भिक्षुक	१	४२	व्यामोहविद्रावण	१
१३	जातिभेद	१	४३	जागदीशी	१
१४	धातुरूपावली	१	४४	दीधिती जागदीशी की व्याख्या	१
१५	शब्दरूपावली	१	४५	विषयवाद	१
१६	गणपाठ	१	४६	मुक्तावली आदि	१
१७	वार्तिकपाठ	१	४७	न्यायपदार्थ तत्व	१
१८	परिभाषापाठ	१	४८	सुश्रुत भाग ३	३
१९	गुरुमुखी की पुस्तक	१	४९	चरकसंहिता खण्डित	१
२०	कविरहस्य	१	५०	गोभिलसूत्र	१
२१	सन्मार्गदर्शन	१	५१	प्रतिष्ठामयूख	१
२२	षड्दर्शनचिन्तनिका	२	५२	मेदिनीकोश	१
२३	बृहदारण्यक भाष्य	१	५३	वेदार्थयत्न अंक ७०	७०
२४	धमरक्षा	१	५४	सूचीपत्र	१
२५	मसीह इबन अल्लाह	१	५५	वेदमन्त्र सूचीपत्र	१
२६	दीनहक की इतफाल	१	५६	भाषाभा (१)	१
२७	रिसाले पादास इसलाम	१	५७	सिद्धान्त	१
२८	सत्यनिरूपण	१	५८	प्रकरणरत्नाकर भाग १ छपा	१
२९	तोफतुल इसलाम	१	५९	प्राकृत बालभाषा व्याकरण १छपा	१
३०	शलभसूत्र[1]	१	६०	पिण्डनिर्युक्तवृत्ति लिखी	
३१	बाइबल अंग्रेजी	१	६१	भगवतीसूत्रवृत्ति लिखी	१
३२	हैईलोज ग्रामर बड़ी	१	६२	आवश्यकनिर्युक्तिटीका छपी	१
३३	,, ,, छोटी	१	६३	संस्कृत बाइबल छपी	१
३४	मथुराप्रसाद की डिक्सनरी अंग्रेजी	१			

ह० मोहनलाल विष्णुलाल पण्डया
उपमन्त्री

१. सम्भवतः शुल्व सूत्र ? २. प्रतिलिपि करते समय नाम लिखना रह गया। यु० मी०

३. यह महाराष्ट्र के विष्णु बाबा ब्रह्मचारी कृत है। विष्णु बाबा ब्रह्मचारी ने यह ग्रन्थ पहले मराठी भाषा में प्रकाशित किया था। तत्पश्चात् उन्होंने स्वयं सन् १८६९ में इसे ब्रजभाषा में लिख कर छपवाया। उपरिमुद्रित ब्रजभाषा में मुद्रित ग्रन्थ है।

पं० गोपाल हरि देशमुख-लोक हितवादी-कृत

पं० स्वामी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती पर टिप्पणियां

सम्पादक--प्रा० कुशलदेव शंकरदेव वडवलकर

टि० संख्या पृष्ठ पं०

१ २३ २३ **यायावरीय जीवन—**

"स्वामी दयानन्द ने अपने मतव्यों के प्रचार के लिये रेल आदि वाहनों से की गई यात्राओं के अतिरिक्त लगभग १५ हजार किलोमीटर पैदल यात्रा की और करोड़ों लोगों को व्याख्यानों द्वारा अपना संदेश सुनाया"।

—आचार्य चतुरसेन शास्त्री, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, पृ० ४३४।

२ २३ २२ **शास्त्रार्थों के इतिहास—**

स्वामी जी ने १८६७ ई० से १८८२ तक लगभग ५४ [महत्त्वपूर्ण] शास्त्रार्थ किये।

—डा० भवानीलाल भारतीय, आर्य समाज के शास्त्रार्थ महारथी—पृ० ५-१४

३ २४ १ **आत्मकथा कथन—**

पुणें के अतिरिक्त अन्य किसी व्याख्यानमाला में स्वामी जी के आत्मकथा विषयक व्याख्यान का उल्लेख अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

४ २४ २ **पुणें—**

महाराष्ट्र शासन ने पुणें शब्द को ही मान्यता दी है। इसलिये हमने मूल नाम को वैसे ही रहने दिया है, उसके हिन्दी रूप 'पूना' के प्रयोग से प्रायः हम बचते रहें हैं। क्यों कि हमारा यह विचार है कि यथा संभव मूल नामों का अनुवाद (रूपांतर) नहीं होना चाहिये।

५ २४ २ **पुणें व्याख्यान माला—**

(क) पुणें नगर के बुधवार पेठ विभाग में, जोगेश्वरी मंदिर और वेद पाठशाला के मध्य में स्थित भिड़ेवाड़े की पहली मंजिल के दीवान खाना (हिन्दू क्लब) नामक ७०×२० 'फिट' के हॉल में स्वामी जी की यह पुणे व्याख्यान माला संपन्न हुई थी। इन सभी व्याख्यानों का प्रारम्भकाल, रात्रि ८ बजे का था। यहां पर स्वामी जी के निम्नांकित विषयों पर और निम्नलिखित तिथियों में पन्द्रह (१५) व्याख्यान हुये।

विषय	तिथि	विषय	तिथि
१ ईश्वरसिद्धि	४ जुलाई १८७५	८ इतिहास	२४ जुलाई १८७५
२ ईश्वरसिद्धि पर वाद-विवाद	६ जुलाई १८७५	९ इतिहास	२५ जुलाई १८७५
३ धर्माधर्म	८ जुलाई १८७५	१० इतिहास	२७ जुलाई १८७५
४ धर्मा-धर्म विषय पर शंका-समाधान	१० जुलाई १८७५	११ इतिहास	२९ जुलाई १८७५
		१२ इतिहास	३१ जुलाई १८७५
५ वेद	१३ जुलाई १८७५	१३ इतिहास	२ अगस्त १८७५
६ पुनर्जन्म	१७ जुलाई १८७५	१४ नित्यकर्म और मुक्ति	३ अगस्त १८७५
७ यज्ञ और संस्कार	२० जुलाई १८७५	१५ स्वयं कथित जीवन-चरित्र	४ अगस्त १८७५

(ख) इन व्याख्यानों के हर भाषणों की संक्षिप्त रपट उसी समय श्रीयुत महादेव मोरेश्वर कुंटे बी० ए० व श्री गणेश जनार्दन आगाशे ने मराठी भाषी जनता के लिये मराठी में प्रकाशित करवाई थी। जो आज पुणे-प्रवचन या उपदेश मंजरी के रूप में उपलब्ध हैं। इन उपर्युक्त १५ व्याख्यानों के अतिरिक्त स्वामी जी के अन्य तीन व्याख्यानों की भी सूचना मिलती है। 'भालेकरांचे कागद पत्र संक्षिप्त इतिहास' से इस बात की पुष्टि मिलती है कि—'स्वयं भालेकर जी ने स्वामी जी का एक व्याख्यान भांबुर्डा (पुणे शहर का वर्तमान शिवाजी नगर विभाग) में आयोजित किया था। इसी प्रकार न० र० फाटक लिखित 'न्याय मूर्ति रानडे यांचे चरित्र' पुस्तक से भी इस बात की पुष्टि हो जाती है कि पुणे शहर के तत्कालीन प्रतिष्ठित वकील व महादेव गोविंद रानडे के मित्र श्री गंगा राम भाउ म्हस्के जी ने छावनीस्थ अपने बंगले पर अंतिम दिनों में स्वामी जी को विदाई देने के लिये वक्ता के रूप में स्वामी जी को निमंत्रित किया था। ५ सितम्बर १८७५ को हाथी पर बिठा कर स्वामी जी का जूलूस निकाला था। जूलूस के बाद भिडेवाडे के दीवान खाने में आजोजित सभा में भी स्वामी जी ने भाषण दिया था, जो कि उन का पुणे नगर के लिये अन्तिम भाषण था। इन तीनों व्याख्यानों का विवरण अभी तक अप्राप्त है। पुणे के तत्कालीन पत्रों (दैनिक-मासिक-पाक्षिक समाचार-पत्रों के अंक) के प्राप्त होने पर इस विषय में और अधिक प्रकाश डाला जा सकेगा।

—प्रो० रत्नसिंह एम० ए०, भूमिका—उपदेश मंजरी पृ० ५,६।

—न० र० फाटक, न्यायमूर्ति रानडे यांचे चरित्र, पृ० २३२, ३३।

—य० दि० फडके, व्यक्ति आणि विचार पृ० ४६,५०।

—य० दि० फडके, लेख-शोध सत्य शोध-कांचा-मौज मासिक दिवाली अंक १९७८ (इसमें भालेकरांचे कागद पत्र संक्षिप्त इतिहास स्वामी जी विषयक उद्धरण उद्धृत किया गया है)।

—भिडे वाडे (दीवान खाने) के वर्तमान मालिक लक्ष्मण शंकर भिडे से मई १९८१ को हुई मेरी (कुशलदेव) वार्त्ता के आधार पर।

टि० संख्या पृष्ट पं०

६ २५ २२ **गुप्त षड्यंत्र—**

घटना स्थल (जोधपुर, आबू, अजमेर) से हजारों कोस की दूरी पर बैठे-गोपाल हरि देशमुख जी के (स्वामी जी को विष न दिये जाने कि वा गुप्त षड्यंत्र न होने के इस लिखित) तथ्यविरहित भावुकता पूर्ण और अनुमानित वक्तव्य को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता, क्यों कि घटना स्थल पर विद्यमान महानुभावों का मत लोकहितवादी जी से प्रतिकूल व विष दिये जाने की ऐतिहासिक तथ्य की साधार पुष्टि करता है। 'स्वामी दयानन्द जी अजात शत्रु' थे इसलिये उन्हें विष देने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता'। पं० गोपाल हरि देशमुख जी का इस प्रकार का तर्क बुद्धि पर आधारित न होकर अतिशय भावुकता पर आधारित है। समाज सुधार के कार्यक्षेत्र में पदार्पण करने के बाद प्रायः प्रत्येक व्यक्ति को विषपान-अमृतदान के पथ से ही गुजरना पड़ता है, फिर स्वामी दयानन्द जी तो सर्वांगीण सुधारक थे और उससे पूर्व उन्हें एक बार नहीं अनेक बार विष दिया जा चुका था।

स्वामी दयानन्द जी के निर्वाण का दुःखद समाचार पाकर शाहजहांपुर के समाचार-पत्र 'शुभचिंतक' ने जो श्रद्धाञ्जलि दी थी, उससे भी स्वामी को विष दिये जाने की पुष्टि मिलती है। शुभचिंतक में प्रकाशित समाचार निम्नांकित है—

"॥ ओ३म् ॥ छंद शिखरिणी
अहो अनरथ हुइगो, भारत हितैषी चलि बसो
प्रभाकरि जग को, श्रुति पथ-उधारक छिप गओ
सकल नर नग चलिगो, सतयुग प्रचारक उठि गयो
अहो हा हा हा हा, स्वामी हमारो चली गयो ॥१॥

......**सुनि ऐसी वार्त्ता प्रोहितन तिनको विष दियो।**
खुली तिनकी जड़ता कल्पित प्रथा दर्श होयगो।
लखी जीविका जाति दुर्मति अधर्मि करि गयो।
दियो विष हा हा हा स्वामी हमारो चली बसो ॥६॥"

—साभार-गोपालराव हरि शर्मा-श्रीमद्दयानन्द दिग्विजयार्क पृ० २०५।

विष—ऋषि मृत्यु का कारण—एतद्विषयक जानकारी पाठक निम्नांकित लेखों व पुस्तकों से भी भी प्राप्त कर सकेंगे—

१— स्वामी श्रद्धानन्द—क्या ऋषि दयानन्द को जहर दी गई थी ? प्रकाश (उर्दू साप्ताहिक) पृ० १२-१३, अंक ४ ज्येष्ठ संवत् १९८२।

२—स्वामी श्रद्धानन्द—क्या ऋषि दयानन्द को जहर दी गई थी ? अर्जुन (दिल्ली से निकलने वाला हिंदी दैनिक)—मई १९२५

३—रामविलास शारदा—स्वामी जी को जहर ही दिया गया था—प्रकाश (लाहौर से निकलने वाला उर्दू साप्ताहिक) अंक ११ ज्येष्ठ संवत् १९८२ वि०।

४—इन्द्र विद्यावाचस्पति—आर्य समाज का इतिहास [परिशिष्ट संख्या-४-ऋषि की मृत्यु कैसे हुई ?] प्रथम भाग—पृ० ३२०-३२४।

५—रामविलास शारदा—आर्यधर्मेंद्र जीवन

६—पं० गोपालराव हरि—श्रीमद्दयानन्द दिग्विजयार्क [अथ सप्तमो मयूख—अनिष्टोत्थान] पृ० १८६-१९२।

७—श्री ओमप्रकाश आर्य—ऋषि दयानन्द का विषपान एक निर्णीत तथ्य; परोपकारी—अगस्त-सितम्बर १९७९ पृ० १०-१४।

८—डा० भवानीलाल भारतीय अध्यक्ष दयानन्द पीठ पंजाब विश्वविद्यालय। विदेह गाथा में महर्षि का मृत्यु विषयक भ्रम पूर्ण उल्लेख—परोपकारी अक्तूबर १९७९ पृ० ६-८।

९—भैरव सिंह वर्मा आर्य—परोपकारी जून १९७९ में छपे श्रीमान् [लक्ष्मीदत्त] दीक्षित जी के मिथ्या कथन का प्रतिवाद [संपादक की डाक स्तंभ]—परोपकारी अक्टूबर ७९ पृ० २५-२७।

१०—प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु—महर्षि का विषपान अमर बलिदान। प्रकाशक—आर्य युवक समाज अबोहर प्रकाशन काल २०२९ वि०।

११—सं० शिवराजसिंह शास्त्री—विष ऋषि मृत्यु का कारण; प्रकाशक वैदिक परमार्थ आश्रम बम्बई, प्रकाशन काल १९७४ ई०।

एतद्विषयक (विष : ऋषि की मृत्यु का कारण) लेख स्वर्गीय प्रो० श्री राम शर्मा, श्री वी० के० सिंह, श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक आदि विद्वानों ने लिखे हैं, उन्हें भी अवश्य पढ़ लेना चाहिये, क्यों कि गवेषणा का कार्य अनवरत चलने वाला कार्य है।

टि० संख्या	पृष्ठ	पं०	
७	२६	१	**२९ अक्टूबर**—

२९ अक्टूबर के स्थान पर ३० अक्टूबर चाहिये। क्योंकि ग्रन्थकार द्वारा स्वयं निर्दिष्ट 'आश्विन वद्य ३०' (उत्तर भारतीय पञ्चाङ्गानुसार-कार्तिक बदि ३०) को अक्टूबर की ३० तारीख ही थी। पुनरपि इस ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि के लिये निम्न सम-सामयिक व्यक्ति व समाचार पत्रों के प्रमाण प्रस्तुत हैं—

(१) "ता० ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० अर्थात् कार्तिक कृष्णा ३० मंगलवार सं० १९४० वि० के दिन ठीक सूर्यास्त होने के समय यह अपर भानु [स्वामी दयानन्द] भी क्षणमात्र में अस्त हो गया और समस्त भूमंडल न जाने किस काल तक के लिये तिमिरावृत्त हो गया"।

—गोपाल हरि शर्मा-श्रीमद्दयानन्द दिग्विजयार्क पृ० १९३ प्रकाशक—आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली-६

(२) "हमको यह सुनकर बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० कार्त्तिक वदी ३०, संवत् १९४० को श्रीमान् दयानन्द सरस्वती जी महाराज वैकुंठ पधार गये"।

—भारत बन्धु [समाचार पत्र] अलीगढ़, तत्रैव-२०४।

(३) "फिर क्यों ऐ खुदा तूने हमको यह लख्त इस तरह बेसरो सामान और बेमान कर दिया। यानी हमारे सच्चे हावी और हादी को स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराज को जो हमें यह सब सिखाते थे ३० तारीख अक्टूबर के ६ बजे शाम को बुला लिया"।

—देशोपकारक [समाचार-पत्र लाहौर] तत्रैव पृ० २११।

"जिस वक्त यह खबर वहशत असर बजरिये तार बर्कों के इस समाज में आई कि उस फाजिल, अजल और आलिम बेमिसल फरवर मुल्क और मुहिब कौन यानी स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज ने ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० के शाम को ६ बजे इस जहान फानी ले रहिलात फरमाई जमाना आंखों में स्याह हो गया। और सर्माया होश वहवास यकलम तबाह"।

—आर्य समाचार मेरठ-तत्रैव पृ० २१४।

"संवत् उन्नीस सौ चालीस में बंश विक्रम के।
कार्त्तिक मास अमावस को दिवाकर छिपते॥
कर दिया कूच जमाने से श्री स्वामी ने।
आखिरी लब्ज यही आपके मुंह से निकले॥
ईश्वर इच्छा आपकी ही हो सदा पूरन।
बस यह कहते ही निकल जान गई छोड़ के तन॥

बदायूं समाचार-तत्रैव पृ० २२१।

टि० सं० पृष्ठ पं०

८ २६ २ **जयपुर नरेश—**

जयपुर शब्द के स्थान पर भिनाय शब्द का प्रयोग होना चाहिए, क्योंकि स्वामी जी जयपुर नरेश की कोठी में नहीं भिनाय नरेश की कोठी में ठहरे थे, और वहीं पर उनका निर्वाण हुआ था।

९ २६ १७ **हिंदू जाति के स्थान पर आर्य जाति का उल्लेख करने के लिये सरकार और समाज को प्रेरणा—**

स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने ३१ दिसम्बर १८८० ई० को मास्टर दयाराम जी को लिखे पत्र में जनगणना सम्बन्धी आदेश निम्न प्रकार दिया था—

"मास्टर दयाराम जी! ···आपने जो नकशा मर्दुम शुमारी का लिखा है सो उसकी खानापूरी इस प्रकार करो—

मजहब-फिरके मजहबी—वैदिक। असल कौम—आर्य।

जात या फिरका—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

गोत्र या शाखा—जो अपना गोत्र है जिस को अपना गोत्र याद न हो वह अपना काश्यप गोत्र या पाराशर लिखा दें और यह—सब समाजों तथा पंजाब भर में इसी प्रकार से लिख भेजें।

—ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, भाग १, पृष्ठ ४६० सं० २०३७। इस के अतिरिक्त विज्ञापनों और भाषण-संभाषणों में भी स्वामी जी ने इस संबन्ध में जन-जागरण करने का प्रयास किया **था**।

१० २६ २२-२३ **आर्यावर्त्त के वैदिक धर्मानुयायी आर्य थे, किन्तु उनके श्यामवर्ण के आधार पर मुसलमानों ने उन्हें हिन्दू कहा—**

'श्यामवर्ण के आधार पर मुसलमानों ने आर्यों को हिंदू कहा' लोकहितवादी जी ने स्वामी जी की यह जो भूमिका बतायी है, उसका स्वामी के ग्रंथों में कहीं भी प्रमाण नहीं मिलता है, यदि किसी को इस विषय में जानकारी हो तो सूचित करें।

११ २७ ९-१० **आर्यसमाज दक्षिण और उत्तर भारत…के…विस्तृत भू-भाग पर विद्यमान है और उनके वैदिक मतावलम्बी उन-उन समाजों में हजारों की संख्या में विद्यमान हैं।**

महर्षि दयानन्द सरस्वती एवं गोपाल हरिदेशमुख लोकहितवादी के काल में आर्यसमाजों व वैदिक मतावलंबियों की निश्चित संख्या का विवरण तो संप्रति प्राप्त नहीं है। यहां हम आर्यसमाज स्थापना शताब्दी वर्ष (१९७५) में आर्यसमाज की शाखाओं का संख्यात्मक विवरण प्रस्तुत करते है।

१ हिन्दुस्तान में लगभग ५२०० आर्यसमाज हैं।

२ पूर्वी अफ्रीका, दक्षिण अफ्रीका, मारीशस, फिजी, इंग्लैण्ड आदि देशों में लगभग ६०० आर्यसमाज मन्दिर हैं।

३ जर्मनी, सिरिया, अफगानिस्तान, अरब, अमरीका, ईरान, बगदाद, गुयाना, सिंगापुर, श्याम, कम्बोडिया, मलेशिया, हांगकांग आदि देशों में आर्यसमाज का कार्य चलता है।

४ प्रांतीय तथा जिला आर्य प्रतिनिधि सभाओं तथा उपसभाओं की संख्या लगभग २०० है।

—भगवान देव शर्मा आर्यसमाज का कार्यक्षेत्र-धर्मयुग ६ अप्रैल १९७५

१२ ३१ १ **श्रेष्ठ एवं सरल शैली में वेदार्थ देने का उदात्त कार्य—**

स्वामी दयानन्द ने ठीक ही वेदों को भारत के युगों की चट्टान समझकर पकड़ लिया और उसमें उन्होंने तारुण्य की समग्र शिक्षा, एक समग्र पुरुषत्व तथा एक समग्र राष्ट्रीयता का जो दर्शन किया, उसके ऊपर निर्णय करने का साहस दिखलाया…उनमें राष्ट्रीय भावना थी और उन्होंने उस भावना को एक आत्मानुभूति का रूप देकर उसे ज्योतिर्मय बना दिया।

—अरविंद घोष, बंकिम-तिलक-दयानन्द पृ० ४५।

स्वामी दयानन्द जी ने एक सर्वोपरि आत्मबल के साथ अपनी स्थितियों का निर्धारण किया,

अपने यन्त्रों को चुना और एक जन्मजात कर्मठ प्रबल अधिकार के साथ अपने संकल्प को पूरा किया।
—अरविंद घोष-तत्रैव-पृ० ४३।

स्वामी दयानन्द सत्य के योद्धा व आध्यात्मिक क्रियात्मकता की शक्ति संपन्न मूर्ति थे।
—अरविंद घोष-तत्रैव-पृ० ५०।

स्वामी दयानन्द के वेद विषयक दावे अतिरंजित न होकर न्यूनातिन्यून ही हैं।
—अरविंद घोष-तत्रैव-पृ० ३९८।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

१३ ३३ ६-७ **संस्कृत अध्ययन के विद्यालय और शिक्षण केन्द्रों की स्थापना होने लगी—**

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज दानापुर व आर्य समाज फर्रुखाबाद व कासगंज में संस्कृत पाठशाला स्थापित व सुव्यवस्थित ढंग से संचालित करने की अनेक पत्रों द्वारा प्रेरणा दी थी, उन पत्रों में से कुछ वचन यहां पर उद्धृत किये जा रहे हैं—

'मुझे यह सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई है कि आप आर्य-संस्कृत-पाठशाला का यत्न कर रहें हैं।' (द्र०—ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या १९२, भाग १, पृष्ठ २४९-२५०)।

'इस पाठशाला में अधिक करके संस्कृत की उन्नति पर ध्यान रहना चाहिये और इसमें केवल लड़के ही पढ़ते हैं अथवा हमारे रईस लोगों में से भी कोई पढ़ता है'। (द्र० ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ४५५, भाग २, पृष्ठ ५००, पं० १-३)।

आप लोगों की पाठशाला में आर्य भाषा संस्कृत का प्रचार बहुत कम और अन्य भाषा अर्थात् अंग्रेजी व उर्दू फारसी अधिक पढ़ाई जाती है। इससे वह अभीष्ट, जिसके लिये यह शाला खोली गई है, सिद्ध होता नहीं दीखता, वरन आपका हजारह मुद्रा का व्यय संस्कृत की ओर से निष्फल होता भासता है। आप लोग देखते हैं कि बहुत काल से आर्यावर्त्त में संस्कृत विद्या का अभाव हो रहा है, वरन् संस्कृत रूपी मातृभाषा की जगह अंग्रेजी लोगों की मातृभाषा हो चली है। हमारी अति प्राचीन मातृभाषा संस्कृत जिसका सहायक वर्तमान में कोई नहीं है'। (द्र० ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ४५७, भाग २, पृष्ठ ५०१)।

'तुम्हारी पाठशाला में अलिफ बे और कैट बैट का भर्मार है, जो कि आर्य समाजों को विशेष कर्त्तव्य नहीं है'। (द्र० ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ६५६, भाग २, पृष्ठ ६८३)।

'आर्यावर्त्त देश की स्वाभाविक सनातन विद्या संस्कृत ही है। उसी से देश का कल्याण होगा। अन्य भाषा से नहीं'। (द्र० ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन, पूर्ण संख्या ११, भाग १, पृष्ठ ४२, पं० २-५)।

[मैंने] फर्रुखाबाद, काशी आदि स्थानों में चार पाठशालायें आर्षविद्या सिखाने के लिये स्थापित की हैं—स्वामी दयानन्द का आत्म चरित पृ० ३६।

मुंबई में महर्षि दयानन्द द्वारा निर्मित आर्यसमाज के २८ नियमों में से ५ वां और १६ वां नियम तथा सुप्रसिद्ध आर्यसमाज के दस निममों से ३ नियम इस बात की पुष्टि करते हैं कि महर्षि ने आर्यभाषा से अधिक संस्कृत पर बल दिया था। क्यों कि संस्कृत ग्रन्थों के पठन-पाठन के सिवाय वेदादि सनातन आर्ष ग्रन्थों का पठन-पाठन हो ही नहीं सकता। ६ अप्रैल १९७५ के साप्ताहिक धर्मयुग में आर्यसमाज का कार्य क्षेत्र शीर्षक के अन्तर्गत भगवान् देव शर्मा द्वारा प्रदत्त विवरण के अनुसार संप्रति आर्यसमाज की ओर से लगभग ८० गुरुकुल तथा संस्कृत पाठशालाएं चलायी जाती हैं।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

१४ ३३ ३० **उन्होंने (=राजा राममोहन राय ने) वेदों के आधार पर एकेश्वरवाद की स्थापना की थी—**

यहां 'वेदों से' का तात्पय उपनिषदों से है, न कि मन्त्र संहिताओं से।

डा० भवानीलाल भारतीय के अनुसार—भारतीय समाज को रूढिवाद बनाने का एक उपाय यह भी था कि देशवासियों का ध्यान भारत के उस सुदूर अतीत की ओर खींचा जाये जो विकार रहित था...... [तदनुसार] भारत के नवजागरण के प्रथम ज्योतिर्धर राजा राममोहन राय ने उपनिषदों में व्याख्यात अध्यातम तत्त्व को अपने मनन और चिंतन का आधार बनाया [और उपनिषदों की ओर लौटने का संदेश दिया] तो आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द का तो बहु प्रचलित नारा ही 'वेदों की ओर लौटो था'।

इस उद्धरण को उधृत करने का यही तात्पर्य है कि राजा राममोहन राय ने अपने वाद की स्थापना में उपनिषदों का जितना आश्रय लिया, उतना वेदों का नहीं। क्योंकि उनकी दौड़ विशेष रूप से उपनिषदों तक ही सीमित थी।

१५ ३४ ५ **जनवरी सन् १९७७ में** दिल्ली में रानी विक्टोरिया के चक्रवर्तिनी पद से विभूषित करने का संदर्भ में......आयोजित समारोह में......स्वामी दयानन्द जी सरस्वती और बाबू केशवचन्द्र सेन...... को निमंत्रित किया गया था।

'भारतोय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास' के इतिहास लेखक पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति के अनुसार —'इस दरबार का आयोजन १ जनवरी १८७७ को किया गया था, जिसमें लार्ड लिटन ने यह घोषणा की कि रानी विक्टोरिया भारत की राज राजेश्वर हो गयी हैं'।

महर्षि दयानन्द प्रायः मेलों में जाकर अपने मंतव्यों का प्रचार करते थे। इस दरबार में जाने का भी उनका यही उद्देश्य था कि 'अनायास एकत्रित समाज को वैदिक धर्म के आधार पर एकता के सूत्र में संगठित कर दें, इसीलिये उन्होंने अन्य मतावलम्बियों के आचार्यों को एक मंच पर लाने का प्रयास किया था' महर्षि दयानन्द जी का तो दिल्ली दरबार में संमिलित होने का उद्देश्य स्पष्ट है, परन्तु अंग्रेज सरकार का स्वामीजी को इस दिल्ली दरबार में बुलाने का क्या उद्देश्य था— यह अभी अस्पष्ट है, आशा है आर्यसमाज व भारतीय इतिहास के अनुसंधाता इस विषय पर विशेष रूप से प्रकाश डालेंगे।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

१६ ३५ २४-२६ **स्वामीजी को अपमानित करने का निंदनीय कर्म किया जिसका उन्हें आंशिक रूप में प्रायश्चित्त भी भोगना पड़ा—**

इस पुणे प्रकरण का विवरण हम न० र० फाटक लिखित न्यायमूर्ति रानडे यांचे चरित्र (जिसकी प्रस्तावना रमाबाई रानडे ने लिखी है) से संक्षेप में हिन्दी में रूपांतरित कर यहां प्रस्तुत कर रहे हैं—

"स्वामी दयानन्द की वक्तृत्व शक्ति को अपने व्याख्यानों द्वारा निष्प्रभ करने के लिये महामहोपाध्याय राम शास्त्री आप्टे व रेवरंड नीलकंठ शास्त्री कटिबद्ध हुये थे [डा० भवानीलाल भारतीय के अनुसार—'जुलाई १८७४ में स्वामी जी प्रयाग पधारे थे, उस समय म्योर कालेज के संस्कृत प्रोफेसर पं० काशीनाथ शास्त्री, महाराष्ट्र के ईसाई पंडित नीलकण्ठ शास्त्री के साथ स्वामी जी के पास आये थे। इस अवसर पर नीलकण्ठ शास्त्री से स्वामीजी का वेदों में विशुद्ध एकेश्वरवाद की सत्ता पर विचार हुआ। स्वामी जी ने बाईबिल की विज्ञान विरूद्ध शिक्षाओं का भी खण्डन किया'—हमारा यह पूर्ण विश्वास है कि प्रयाग में १८७४ में स्वामीजी से विचार विमर्श करने वाले ही उपर्युक्त नीलकण्ठ शास्त्री हैं, क्योंकि वे महाराष्ट्रीय भी हैं, और ईसाई भी हैं—कुशलदेव] पर सारा शिक्षित समाज स्वामी दयानन्द की ओर आकृष्ट हो गया था। आप्टे-शास्त्री के सब प्रयत्न निरर्थक साबित हुये। पुणे के न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानडे व प्रतिष्ठित वकील श्रीयुत गंगाराम भाऊ म्हस्के ने स्वामीजी का हाथी पर जुलूस निकालने की योजना बनाई थी। स्वामीजी ने अपने जुलूस का विरोध करते हुए वेदों को अंबारी (हौदे) में रखकर जुलूस निकालने की सलाह दी थी, वैसा निश्चय भी हुआ पर विष्णु शास्त्री जी चिपलूणकर लिखित निबंधमाला से यह प्रतीत होता है कि स्वामी जी का जो जुलूस निकाला गया, उसमें वे हाथी पर विराजमान थे। जुलूस में लोगों के पास मशालें (व दिवटचा) थीं। वेद पालकी में और स्वामी जी हाथी पर इस प्रकार का भी एक जुलूस का वर्णन मिलता है। [महाराष्ट्र साहित्य परिषद् के इन्दौर अधिवेशन (सन् १९१७) के सभापति] गणेश जनार्दन आगाशे ने सन् १९०४ में आप बीती जग बीती-(स्मृति पर व्याख्यान) सुनाते हुये इस स्वामी दयानन्द जी के जुलूस विषयक एक तथ्य का रहस्योद्घाटन करते हुये कहा था कि—जुलूस निकलने से एक दिन पूर्व न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानडे ने मुझे कहा था कि—"समाज सुधार की ध्वजा के पीछे चलने के लिये कितने बहादुर पुणे में कटिबद्ध (सज्ज) हैं, इस जुलूस से वे बहादुर पूरी कसौटी पर कसे जायेंगे। सुधार-पक्ष इस कसौटी में उत्तीर्ण हुआ तो, प्रतिगामी समाज के शक्ति सामर्थ्य का अन्दाज आ सकेगा। आज तक कोई भी सुधार छल-प्रपंच की भट्टी से निकले बिना यशस्वी नहीं हुआ है। छल-प्रपंच व अपमान सहन करने की वेला भी आयी तो सुधारकों को सन्नद्ध रहना चाहिये। शोभा यात्रा(जुलूस) पर पत्थरों की या गन्दी नाली का कीचड़ भी फैंका जाये तो भी किसी प्रकार का ननु-नच न करते हुए वह सब चुपचाप सहन करने की मेरी तैयारी है। आप सभी मेरी तरह ही आचरण करें। यही आप सबसे मेरी प्रार्थना है"।

दूसरे दिन (५ सितंबर १८७५) शोभा यात्रा निकली। जब वह बुधवार पेठ के भिडेवाडे [भाषण स्थल] के पास आयी तो [ईर्ष्या द्वेष से पीड़ित व सुधार विरोधी पौराणिक विद्वानों द्वारा प्रेरित] सामने से गर्दभानन्द की सवारी अपने नेताओं के साथ गाते-बजाते आयी ···[स्वामी जी के भिडेवाडे में व्याख्यान वेदी पर पहुंच जाने के बाद] थोड़ी देर में गर्दभ स्वामी की शोभा यात्रा भिडेवाडे के पास आयी। जिससे स्वामी जी की शिष्य मण्डली स्वामी दयानन्द जी को सुरक्षित भिडवाडे में पहुंचाने का मौका पा गई। दयानन्द दीवान खाने में पहुंचकर अपने स्थान पर विराजमान हो गये। उनके इस अन्तिम भाषण को सुनने के लिये श्रोतृवर्ग दो-तीन घण्टे से प्रतीक्षा करते हुए बैठा था। राजमार्ग पर व आम जनता के बीच स्वामी जी व उनके अनुयायियों की उपहास करने व मजाक उड़ाने की प्रतिपक्षियों की आकांक्षा नाकामयाब हुई। जिससे वे अत्यन्त ही क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने गर्दभानन्द की जय लगाते हुए स्वामी दयानन्द जी के दीवानखाने में चल रहे भाषण को बन्द करने की असफल कोशिश की। स्वामी जी का एक शिष्य विपक्षियों की इस चाल को भांपते ही बेचैन और क्रुद्ध हो गया और उसने पुलिस की मदद लेकर गर्दभानन्द [नकली दयानन्द] की पीठ पर जोर से लाठियां बरसवाईं। (पाठीत सोंगडचाचे धपाटे घातले)। उस दिन बरसात के कारण रास्ते में कीचड़ ही कीचड़ हो गया था। भिडेवाडा का दीवान खाना [कार्यक्रम स्थल] रास्ते से सलंग्न दूसरी मंजिल पर था। अतः सुधार विरोधी पौराणिक विद्वानों द्वारा उत्तेजित भीड़ रास्ते से दीवान खाने की खुली खिड़कियों में से श्रोताओं पर कीचड़ के गोले बना-बना कर फेंकने लगे। लोगों ने खिड़कियां बन्द कीं, पर खिड़कियां [भिडेवाडे के वर्तमान मालिक लक्ष्मण शंकर भिडे ने मुझे अपनी एक भेंट वार्त्ता में बताया कि दीवान खाने में दोनों ओर से ५×३ फिट की खिड़कियां थी एक ओर की खिड़कियों से सड़क का दृश्य तो दूसरी ओर की खिड़कियों से १७०×२५ फुट के आंगन का दृश्य दिखलाई देता था—कुशलदेव] बन्द करने से पूर्व अनेक प्रतिष्ठित व समादरणीय मंडली को कीचड के गोलों का प्रसाद मिल गया था ···दूसरों को भड़का कर स्वयं पृथक् रहने वाले लोग गर्दभानन्द के जलूस से थोड़ी दूर पर खड़े होकर सब तमाशा देख रहे थे।···[इन सब प्रतिगामियों की अभद्र शरारत को देखकर 'शठे शाठ्यं समाचरेत्'—इस न्याय से] स्वामी जी की जय बोलने के स्थान पर उपद्रवियों के नाम ले-लेकर जोर-जोर से गालियां देनी (घसा फोडण्याला) आरम्भ की। यह शोर-शराबा (धुमाकूळ) रात के साढ़े नौ बजे तक चलता रहा। बीच में में यह अफवाह भी उठी थी कि स्वामी जी अपनी मित्र मंडली के साथ भिडेवाडे के पिछले दरवाजे से चुपचाप चले गये हैं (पसार झाले)। जिससे बहुत से लोग शिकार हाथ से निकल जाने की भावना से अपने-अपने घरों की ओर चले गये थे। बुधवार पेठ से कोतवाल चावड़ी तक का रास्ता अपने-अपने घरों की ओर लौटने वाले लोगों की भीड़ से खचाखच भरा था। दंगा होने का समाचार पाते ही शहर के न्यायधीश भिडेवाडे के पास आये और फिर स्वामी जी सुरक्षित अपने अगले स्थान (मुकाम) की ओर रवाना हो गये"।

माधवराव (न्याय मूर्ति महादेव गोविंद रानडे) जब अपने घर पहुंचे तो उनके पूरे शरीर पर कीचड के धब्बे दिखलाई दे रहे थे इस दगे में एक सिपाही (पुलिस) भयानक रूप से घायल हो गया, और शेष अन्य १४-१५ व्यक्ति (आसामी) भी पुलिस की लाठियों से घायल हो गये। गर्दभानंद का

जूलूस निकालने वाले (मीरविणारीतले) दोनों नेताओं को पुलिस ने गिरफ्तार कर दंडित किया। ये नेता कमिश्नर तहसील के सिपाही थे (कमिश्नर कचेरीतल पट्टीवाले होते) जो प्रत्यक्ष रूप से दोषी थे, क्योंकि अपराध उन्हीं के हाथ से हुआ था, पर इन नेताओं को भड़काने वाले असली नेता तो दूसरे ही थे। इन विघ्न संतोषी लोगों ने क्षमा याचना भी की'। [कै० ग. ज. आगाशे यांचे १९०४ सालांतले स्मृति पर व्याख्यान—पृ० ९] क्षमादान के समय उपस्थित बहुत से मित्रों ने न्यायमूर्ति महादेव रानडे के इस [क्षमादान] कृत्य का तीव्र विरोध किया। स्वामी दयानन्द जी का उपहास करने वाले पुणेवासियों के इस मूर्खतापूर्ण (गाजर पारखेपणा) कृत्य से सारा संसार सुपरिचित हो गया, परन्तु इस पुणे-प्रकरण से स्वामी दयानन्द की महत्ता में कोई आंच नहीं आयी। स्वामी दयनंद जी के प्रति जन-मानस में जो श्रद्धा थी उसका किञ्चिन्मात्र भी अवमूल्यन नहीं हुआ, अपितु उत्तर भारत में तो स्वामी दयानन्द का पुनजर्गारण आंदोलन (पंथ) एक देशोद्धार की प्रबल शक्ति का आंदोलन बन गया। ···यह घटना ५ सितम्बर १८७५ को घटित हुई'। (न० र० फाटक: न्यायमूर्ति रानड़े यांचे चरित्र—पृ० २३२—२३७ का सार-संक्षेप)।

'भाले करांचे कागद पत्र: संक्षिप्त इतिहास' से य० दि० फडके द्वारा 'व्यक्ति आणिविचार' पुस्तक में उद्धृत इस पुणे-प्रकरण से संबद्ध अंश नीचे दिया जा रहा है :-

"···भालेकर जी ने स्वामी जी का एक व्याख्यान भांबुर्डा (वर्तमान शिवाजी नगर विभाग—पुणे। में आयोजित किया था वे लिखते हैं—५ सितम्बर १८७५ को स्वामी जी के स्नेही भक्तों ने उन्हें गजेन्द्रारूढ कर जुलूस निकाला था, तब पुणे के सनातनियों (प्रतिगामियों) ने दंगा किया'। निबंध माला' के वक्तृत्व नामक निबंध की एक टिप्पणी में विष्णु शास्त्री चिपलूणकर ने अत्यन्त ही प्रसन्नता के साथ इस दंगे का वर्णन किया है और वह निबंध उनके लेखन की एक विशिष्ट शैली के नमूने के रूप में सुप्रसिद्ध है, [यह 'वक्तृत्व' निबन्ध लगभग १३ पृष्ठों का है, जिसमें बाबू केशवचंद्र सेन व बाबू प्रतापचन्द्र की वक्तृत्व कला पर केवल ३ पृष्ठों में प्रकाश डाला गया है, शेष १० पृष्ठ स्वामी दयानन्द जी की वक्तृत्व कला व उस समय सुधारविरोधी पौराणिकों द्वारा कराये गये दंगे से सम्बन्धित है] भालेकर जी ने भी गर्दभानन्द [नकली दयानन्द] के जुलूस (स्वामी दयानन्द के विरोधियों द्वारा निकाला गया प्रति जुलूस) का जो परिणाम हुआ उसका वर्णन निम्न प्रकार किया है:—

"उस गधे (गर्दभानन्द) के साथ माली परिवार के पट्टेवाले थे, और उग्र ब्राह्मणमण्डली थोड़ी दूरी पर अन्तर छोड़कर [जैसे हमारा इस जुलूस से कोई लगाव नहीं] चल रही थी, बाद में इस गधे (गर्दभानन्द) कांड के कारण कोर्ट में जब [मान हानि] की अपील हुई तब लोगों को भड-काने व प्रेरित करने वाले, लोगों से अप्रत्यक्ष रूप में दंगा कराने वाले उग्रपंथी ब्राह्मण निरपराधियों का स्वांग रचकर तटस्थ हो गये, विचारेब्राह्मणों से छू कहलाना और हमारे मराठों और मालियों को भौंकने और डसने में लगाना, उसी प्रकार गधों (गर्दभानन्द) के जुलूस में उन्हें अग्रणी होने के लिये मजबूर किया गया, उन पट्टेवाले सिपाहियों को जब फटाफट सजा हुई, तब उग्रब्राह्मण मंडली

अपने-अपने घरों में आराम से चैन की वंसी बजा रही थी।" (य० दि० फडके—व्यक्ति और विचार पृ० ४६-५०)।

टि० सं० पृष्ठ पं०

१७ ३६ ३० **प्राणघातक हमलों को सहन करने की अद्भुत क्षमता...... (दयानन्द) के व्यक्तित्व में कूट-कूट कर भरी हुई थी।**

स्वामी जी की हत्या के उद्देश्य के अनेक बार यत्न किये गये, पर हम यहां केवल ७ (सात) प्राणघातक आक्रमणों का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं:—

"वहां [रामगढ़ में] चक्रांकितों के दश आदमी मुझे मारने को आये, परन्तु उनसे बड़े संकट से बचा"।

—स्वामी दयानन्द का आत्मचरित्र—पृ० ३७।

"शास्त्रार्थों की बहुत धूम तो पुष्करराज में रही,......एक बार बहुत से पंडे लट्ठ लेकर स्वामीजी पर चढ़ आये, यों तो स्वामी जी अकेले पर्याप्त थे, परन्तु एक सहायक भी आ पहुंचा। ब्रह्माजी के मन्दिर के पुजारी मानपुरी जी मोटा डण्डा लेकर पहुंच गये और पंडों को भगा दिया"।

—इन्द्र विद्या वाचस्पति—आर्यसमाज का इतिहास—भाग १ पृ० ६२-६३।

"स्वामी जी ने [कर्णवास में बरेली के रईस राव कर्णसिंह की] धमकी के उत्तर में चक्रांकित संप्रदाय का बड़े बल से खंडन किया। ...कर्णसिंह की आँखे लाल हो गई, नथुने फड़कने लगे और हाथ तलवार की मूठ पर गया। कर्णसिंह का एक पहलवान आगे बढ़कर स्वामीजी पर हाथ डालने लगा। ब्रह्मचारी दयानन्द ने एक झटके से पहलवान को दूर फेंक दिया।......इतने में वहाँ उपस्थित जनता में से ठाकुर कृष्णसिंह आदि राजपूत लट्ठ लेकर खड़े हो गये और कर्णसिंह को ललकारने लगे। कायर कर्णसिंह अपने पहलवानों को लेकर वहां से चला गया।......इसके पीछे भी कर्णसिंह कई नीच उपायों से क्रोध शांत करने का यत्न करता रहा। स्वामी जी को मारने के लिये उसने बदमाश भेजे।"

—तत्रैव पृ० ७०।

"अनूपशहर में स्वामी जी लगभग चार मास तक रहे। पं० हीरावल्लभ और पं० टीकाराम मूर्तिपूजक थे, कई बार स्वामी जी से भिड़े भी, परन्तु अन्त को शिष्य बन गये और मूर्तियों को गंगा में प्रवाहित कर दिया। ...ब्राह्मण लोग नाराज हो गये और पराजित कायरों के हथियारों से कार्य लेना आरम्भ किया। स्वामी जी को एक ब्राह्मण ने पान में जहर दे दिया। स्वामी जी को पता चल गया और उन्होंने न्यौली कर्म द्वारा विष को शरीर से निकाल दिया।

—तत्रैव पृ० ७०-७१।

[मथुरा में] "पन्डों, गुंडों और चौवों के एक बड़े समूह ने स्वामीजी के निवास स्थान पर धावा बोल दिया। धावा करने वालों के हाथों में डंडे थे। इधर स्वामीजी का स्थान भी अरक्षित नहीं था, स्वामी जी के भक्त राजपूत सदा पहरे का प्रबन्ध रखते थे। गुंडा मण्डली स्वामी जी के द्वार को सुरक्षित देखकर आगे न बढ़ सकी"।

— तत्रैव पृ० ८७।

"एक वार [प्रयाग में] राय वहादुर पं० मुन्दरलाल ग्रादि सज्जन स्वामी जी के स्थान पर बैठे हुये थे। स्वामी जी मुस्कराते हुए उनके सम्मुख ग्राये ग्रौर उन लोगों से कहने लगे कि एक मनुष्य मेरी ग्रोर चला ग्राता है। उसके ग्राने पर ग्रापको एक कौतुक दिखाई देगा थोड़ी देर में एक ब्राह्मण मिठाई लिये ग्रा पहुंचा, ग्रौर सामने रख दी। स्वामीजी ने मिठाई का एक टुकड़ा उसे खाने को दिया, परन्तु उसने खाने से इंकार किया, उलटा कांपने लगा, तब सबने समझ लिया कि ग्रवश्य इस मिठाई में विष मिला हुग्रा है, मिठाई का एक टुकड़ा कुत्ते के ग्रागे फेंका गया, जिसे खाकर कुत्ता छटपटाने लगा ग्रौर शीघ्र ही मर गया। स्वामीजी ने ग्रपनी दयालुता के कारण उसे क्षमा कर दिया"

—तत्रैव पृ० ८८

"२३ ग्रक्टूबर १८७४ को [स्वामी जी] प्रयाग से बम्बई पहुंचे।......बम्बई में वल्लभ संप्रदाय का विशेष जोर है।......स्वामी जी ने जब बम्बई में उनके ग्राचरण देखे ग्रौर सुने तो उनके हृदय में बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुग्रा उन्होंने वलपूर्वक खण्डन ग्रारम्भ किया। ...वल्लभ संप्रदाय के ग्रनुयायियों में हलचल पैदा हो गयी। गोकुलिये गोसाइयों में जीवन जी गोसाईं बहुत प्रभावशाली था, उसने स्वामीजी के सेवकों को बहकाकर विष द्वारा धर्म की ग्रावाज शांत करने का यत्न किया, परन्तु स्वामी जी को रहस्य का पता चल गया, ग्रौर जीवन जी का कंटक दूर न हुग्रा। कुछ लोग स्वामी जी का पीछा करने लगे. वे छाया के समान पीछे रहने लगे। ताकि ग्रवसर पाकर कांटे को उखाड़ दें। स्वामी जी निर्भय थे, परन्तु ग्रसावधान नहीं थे।"

—तत्रैव पृ० ९१

टि० संख्या पृष्ठ पं०

१८ ३८ १ **संत तुकाराम का अभंग शैली में लिखा हुग्रा काव्य उन दुष्टों ने चन्द्रभागा नदी में डुबो दिया—**

संत तुकाराम के रूढि, वाह्याडम्बर, व पाखंड विरोधी काव्य से विक्षुब्ध होकर ईर्ष्यालु दुष्टों ने तुकाराम का ग्रभंग शैली में लिखा काव्य चन्द्रभागा नदी में डुबो दिया। यहां लोकहितवादी जी ने तुकाराम के काव्य को चन्द्रभागा नदी में डुबा देने की बात कही है, परन्तु लोक कथा के ग्रनुसार तुकाराम का यह काव्य, पुणे जनपद के, ग्राव्वंदीदेहू क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली इन्द्रायणी नदी में डुबाया गया।

१९ ३८ १८ **पं० विष्णु शास्त्री चिपलूणकर का निबंध माला में आक्षेपात्मक अनर्गल लेख—**

"निबंध मालाकार पं० विष्णु शास्त्री चिपलूणकर ने ग्रपने वक्तृत्त्व इस निबधात्मक लेख में स्वामी जी की ग्रतिशय ग्रालोचना की है, जो ग्रौचित्य रहित, लड़कपन से परिपूर्ण एवं गांभीर्य रहित है"।

—निर्मलकुमार फडकुले : 'लोकहितवादी : काल ग्राणि कर्तृत्व' पृ० २४३।

२० ४० ६ **सद् ग्रन्थों के लेखन व प्रकाशन का कार्य आरम्भ किया था—**

महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखित ग्रन्थों का विवरण परिशिष्ट दो में दिया गया है। एत-

द्विषयक विशेष प्रामाणिक ऐतिहासिक विवरण हेतु पं० युधिष्ठिर मीमांसक लिखित—'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' पढ़ें। सद्ग्रन्थों के प्रकाशन के लिये ऋषि दयानन्द ने एक प्रेस भी खरीदा था जिसका नाम उन्होंने वैदिक यंत्रालय (वैदिक प्रेस) रक्खा था। यह प्रेस अब भी परोपकारिणी सभा अजमेर में सक्रिय है। महर्षि दयानन्द ने अपने सर्वाधिकार इसी परोपकारिणी सभा को प्रदान किये थे और परोपकारिणी सभा का प्रथम कर्त्तव्य 'वेद-वेदांग वा सत्य शास्त्रों के… …छापने छपवाने' का बतलाया था।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

२१ ४१ १७ **एक कल्प पर्यन्त—**

यद्यपि एक कल्प से तात्पर्य, ब्रह्मा के एक दिन (ब्राह्म दिन) से है। एक हजार चतुर्युगियों या महायुगों को ब्राह्म दिन कहते हैं। परन्तु यहां जिस प्रसङ्ग में कल्प शब्द का प्रयोग किया है—यह ब्रह्मा की १०० वर्ष की आयु की दृष्टि से है। इतना ही मुक्ति काल है। द्र० ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, सृष्टिविद्याविषय अन्तर्गत पुरुषाध्याय के १६ मन्त्र को व्याख्या में—न तस्माद् ब्रह्मणः शतवर्षसंख्याकात् कालात् कदाचित् पुनरावर्तन्त इति। १००० चतुर्युगियों का ब्राह्म दिन और इतने ही काल की ब्राह्म-रात्रि होती है। ऐसे ३६० अहोरात्र का एक वर्ष ऐसे १०० वर्षों की ब्रह्मा की आयु। इस में ३६ हजार वार सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय होता है इतना मुक्ति का काल है। द्र०—सत्यार्थप्रकाश नवम समुल्लास।

२२ ४२ ३२ **आर्य व आर्यपत्रिका नामक अंग्रेजी व हिन्दी भाषाओं में मासिक पत्रिकाओं का प्रकाशन क्रमशः लाहौर और प्रयाग में प्रारम्भ किया—**

(क) **द आर्य मेगजीन** (The Arya Magazine)—लाहौर "आर्यसमाज का प्रथम अंग्रेजी मासिक पत्र, 'दि आर्य' स्वामी दयानन्द के जीवन काल में ही प्रकाशित होना आरम्भ हो गया था। पत्र का प्रथम अंक १ मार्च १८८२ को श्री रतनचन्द बेरी के सम्पादन में सैदमिट्ठा (शहद मिट्ठा) बाजार लाहौर से निकला…ऋषि के जीवनकाल में उनके ऋग्वेद भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद इस पत्र में प्रकाशित होता था। [इस आर्यपत्रिका की 'फाइल' से पता चलता है कि] आर्यसमाज ने अपनी शिक्षा विषयक महत्त्वपूर्ण योजना स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में ही आरम्भ कर दी थी। इस बात का पता इसी तथ्य से लगता है कि आर्यसमाज लाहौर ने उसी समय एक पाठशाला प्रौढ़ों के लिये चालू की थी, जिसमें हिंदी एवं संस्कृत का शिक्षण होता था। इसी अंक में उक्त आर्यसमाज द्वारा एक कन्या विद्यालय स्थापित करने का भी समाचार प्रकाशित हुआ है। १८८२ में जब नारी शिक्षण स्वप्न ही था। आर्यसमाज द्वारा कन्या पाठशाला की स्थापना एक शुभारम्भ ही माना जायेगा। [इन आर्य पत्रों के अंकों में आर्यसमाज के विस्तार व स्वामी दयानन्द जी की गतिविधियों के अतिरिक्त] नवम्बर १८८३ के अंक में ऋषि दयानन्द के परलोक गमन का समाचार काला बार्डर देकर छापा गया है। दिसम्बर १८८३ के अंक में स्वामी जी के निधन के पश्चात् उनकी स्मृति को स्थायी बनाने हेतु लाहौर में डी० ए० वी० कालेज की स्थापना करने तथा तद्विषयक किये जाने

प्रयत्नों का उल्लेख मिलता है। इसी अंक में कालेज के लिये प्रदत्त दान की सूची भी छपी है" [यह शोक का विषय है कि - स्वामी दयानन्द जी सरस्वती का स्मारक व भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, आजाद आदि क्रांतिकारियों की गौरव-गाथाओं से मंडित यह डी० ए० वी० कालेज लाहौर, देश विभाजन के बाद संप्रति इस्लामिया कालेज के नाम से संबोधित होता है इसके पास ही, लाल अक्षरों में लिखा डी० ए० बी० कालेज का नाम आज भी स्पष्ट रूप में दिखलायी देता है। इस कालेज का शुभारम्भ १ जून सन् १८८६ को हुआ था। "पत्र का वार्षिक मूल्य स्वदेश में ४ रुपये तथा विदेशों में १० शिलिंग था"। उन्नीसवीं शताब्दी के आर्यसमाजी अंग्रेजी पत्र कथ्य और प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से जितने समृद्ध थे। उतने इस शताब्दी के पत्र नहीं है"।

—डा० भवानी लाल भारतीय–आर्यसमाज के पत्र और पत्रकार पृ० १३१-१३५।

(ख) इस काल में प्रयाग से प्रकाशित होने वाली किसी 'आर्यपत्रिका' का उल्लेख नहीं मिलता है। पं० भीमसेन शर्मा सम्पादित 'आर्य सिद्धान्त' प्रयाग से प्रकाशित होता था, परन्तु उसका आरम्भ सं० १९४२ (=सन् १८८५) में हुआ था।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

२३ ४४ १० **स्वामी जी व अनेक राजाओं का [परस्पर] गुरु-शिष्यवत् संबन्ध था—**

स्वामी जी सत्य धर्म व स्वदेशोन्नति चाहनेवाले धर्मोपदेशक थे। यथा राजा तथा प्रजा को दृष्टि में रख कर स्वामी दयानन्द जी ने राजाओं का सुधार कर राजभक्त प्रजा को सुधारने का प्रयास किया था। इसी हेतु स्वामीजी ने राजाओं के लिये एक निश्चित दिनचर्या भी बनाई थी। प्रजा का सुधार और बिगाड़ वे अधिकतम राजाओं पर ही निर्भर मानते थे, इसलिये वे उनकी दिनचर्या सुधारकर अपने समस्त आर्यावर्त्त देश का कल्याण करना चाहते थे। इसलिये उन्होंने उपदेश, विशेष नियम, रहस्य नियम, गुप्त-समाचार, औषधि-पत्रादि से राजाओं को स्वस्थ, निरोगी, पुष्ट, बलिष्ठ व्यसनमुक्त व चारित्रिक तेज से संपन्न बनाने की अन्तःकरण पूर्वक कोशिश की थी। वेद, व्याकरण, मनुस्मृति (सप्तम, अष्टम, नवम-अध्याय), षड्दर्शन (के मुख्य विषय), महाभारत (राजधर्म व आपद्धर्म प्रकरण), विदुर-प्रजागर (विदुर-नीति), आदि सत् शास्त्रों के अध्ययन की वे समय-समय पर राजाओं को प्रेरणा देते थे। अनेक राजाओं ने तो स्वामीजी के श्री चरणों में बैठकर नियमित दो-दो, तीन-तीन घंटे इन शास्त्रों का अध्ययन किया था। गुरुदेव दयानंद जी से निम्नांकित राजाओं का शिष्यवत् हार्दिक संबंध था—

१—महाराणा सज्जनसिंह उदयपुर, २—रावराजा तेजसिंह-जोधपुर, ३—नाहरसिंह जी महाराजाधिराज-शाहपुर, ४—प्रतापसिंह जी महाराजा-जोधपुर, ५—महाराज य (ज) शवंतसिंह जी राठौर-जोधपुर, ६—महाराज राजराणा जालमसिंह जी-झालावाड़, ७—महाराजा कश्मीर ८—डी० रे० ए० राजा पाकसा-मदुरा (लंका), ९—तूको जी राव महाराजा-इंदौर, १०—राव युधिष्ठिरसिंह जी रिवाड़ी (हरियाणा), ११—राव बहादुरसिंह जो राव-मसूदा। महर्षि व इन राजाओं में परस्पर हुये

पत्र चार के विशेष अध्ययन के लिये-रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित ऋषि दयानंद सरस्वती के पत्र और विज्ञापन (भाग-१,२,३) ग्रंथ की सहायता लें।

ऋषि दयानंद सरस्वती एवं नरेशों के आपसी प -व्यवहार से पता चलता है कि ऋषि दयानंद जी जब एक स्थान से दूसरे स्थान के लिये प्रस्थान करते थे, तब उनके साथ-तीन रथ या एक बैलगाड़ी, एक सरकारी रथ, व एक सरकारी तांगा, एक सैजगाडी, दो ऊंट, एक हाथी (या हाथी के स्थान पर रथ), छः या आठ जवानों (सिपाहियों) का पहरा, पुस्तकादि भार के लिये एक सवारी (बैलगाडी अथवा रथ आदि)और दो सवार, एक मशालची,तथा यदि साथ रहे तो, दस-बारह व्यक्ति स्वामी जी के सहयोगी किंवा सहयात्री के रूप में रहते थे। रथ, बैलगाडी, तांगा, ऊंट, हाथी आदि सवारी का सब प्रबंध स्वामी जी के लिए नरेशों की ओर से ही हुआ करता था—अनुवादक

टि० संख्या पृष्ट पं०

२४ ४४ १८-१९ **उस राज परिवार के सभी लोगों ने अपने कुलीन वैष्णवाचार्य को निमंत्रित कर उससे अपने शरीर तप्त मुद्राओं से मुद्रित (अंकित) करा लिये—**

यहां लोक हितवादी ने किस राज परिवार की ओर यह संकेत किया है, हमें ज्ञात नहीं। इस विषय का अनुसंधान होना चाहिये।

२५ ४७ २० **वर्तमान काल में [स्वामी जी के मुम्बई-पुणे आगमन काल में—**

(क) मुंबई आगमन काल (पहली बार):—मुंबई वासियों का निमंत्रण पाकर स्वामी दयानन्द जी प्रयाग से जबलपुर, नासिक होते हुए आश्विन सुदी १२ सं० १९३१ (२२ अक्तूबर १८७४) को मुंबई पहुंचे। पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक के अनुसार—"इस बार महर्षि बम्बई में कार्तिक कृष्णा (प्रतिपदा) १ से मार्गशीर्ष कृष्णा-८ संवत् १९३१ तदनुसार २६ अक्टूबर से १ दिसम्बर सन् १८७४ तक ठहरे थे। (दयानन्दीय लघु ग्रन्थ संग्रह-पृ० ६८) मुनिवर्य मेधाव्रत जी के अनुसार-ता० २६ अक्टूबर सन् १८७४ संवत् १९३१ आश्विन में स्वामी जी बम्बई पहुंचे और १-१२-१८७४ को बम्बई से सूरत गये (दयानन्द दिग्विजय-पृ० १५८-१६४)। (स्वामी सत्यानन्द सरस्वती—श्री मद्दयानन्द प्रकाश पृ० १८३) इन्द्र विद्यावाचस्पति-आर्यसमाज का इतिहास-पृ० ९१)।

(ख) बम्बई आगमन काल (दूसरी बार)—स्वामी दयानन्द जी द्वारा लाला हरिवंशलाल को अहमदाबाद से प्रेषित पत्र के निम्नांकित परिच्छेद से यह अनुमान किया जा सकता है कि स्वामी जी २९ जनवरी १८७५ के लगभग (दूसरी बार मुंबई पहुंचे होंगे। सम्बन्धित परिच्छेद निम्न प्रकार हैं।

"पौष सुदि ११ संवत् १९३१ सोमवार (१८ जनवरी १८७५) को राजकोट से अहमदाबाद आके पांच-सात दिन रहेंगे, फिर मुम्बई की तरफ जायेंगे" (ऋषि० द० स० पत्र और विज्ञापन-पृ० ४९ [१८ जनवरी १८७५ से पूर्व भी एक बार "महर्षि अहमदाबाद में मार्गशीर्ष सुदि-३ से पौष बदी ५ संवत् १९३१, तदनुसार ११ दिसंबर से २८ दिसंबर सन् १८७४ तक रहे थे (दयानंदीय लघु ग्रंथ संग्रह-पृ० ७४)

(ग) मुम्बई आगमन-काल(तीसरी बार)मुंबई में चैत्र शुद्ध ५ शनिवार[सं १९३२: १० अप्रैल १८७५] के दिन संध्या के साढ़े पांच बजे'(ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन-पृ० ५५) 'आर्यसमाज स्थापित करके स्वामी दयानंद जी महाराज अहमदाबाद चले गये और वहां से लौटते हुये बड़ौदा में ठहरे। 'उधर मुंबई नगर में पौराणिक पंडितों ने बड़ा उधम मचा रखा था। वे आर्यसमाजियों को शास्त्रार्थ करने के लिये बार-बार विवश कर रहे थे' (श्री मद्दयानंद प्रकाश-पृ० १९८ व २०१)। बड़ौदा से स्वामी जी को पं० कमल से शास्त्रार्थ करने के लिये फिर(तीसरी बार) बंबई जाना पड़ा। 'फ्राम जी कावस जी इन्स्टीटयूट' में १२ जून सन् १८७५, ज्येष्ठ सुदी ९, संवत् १९३२ शनिवार को स्वामी दयानंद सरस्वती क पं० कमल-नयन आचार्य के साथ मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ (ऋषि० द० के पत्र और विज्ञापन-पृ० ५९) आयोजित किया गया था, परंतु अनावश्यक वाद-विवाद के अनंतर कमलनयनाचार्य सभा स्थल से उठकर चले गये। पुन: [शास्त्रार्थ के लिये आयोजित] उसी स्थान पर स्वामी जी का मूर्तिपूजा के खंडन पर व्याख्यान हुआ। (डा० भवानीलाल भारतीय आर्यसमाज के शास्त्रार्थ महारथी-पृ० ११) स्वामी जी इस नियत शास्त्रार्थ दिवस(१२ जून १८७५)से लगभग तीन सप्ताह पूर्व मुंबई पहुंच चुके थे क्योंकि संवत् १९३२ मिति चैत्र [ज्येष्ठ के स्थान में चैत्र भूल से लिखा गया है] वद्य ९ शनिवार अर्थात् २९ मई १८७५ को बंबई से श्री गोपाल राव हरि देशमुख आदि को स्वामी जी द्वारा प्रेषित पत्र इस बात का साक्षी है कि स्वामी जी २९ मई १८७५ को बंबई में थे। संभव है इस तिथि से दो-तीन दिन पूर्व भी आयें हों।

—द्रष्टव्य: संपादक: श्री पं० भगवद्दत्त बी० ए०, परिष्कर्त्ता एवं परिवर्धक: श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसक—ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन-पृ० ५७-५८

(घ) पुणे-आगमन काल [प्रथम बार] २९ मई १८७५ को स्वामी जी द्वारा बंबई से श्रीयुत गोपालराव हरि देशमुख आदि को प्रेषित पत्र से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि स्वामी जी सं० १९३२ के आषाढ मास के प्रथम चरण में पुणे पहुंच चुके थे। देशमुख जी को प्रेषित पत्र में स्वामी जी ने लिखा है कि—

"ज्येष्ठ वद्य १५ [यहां १५ के स्थान में ३० चाहिये। १५ संकेत पूर्णिमा का होता है] के पूर्व व पश्चात् पूना को हमारा जाने का विचार है। सो जिसको लिखने का योग्य होय, उसको आप लिखना" (-ऋषि० द० स० के पत्र और विज्ञापन-पृ० ५८)

"श्रीयुत महादेव गोविंद रानडे...की प्रार्थना को स्वीकार करके महाराज ने अषाढ वदी १३ सं० १९३२ को पूना नगरी में पदार्पण किया"—(स्वामी सत्यानन्द-श्रीमद्दयानंद प्रकाश-पृ० २०३)

"१८७५ ई० के जुलाई मास के आरंभ में प्रसिद्ध सुधारक श्रीयुत महादेव गोविंद रानडे के निमंत्रण पर स्वामी जी पूना गए"।

—इंद्र विद्यावाचस्पतिः आर्यसमाज का इतिहास। भाग-१-पृ० १७

स्वामीजो पर, मृत्युपर्यंत आक्षेप करनेवाले निबंधमालाकार विष्णु शास्त्री चिपलूणकर[विष्णु

कृष्ण चिपलूनकर] ने अपने निबंधमाला [अंक-२३, नवंबर १८७५] मासिक के वक्तृत्व इस निबंध में स्वामी जी के पुणे निवास काल के संबंध में संकेत करते हुये लिखा है कि—

"या [पुणे] शहरात महिना दोन महिने सारखे गाजून केवल अजेयत्वानें जे चोहोंकडे मिरवत होते" ।

अर्थात्-इस पुणे शहर में अनवरत दो मास तक यशस्वी होकर अजेय योद्धा के समान वे सर्वत्र शोभा पा रहे थे । सभी ओर उन्हीं की चर्चा और स्तुति हो रही थी ।

विष्णु शास्त्री चिपलूणकर के इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि–'स्वामी जी का पूरे दो महिने पुणे में निवास था' । न० र० फाटक लिखित, १ मार्च १९२४ को प्रकाशित 'न्यायमूर्ति रानडे यांचे चरित्र' से भी इस तथ्य को पुष्टि होती है कि 'स्वामी जी का पूरे दो महिने पूना में निवास था' । न्यायमूर्ति रानडे के इस जीवन चरित्र में न० र० फाटक लिखते है कि:—'पुण्यांत स्वामी चा दो महिने तक होता' । अर्थात्- स्वामी जी पूरे दो महिने तक पुणे में अपना डेरा डाले हुये थे' । (इन दो महिनों में कोई भी पौराणिक पंडित, अंगद पैर के समान [सनातनियों के गढ व महाराष्ट्र केंद्र पुणे में] दृढ स्वामी दयानंद जी के आसन को विचलित नहीं कर सका) ।

शिवरात्रि संवत् २०३२ में, जन ज्ञान प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उपदेश मंजरी (पूना-प्रवचन) की प्रो० रत्नसिंह एम० ए० द्वारा लिखित भूमिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि-पूना में महर्षि के सुप्रसिद्ध 'पुणे-प्रवचन' ४ जुलाई सन् १८७५ से ४ अगस्त १८७५ तक (अर्थात् पूरे एक महीने के भीतर) संपन्न हुये । तदनंतर 'स्वामी जी एक महीने और पूना में रहे–इस तथ्य की पुष्टि विष्णु शास्त्री चिपलूणकर लिखित वक्तृत्व निबंध से, न० र० फाटक लिखित, "न्यायमूर्ति रानडे यांचे चरित्र से" स्वामी जी का पुणे के भांबुर्डा (शिवाजी नगर) विभाग में एक व्याख्यान आयोजित करनेवाले श्रीयुत भालेकर जी के–'भालेकरांचे कागद पत्र: संक्षिप्त इतिहास' से, व महाकवि मेधाव्रत कृत-दयानंद दिग्विजय महाकाव्य से होती है, इन सभी का यह मत है कि 'स्वामी जी जब पुणे से अन्यत्र जाने के लिये उत्सुक हुये तो रविवार ५ सितंबर १८७५ को उनकी शोभा यात्रा निकाली गई । महाकवि मेधाव्रत जी अपने महाकाव्य में लिखते हैं—'संतरत्न [महर्षि दयानंद] जब पूने से शिवराज (शिवाजी महाराज) की राजधानी 'सतारा' को जाने के लिये उत्सुक हुये, तब श्रेष्ठ सभ्यों ने संसार हितकारी योगीश्वर [दयानंद] की शोभा यात्रा ता० ५ सितंबर [१८७५] रविवार को समारोह पूर्वक निकालने का निश्चय किया । न० र० फाटक लिखित [न्यायमूर्ति रानडे के जीवन चरित्र में] शोभा यात्रा के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि ५ सितंबर १८७५ को रात के दस बजे तक तो स्वामी जी पुणे में ही थे । संभव है ५ सितंबर की रात या ६ सितंबर की प्रातः ट्रेन से स्वामी जी पुणे से सतारा की ओर रवाना हो गये होंगे ।

इस सब विवरण के आधार पर हम यह अनुमान लगाते हैं कि—स्वामी जी का पुण आगमन काल १ जुलाई १८७५ रहा होगा (क्योंकि ४ जुलाई १८७५ को पूने में उनके व्याख्यान प्रारंभ हो गये थे) और पुणे से (सतारा की ओर) प्रस्थान काल ६ सितंबर १८७५ को रहा होगा । (क्योंकि

रविवार ५ सितंबर १८७५ को रात के लगभग १० तो शोभायात्रा विदाई स्वागत समारोह में ही बज चुके थे) ।

सतारा:आगमन-काल

पुणे से मंगलवार-११ अगस्त १८७५ को श्रीयुत गोपालराव हरि देशमुख को लिखित पत्र में स्वामी जी लिखते हैं:—

"आगे हम यहाँ (पूना) से सतारे को जानेवाले हैं दो एक दिन में अथवा बड़ौदे की ओर आने वाले हैं। **सो जब यहां से वा सतारे को जाके मुम्बई की ओर चलेंगे** तब एक आद दिन दादरे के रेलघ[र] पर ठहर के उधर आने का विचार है, सो दादरे से आपके पास तार द्वारा खबर देने में आवेगी। फेर जैसी आप खबर देंगे कि प्रथम बड़ौदे को ही आना किंवा सूरत और भरूच को होके बड़ौदे को आना, वैसा किया जायेगा"।

इस पत्र से स्पष्ट है कि स्वामी जी का, ११ अगस्त १८७५ को, दो-एक दिन में, पुणे से सतारा जाने का दृढ निश्चय नहीं था, क्योंकि वे यह निश्चय नहीं कर पाये थे कि 'पुणे से सीधा मुंबई जायें या सतारा से मुंबई जायें किंवा सतारा होकर पुणे से मुंबई जायें'। पत्रानुसार दो-एक दिन में तो स्वामी जी सतारा नहीं गये। हां पुणे से २४-२५ दिन और बीत जाने के बाद रविवार ५ सितंबर १८७५ की रात को वे वाष्पयान (ट्रेन) द्वारा सतारा की ओर रवाना हुये।

पुण: आगमनकाल (द्वितीय बार)

स्वामी जी द्वारा पुणे (या बम्बई) से १६ अक्टूबर १८७५ को श्रीयुत गोपालराव देशमुख को लिखित पत्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वामी जी सतारा से पुणे नगरी में आये थे. और इस द्वितीय यात्रा में ही विधिवत् पुणे आर्यसमाज की स्थापना के साथ-साथ ही निर्वाचन भी हुआ था— सम्बन्धित पत्रांश निम्न प्रकार है—

"...पूना और सतारा का वर्त्तमान, वर्त्तमान पत्रों से सुन लिया होगा, एक नवीन बात यह है कि पूना में आर्यसमाज स्थापन हो गया है, आगे [पीछे] आर्यसमाज स्थापनार्थ दो सभा पूना में हुई थी, सो तो समाचार पत्रों से जाना होगा। परन्तु हम सतारे से आये तब यह निश्चित हुआ कि महादेव गोविंद रानडे प्रधान, केशवराव गोडबोले मन्त्री। जितने प्रार्थना-समाज के सभासद् थे वे सब और अन्य बाबा गोकुले तथा काशीनाथ गाडगील एवं गंगाराम भाऊ आदि लस्करस्थ (छावनीस्थ) ६० वा ७० सभासद् हुये हैं, और अन्य भी बहुत होने वाले हैं"।

—ऋषि० दयानन्द के पत्र और विज्ञापन पृ० ६०-६१ दयानन्द दिग्विजय महाकाव्य के रचयिता मुनिवर्य मेधाव्रताचार्य जी के अनुसार—'स्वामीजी' सतारा की जनता को उपदेश देकर शीघ्र ही...ता० २३-१०-१८७५ को पूना लौट आये', पूने से......पुनः मुम्बई पधारे........मुम्बई में २०-१०-१८७५ को पूज्यपाद (स्वामी दयानन्द जी) का 'आर्यों का नए वर्ष का प्रथम दिवस' विषय पर एक व्याख्यान हुआ"। (दयानन्द दिग्विजय—पृ० १८३-१८४)

यहाँ मेधाव्रत जी ने [किंबा: संस्कृत महाकाव्य दयानन्द दिग्विजय के हिन्दी अनुवादक :

आर्यरत्न पं० श्री सत्यव्रत तीर्थ जी ने] स्वामीजी का यात्राक्रम तो सतारा से पुणे और पुणे से मुम्बई बताया है, पर भूल से मुम्बई में सम्पन्न व्याख्यान की तिथि पुणे आगमन से भी पूर्व [सतारा निवास काल] की दी है, उसमें असावधानी से कुछ गलती हो गई है, सम्भव है लेखन या मुद्रण-दोष के कारण दि १३ के स्थान पर २३ हो गया हो, क्योंकि २० अक्टूबर को स्वामी दयानन्द जी महाराज के मुम्बई में उपस्थित होने के बाद पुनः २३ को पुणे में उपस्थित रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः हमारा यह अनुमान है कि—स्वामी दयानन्द जी सतारा से चलकर १३–१०–१८७५ को (या उस से भी पूर्व) लौट आए थे। पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक के अनुसार भी "श्री स्वामी जी महाराज १६ अक्टूबर से पूर्व ही सतारा से [पूना] लौट आये थे, अतः २३ अक्टूबर को सतारा से पूना लौटना निश्चय ही अशुद्ध है" सं० युधिष्ठिर मीमांसक ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन —पृ० ६२).

मुम्बई : आगमन-काल' (चौथी-बार)

"भाद्रपद सुदी २ सम्वत् १९३२ को स्वामी जी पूना से लौटकर मुम्बई में शोभित हुये।"

—स्वामी दयानन्द सरस्वती, श्री मद्दयानन्द प्रकाश—पृ० २०२

स्वामीजी द्वारा १६ अक्टूबर १८७५ को श्रीयुत गोपालराव देशमुख को प्रेषित पत्र के आधार पर युधिष्ठिर जी मीमांसक ने यह मत व्यक्त किया है कि—

"यदि यह पत्र बम्बई से लिखा गया हो तो स्वामीजी १६ अक्टूबर से पूर्व ही बम्बई पहुँच गये होंगे"।

—ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन—पृ० ६२

उपर्युक्त सम-सामयिक पत्रों, लेखों व महर्षि के विभिन्न जीवन चरित्रों के आधार पर वर्तमान काल [अर्थात् स्वामीजी के मुम्बई, पुणे, सतारा, पुणे, मुम्बई, आगमन काल] को हम निम्न प्रकार प्रस्तुत करते हैं—(यह प्रस्तुतीकरण शत प्रतिशत सत्य न भी हो तो भी ९५% यथार्थ ही है—

मुंबई आगमन-काल (पहली बार)—
२६ अक्तूबर १९७४ [किंवा: आश्विन सुदी–१२ संवत्–१९३१]
मुंबई आगमन–काल (दूसरी बार)—
२९ जनवरी १८७५ [किंवा: पौष: संवत् १९३१]
मुंबई आगमन-काल (तीसरी बार)—
२९ मई १८७५ [किंवा: ज्येष्ठ वद्य ९ शनिवार: संवत् १९३२]
पुणे: आगमन-काल (पहली बार)—
१ जुलाई १८७५ [किंवा: आषाढ़: संवत् १९३२]
सतारा : आगमन काल (पहली बार)—
६ सितंबर १८७५ [किंवा : श्रावण: संवत् १९३२]

पुणें : आगमन-काल (दूसरी बार)—
१३ अक्टूबर १८७५ [किंवा: भाद्रपद: संवत् १६३२]
मुंबई : आगमन-काल (चौथी बार)—
१५ अक्टूबर १८७५ [किंवा भाद्रपद-सुदी-२-संवत् १६३२]

टि० संख्या पृष्ठ पं०

२६ ४८ १२-१६ **स्वामी जी के संबंध में जो लोगों का विरुद्ध दृष्टिकोण बनता था वह आगे चलकर स्वयं धीरे-धीरे परिवर्तित हो जाता था। इसका यथार्थ वर्णन…स्वामी जी के संबंध में वर्तमान पत्रों के अभिप्राय इस स्तंभ के नीचे…दे रहे हैं। उस प्रथम परिशिष्ट से यह स्पष्ट हो जायेगा कि स्वामी जी के संपर्क में रहने के बाद लोगों के मत किस प्रकार परिवर्तित हो जाते थे—**

गोपालहरि देशमुख लोकहितवादी के इस जीवन चरित्र के अनुसार-पंडित विष्णु शास्त्री [विष्णु परशुराम शास्त्री] भी उन व्यक्तियों में से थे जिनका स्वामी जी के विरुद्ध दृष्टिकोण बन गया था। और उन्होंने अपनी प्रथम भेंट का लिखित रूप में वर्णन करते हुये स्वामी जी के विरोध में एक आक्षेपात्मक लेख भी लिखा था परंतु आगे चलकर वे खुले रूप में स्वामीजी की प्रशंसा करने लगे थे। परंतु लोकहितवादी जी ने इस दयानंद के व्यक्तित्व-कृतित्व परक लेख में जो यह वचन दिया था कि—'स्वामी जी के संबंध में लोगों के विरोधी दृष्टिकोण (मत) में स्वयं धीरे-धीरे या (स्वामी जी के संपर्क में रहने के बाद किस प्रकार परिवर्तन हो जाता था, उसका यथार्थ वर्णन सूर्योदय नामक पत्र से 'वर्तमान पत्रों के अभिप्राय' इस स्तंभ के नीचे स्वतंत्र रूप से एक परिशिष्ट के रूप में देंगे'। लगता है श्रीयुत लोकहितवादी जी को उस वचन पूर्ति का ध्यान नहीं रहा और जब वे स्वामी-जी विरोधी आक्षेपकर्त्ताओं के नाम भी देना भूल गये तो, उनके मत परिवर्तन की यथार्थ वर्णन की तो बात ही दूर रह गयी।

१६ मार्च १८७५ को मुंबई से, श्रीयुत गोपालराव हरि देशमुख को प्रेषित पत्र में, अपने [स्वामी जी के] आकृष्णेन मंत्र (यजु० ३३।४३) के अर्थ पर, विष्णु परशुराम शास्त्री के आक्षेपात्मक लेख पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये स्वामी दयानंद जी लिखते हैं कि—

"इंदु प्रकाश के संपादक विष्णु शास्त्री के पास आप लोगों में से कोई ने "आकृष्णेनेति" मंत्र के अर्थ हमारा उनके पर (पास) निश्चय के अर्थ पत्र भेजा होगा। उस पर उसने जो कुछ लिखा, सो सब मिथ्या ही है। और यह विष्णु शास्त्री घूर्त, विद्याहीन, हठी दुराग्रही मिथ्याचारी है। इसमें संदेह नहीं, उस विष्णु शास्त्री के विषय में एक बानगी लिखते हैं कि ऐसी मूर्खता कोई विद्यार्थी भी नहीं करेगा। [वह लिखता है—] 'ऋ गतिप्रापणयोः' इस धातु से रथ शब्द सिद्ध हुआ है, रमु क्रीडायाम्' इस धातु से नहीं। 'इससे यह अर्थ निर्युक्तिक और निर्मूल है'। इस अंधा की, भीतर और बाहर की दोनों फूट गई—आंख। पाणिनि मुनि रचित उणादिगण सूत्र [का] प्रमाण—हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यःक्थन् [उणा० २।२॥]। हथः। कुष्ठः। नीथः। रथः। काष्ठम्॥ यास्को निरुक्तकारः—"रथो रंहते

गति कर्मणः [निरुक्त ६।११॥] इत्यत्र रममाणोऽस्मिंस्तिष्ठतीति वेति ॥ इस्से रमुधातु से ही रथ शब्द सिद्ध होने से 'रमणीयो रथो रमतेऽस्मिन्निति वा'। अतः एव विष्णु शास्त्री का कहना व्यथ ही हुआ। और उसको सभा के लिये निमंत्रण भी दिला [दिया] है। परंतु वहां काय को आवेगा ? वह तो झूठा-झूठा घर से बैठा बकेगा। जिसने उसके पास पत्र भेजा, सो भी व्यर्थ किया। क्योंकि ऐसे मिथ्यावादी मूर्ख के कहने का क्या ठिकाना ? इसका खंडन सभा में हमने सबको सुना दिया तथा लिख भी दिया है। परंतु वह धूर्त अपने पत्र में छापेगा नहीं। और जो छापेगा तो उसका [उसको] आप लाग लिखना कि हमारा किया समाधान और उनका खंडन छापै। जो विष्णु शास्त्री न छापेंगे, तो फेर अन्यत्र छपाया जायेगा। आप लाग इन नष्ट बुद्धि वाले पक्षपातियों को पूछते हो निश्चय करने को, सो सायणाचार्यादिकों को ही यथावत् वेदार्थ का बोध नहीं है। इसीलिये इन धूर्त्तों को मध्यस्थ हम नहीं करते। इन पंडितो की बुद्धि अविद्या, लोभादि दोषों से नष्ट हो गयी है। और सब अहमदाबाद के पंडितों से उन्नीस वा बीस, तथा वैसे ही सब पंडितों का स्वभाव जानना, तथा हमारा नाम सुनते ही विपरीत उलटे चलते हैं, सो जिस पण्डित से पूछोगे वह झूठा ही कहेगा। इन पण्डितों को वेदार्थ ज्ञान का लेशमात्र भो ज्ञान नहों है''। [ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन पृ० ५३-५४, संपादक—श्री भगवद्दत्त, परिष्कर्त्ता : पं युधिष्ठिर जी मीमांसक, प्रकाशक —रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, हरयाणा]।

इसी प्रकार ११ अप्रैल १८७५ को मुम्बई से, श्रीयुत गोपाल हरि देशमुख को प्रेषित पत्र में स्वामीजी विष्णु शास्त्री के पक्षपाती स्वभाव पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहते हैं कि—

"इन्दुप्रकाश वाले विष्णुशास्त्री सुधारे वाला तो नहीं, किन्तु कुधारे वाला मालूम पड़ता है, उसका प्रत्युत्तर करके उसके पास भेजा था, परन्तु उसने नहीं छापा। इससे पक्षपाती भी दोखता है। अब वह अन्यत्र छपवाया जायगा''।

[ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन—(रामलाल कपूर ट्रस्ट—ग्रा० पो० बहालगढ़, जि० सोनीपत, हरियाणा)—पृ० ५६]

भरुच से स्वामी दयानन्द जी दिसम्बर सन् १८७४ में अहमदाबाद गये थे। वहां पर उनका रायबहादुर बेचरदास अम्बाईदास के मकान पर गुजराती, पौराणिक, पंडित मण्डली के साथ शास्त्रार्थ हुआ था। यह शास्त्रार्थ 'आ कृष्णेन रजसा०' तथा 'या ते शिवा तनूः' इन दो मन्त्रों पर था। शास्त्रियों को मन्त्रार्थ करने में योगीन्द्र (स्वामी दयानन्द जी) ने जीत लिया था। ('आ कृष्णेन० मन्त्र का ऋषि दयानन्द कृत अर्थ [रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा नवम्बर सन् १९८० में प्रकाशित] 'ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन' के प्रथम भाग में पूर्ण संख्या १७ पर देखें और इसी मन्त्र का पौराणिक पण्डित मण्डली द्वारा किया गया अर्थ, ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन के ३ भाग में पूर्ण संख्या ६ पर देखें)।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, श्रीमद्दयानन्द प्रकाश—पृ० १९३ अहमदाबाद में सम्पन्न मंत्रार्थ विषयक शास्त्रार्थ का विवरण व ऋषि दयानन्द कृत 'आ कृष्णेन०' मन्त्र का अर्थ सम्भव है

किसी ने तो इन्दु प्रकाश (बम्बई) के संपादक विष्णु परशुराम शास्त्री के पास परीक्षणार्थ किंवा निश्चयार्थ भेजा था, ऋषि दयानन्द कृत मंत्रार्थ पर विष्णु परशुराम शास्त्री ने जो आक्षेपात्मक लिखा था, उसका प्रत्युत्तर ऋषि ने विष्णु शास्त्री के पास प्रकाशनार्थ भेजा था, पर उस पक्षपाती ने वह छापा नहीं, और सभा में चर्चा हेतु निमन्त्रित करने पर भी वह 'मिथ्यावादी मूर्ख' नहीं आया। स्वामी जी ने ऐसी स्थिति में अपना प्रत्युत्तर(खण्डन) सभा में सबको सुनाया और तत्पश्चात् उसे अन्यत्र भी प्रकाशित करवाने का निश्चय किया।

श्रीयुत लोकहितवादी और पं० लेखराम लिखित 'स्वामी दयानन्द' सम्बन्धी जीवन चरित्रों से तो अब यह स्पष्ट हो हो गया है कि—विष्णु परशुराम शास्त्री आरम्भ में स्वामी दयानन्द के विरोधी थे, पश्चात् तो वे स्वामीजी के प्रशंसक ही बन गये थे।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

२७-२८ ४६ १३-१४ —**यहां (पुणे) पर १५,१६ व्याख्यान हुये,[२७] उनमें से अनेक व्याख्यान तो उसी समय किसी पुरुषार्थी पुरुष ने भी प्रकाशित किये थे[२८]।**

स्वामी जी द्वारा ११ अगस्त १८७५ [संवत् १९३२ः श्रावण शुद्ध ९ मंगलवार] को पुणे से श्रीयुत गोपाल राव हरि देशमुख, भोलानाथ, महीपतिराम बैचर भाई को प्रेषित पत्र से भी पुणे की गतिविधियों की जो विश्वसनीय एवं प्रामाणिक जानकारी मिलती है, वह स्वामी जी के शब्दों में ही प्रस्तुत है:—

"....पूना में महादेव [माधवराव] गोविंद रानडे, महादेव [माधवराव नहीं] मोरेश्वर कुंटे तथा लस्कर [छावनी] में गंगाराम भाऊ आदि पुरुषों ने अच्छी प्रकार व्याख्यानादि प्रबन्ध पूर्वक कराये और व्याख्यान छपवाते भी हैं"। [पुणे—प्रवचन या उपदेश मंजरी में केवल १५ व्याख्यान ही प्रकाशित हुये हैं परन्तु देवेन्द्र बाबू, पं घासीराम व मुनिवर्य मेधाव्रताचार्य के अनुसार पुणे में ५० व्याख्यान हुये [और छपे भी] थे...कुछ व्याख्यान शहर में और कुछ छावनी में होते रहे। लेखक—मेधाव्रत, अनुवादक, सत्यव्रत, दयानंददिग्विजय—पृ० १७८] "तथा वेदभाष्य बनवाने के लिए पंडित रखने के वास्ते कुछ फण्ड जमा किया है। और कुछ करने का भी है, तथा आर्यसमाज स्थापन अवश्य करना। इसलिए दो वक्त सभा होके व्यवस्थापक मण्डली निश्चित हो गई है, और एक सभा करने वाले हैं, उनमें प्रधान, मंत्री और कोषाध्यक्षादिक निश्चित करके आर्यसमाज का आरम्भ करने वाले हैं, सो शीघ्र ही होगा ऐसा मालूम पड़ता है अन्य सब वर्त्तमान "ज्ञानप्रकाश समाचार" से आप लोगों ने देखा ही होगा, ...एक पंडित रखने के लिये महादेव गोविंद आदि ने ५० रूपैयों का निश्चय किया है, तथा मथुरादास लौजी और छबीलदास लल्लू भाई आदि आर्यसमाज के सभासदों ने भी वेद-भाष्य होने के लिये २०००० रुपैये जमा करने के लिये सेर(शेयर) १०० रुपैयों का खडा करके १०००० रुपैये तक तो सेर (शेयर)भर गये हैं, और बहुत शीघ्र ही वे लोग बीस हजार ही रुपैये जमा कर लेंगे, ऐसा मालूम पड़ता है, एक पंडित के लिये राजा जयकृष्णदास जी ने स्वीकार किया ही है, तथा यहां महादेव गोविंद आदि की तथा हमारी भी इच्छा है कि एक पण्डित के रखने के लिये ५० रुपैयों

का प्रबन्ध आप लोगों की ओर से होय तो अच्छा है, फेर जैसी आप लोगों की इच्छा होय वैसा कीजिये"। इसी प्रकार १६ अक्टूबर १८७५ [उत्तर भारतीय पञ्चांगानुसार कार्तिक बदी-२] को पूना या बम्बई से श्रीयुत गोपालराव देशमुख को प्रेषित पत्र में पुणे में आर्यसमाज स्थापित हो जाने की सूचना देते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं कि—

"—पूना और सतारा का वर्त्तमान, पत्रों से सुन लिया होगा एक नवीन बात यह है कि पूना में आर्यसमाज स्थापन हो गया हैं। आगे आर्यसमाज स्थापनार्थ दो सभा पूना में हुई थी। सो तो समाचार-पत्रों से जाना होगा। परंतु हम सतारे से आये तब यह निश्चित हुआ कि महादेव गोविंद रानडे प्रधान, केशवराव गोडबोले मंत्री, जितने प्रार्थना समाज के सभासद् थे वे सब और अन्य बाबा गोकुले तथा काशीनाथ गाडगील एवं गंगाराम भाऊ आदि लस्करस्थ (छावनीस्थ) ६० वा ७० सभासद् हुवे हैं, और अन्य भी बहुत होने वाले हैं"। —(ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन-पृ० ५६-६१)

"महर्षि दयानंद जी ने पुणे व्याख्यानों को लिपिबद्ध और प्रकाशित करनेवाले पुरुषार्थियों में सर्व श्री महादेव गोविंद रानडे, महादेव मोरेश्वर कुंटे तथा गंगाराम भाऊ [म्हस्के] की स्पष्ट गणना की है. शेष नाम 'आदि' में ले लिये है। इन शेष नामों में से एक नाम गणेश जनार्दन आगाशे काजी है। पुणे प्रवचन या उपदेशमंजरी के रूप में अभी स्वामी जी के १५ व्याख्यान ही उपलब्ध हो पाये हैं। यदि उनके पुणे में ५० व्याख्यान लिपिबद्ध और प्रकाशित हुये हैं तो अवशिष्ट अन्य ३५ व्याख्यानों का अनुसधान कार्य भी अत्यावश्यक है, परंतु महाराष्ट्र साहित्य परिषद् ग्रंथालय के प्रमुख स्तंभ म० श्री दीक्षित के कथनानुसार–'यह शोक का विषय है कि 'आर्यभूषण मुद्रणालय' के अग्नि भस्म हो हो जाने से अब ज्ञानप्रकाश पत्र की काई फाइल शेष नहीं रही है'। यदि ज्ञान प्रकाश पत्र की फाइल मिल जाये तो इन ३५ व्याख्यानों की भी प्रकाश में आने की पूर्ण संभावना है।

टि० सं० पृष्ठ पं०

२६ ४६ २४ हिंदू क्लब—

इंग्लैण्ड में लगभग दो-सौ वर्ष पूर्व बड़े-बड़े सुप्रसिद्ध पंडितों की एक विद्वत् सभा जिस स्थान पर विविध विषयों पर विचार-विमर्श करने हेतु हर सप्ताह आयोजित होती थी, वह 'जानसन क्लब' के नाम से मशहूर था। उसी स्तर पर पुणे में भी विविध विषयों पर चर्चा, व्याख्यान-प्रबोधनादि करने हेतु यहां के एक प्रसिद्ध स्थान [बुधवार पेठ पुणे में-तांबडो जोगेश्वरी मंदिर से संलग्न-भिडे-वाडा] पर कुछ महीनों तक विद्वत् परिषद् जमती थी। वही स्थान उस समय 'हिंदू क्लब' के नाम से सुप्रसिद्ध था। इसी हिंदू क्लब में स्वामीजी के ४ जुलाई से ४ अगस्त १८७५ तक पंद्रह व्याख्यान हुये थे।

३० ४६ ३० **वास्तव में व्याख्यान ही ऐसा होता था कि श्रोताओं को व्याख्यान भवन में शयन के लिये बिस्तर ले जाना ही अच्छा था—**

स्वामी जी की व्याख्यान-प्रभा को निष्प्रभ करने का बीड़ा रेवरंड नीलकंठ शास्त्री गोरे ने

उठाया था, परंतु खुद उनकी विद्वता व व्याख्यान-प्रभा स्वामी दयानंद जी को तुलना में निष्प्रभ सिद्ध हो गई थी। जादू वह जो सिर पर चढ़कर बोले स्वामी दयानंद जी पर मृत्यु पर्यंत-आक्षेप करने-वाले निबंधमालाकार विष्णु शास्त्री चिपलूणकर के इस लिखित वक्तव्य का यही अभिप्राय है कि— रेवरंड नीलकंठ शास्त्री गोरे का व्याख्यान इतना नीरस निस्सार व उबा देनेवाला होता था कि श्रोताओं को नींद आने लगती थी। गोरे जैसे वक्ता का व्याख्यान सुनने की अपेक्षा (एक) नींद लेना अधिक श्रेयस्कर व लाभप्रद था।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

३१ ५० ३ **स्वामी जी की फजिती करने की निश्चय कर लिया—**

"न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानडे श्री महादेव मोरेश्वर कुंटे आदि सुधारक दल के नेताओं ने यति-सम्राट् को पूना आने के लिये निमंत्रण दिया था।··· पूना में [स्वामीजी] विट्ठल पेठ में श्री शंकर सेठ के भवन में ठहरे। पश्चात् शीघ्र ही उन्होंने यह विज्ञापन दिया कि—हम अमुक-अमुक ग्रंथ को प्रामाणिक और अमुक-अमुक को अप्रामाणिक मानते हैं [प्रायः स्वामीजी जहां-कहीं भी जाते थे। लिखित विज्ञापन देकर वेद-विरुद्ध बातों पर शास्त्रार्थ के लिये पंडित मंडली को आह्वान करते थे। शास्त्रार्थ के अतिरिक्त ज्ञान-चर्चा और व्याख्यानों के माध्यम से भी प्रबोधन के महत्कार्य में वे सतत सक्रिय रहते थे] उस समय पुण्य नगर में पुण्यात्मा के जन-पुण्य-कारक प्रभावशाली उत्तम ५० व्याख्यान हुये, वे मनोहर दृष्टांतों से रुचिकर होने के कारण जनता को प्रिय लगते थे। वाग्मीश्वर का एक दिन व्याख्यान और दूसरे दिन शंका समाधान क्रमशः हुआ करता था।···न्यायमूर्ति रानडे महोदय और कुंटे महोदय, युगांतर प्रवर्त्तक आचार्य दयानंद के शिष्य रत्न बन गये थे," (मुनिवर्य मेधाव्रताचार्य-दयानंद दिग्विजय-उत्तरार्द्ध-पृ० १७८-७९) पर कुछ ईर्ष्यालु लोगों ने स्वामी जी की फजिती (उपहास) करने का निश्चय कर लिया था। जिनमें महाराष्ट्र के कुछ प्रसिद्ध नाम निम्न प्रकार हैं:—

१. विष्णु शास्त्री चिपलूणकर, २. महामहोपाध्याय रामशास्त्री आपटे, ३. रेवरंड नीलकंठ शास्त्री, ४-५, कमिश्नर कचेरी के पट्टेवाले व गर्दभानंद शोभा यात्रा के दो नेता, [संभवतः इनमें से एक का नाम-नारायण भिकाजी जोगलेकर है]।

पूना से ११ अगस्त १८७५ को-श्रीयुत गोपालराव हरि देशमुखको प्रेषित पत्र में संभवतः इन्हीं ईर्ष्यालु (पुणे) महाराष्ट्र के रत्नों के संदर्भ में स्वामी दयानंद जी सरस्वती लिखते हैं कि—"यहां (पूना) के पंडित लोग सामने तो कोई भी नहीं आये, किंतु दूर से बड़-बड़ किया और करते भी हैं, सो जानना"।

३२ ५० ४ **भक्त और स्नेही लोगों ने स्वामी जी को हाथी पर बिठाकर उनका जुलूस निकाला—**

न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानडे, श्री महादेव मोरेश्वर कुंटे [ये दोनों ही सहाध्यायी व स्नेही थे] व पुणे शहर के तत्कालीन सुप्रसिद्ध वकील व म० गो० रानडे जी के मित्र श्री गंगाराम भाऊ

म्हस्के तथा गणेश जनार्दन आगाशे आदि "श्रेष्ठ सभ्यों ने संसार हितकारी योगीश्वर की शोभा यात्रा ता० ५ सितम्बर रविवार को समारोह पूर्व निकालने का निश्चय किया। निश्चित दिन [५ सितंबर को ही, क्योंकि जलूस इसी दिन निकाला था] संवर्धन सभा [व्यवस्थापक मंडली पुणे छावनी में] संगठित हुई। योगिराज ने "यथेमां वाचं कल्याणीम्" इत्यादि वेद मंत्र की व्याख्या की। पश्चात् गंगाराम भाऊ म्हस्के ने पूना निवासियों की ओर से कृतज्ञता प्रकट की। अनेक वक्ताओं ने संयमीश्वर के उपकारों का वर्णन किया। इसके अतिरिक्त गुरुदेव को पुष्पमाला पहनाई गई। कई सज्जनों ने एक जोड़ा-शाल, पगड़ी, एक रेशमी पीताम्बर और एक रेशमी चादर श्रद्धा के साथ श्री चरणों में भेंट किए और उन पर पुष्प वर्षा की। यतीन्द्र को पश्चात् दंतीन्द्र (गजेन्द्र) पर सवार होने के लिए निवेदन किया गया, किंतु वे उसको स्वीकार न कर विद्वान् महोदयों के साथ पैदल हो चले। आगे-आगे हाथी, उसके पीछे अश्व सेना, तदनु सैनिक-दल, उनके पीछे बाजे वाले फिर योगी सम्राट् और उनके भक्तजन और अंत में अन्य लोग चले। इस स्थान सभा [समारोह] में पारसी और यहूदी सज्जन भी सम्मिलित हुये थे। भला! मनुष्य मात्र के उपकार का व्रत धारण करनेवाले महापुरुष में कौन श्रद्धा नहीं प्रकट करेंगे"? (मुनिवर्य मेधाव्रताचार्य: दयानंद दिग्विजय: उत्तरार्ध—पृ० १७९—१८०)।

टि० संख्या   पृष्ठ   पं०

३३   ५०   १७-१९   **पुणे वासियों को इस उद्दंडता और अतिशय दुर्व्यवहार व छल कपट के विरुद्ध प्रायश्चित स्वरूप जैसी सजा मिलनी चाहिये, वैसी आंशिक रूप में सजा भी मिली—**

"छावनी से समारोह पूर्वक यतिराज की शोभा यात्रा निकली" तो "दूसरी ओर गर्दभ दल के नेता नारायण भिकाजी जोगलेकर आदि पौराणिकों ने जड़ पूजा से उत्पन्न जड़मति को दर्शानेवाली, मानव जन्म में भी पशुता का अभिनय करनेवाली महर्षि के उपहास में गर्दभ समारोह यात्रा निकाली। गजेन्द्र को महापथ से जाते हुये देखकर कुत्ते और गदहे चाहे जितना भोंके!! किंतु नरेन्द्रों से पूजित गजराज अपनी गौरव युक्त गंभीरता को छोड़ दें? खल मंडली ने ब्रह्मज्ञानी मुनीन्द्र पर ईंटें, पत्थर, गोबर और कीचड़ फेंकना आरंभ कर दिया और गालियां भी बरसाने लगे, किंतु गुरुदेव ने समुद्र की सी असीम गंभीरता और हिमाचल की सी निश्चलता की शोभा को धारण किया। यतिराज (दयानंद) की शोभा-यात्रा पुण्यपुरी के व्याख्यान भवन के ज्यों ही पास आई त्योंही उन 'गर्दभों' ने लोक निंदित उपद्रव किया। किंतु शांति के सागर, चन्द्र विनिन्दक मुखवाले, बृहस्पतिसम स्वामीजी ने सहस्त्रों श्रोताओं से घिरे हुये सभा भवन में गंभीर शांति से जन कल्याणकारिणी वाणी से उपदेश दिया। पश्चात् न्यायमूर्ति रानडे, कुण्टे महोदय और शास्त्री रघुनाथ ने अपने अपने भाषणों में कहा कि 'महापुरुषों! जगन्मंगलाभिलाषी जगद्गुरु दयानंद ने मनुष्य जाति के अभ्युदय एवं मोक्ष के लिये वैदिक धर्म का प्रकाश किया है। ...सज्जनों ने सोचा कि—"संन्यासी, भेंट रूप में द्रव्य न ग्रहण करेंगे तो वेदभाष्य प्रकाशन के लिये अर्थ साहाय्य करना अच्छा होगा"। इस प्रकार प्रस्ताव करके सर्वानुमति से २५) रुपये यतीन्द्र को भेंट किए गए। मुनींद्र ने यह साहाय्य सादर ग्रहण किया। तत्पश्चात् सभास्थ पुरुषों ने स्वामी जी पर पुष्प वर्षा की। महर्षि सभा से अपने स्थान पर जा रहे थे.

तब गदहों ने उनके ऊपर ढेले (ठेले) फेंके। इस गदर्भ लीला को देखकर इंसपेक्टर 'ट्रेन' उन नर पशुओं को पकड़ने लगे। तब ऋषि ने मना कर दिया और समझाया कि ये मूर्ख भले ढेले फेंके। मेरी इससे कोई हानि नहीं है और न ही इन पर मेरा रोष है"।

मेधाव्रत-दयानंद दिग्विजय-उत्तरार्ध-(पृ० १८०-१८२)—

दोषी पुणेवासियों को इस उद्दंडता और अतिशय दुर्व्यवहार युक्त छलकपट के विरुद्ध प्रायश्चित्त स्वरूप आंशिक रूप में जो सजा मिली, उसका विस्तार से विवरण=वर्णन टिप्पणी संख्या १६ पृष्ठ ११३-११५ में पीछे कर दिया गया है अतः वहीं पर अवलोकन करें।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

३४ ५० २१-२२ **मालाकार ने अपनी निबंधमाला के 'वक्तृत्व' इस निबंध में निरुपाय होकर वक्ताओं की माला में श्रीमद्दयानंद का भी समावेश किया है—**

निबंध मालाकार विष्णु शास्त्री चिपलूणकर का उद्देश्य स्वामी दयानंद जी की वक्तृत्व कला पर प्रकाश डालना न होकर, उनका उपहास करना है। स्वामी जी की वक्तृत्व कला पर प्रकाश डालने की अपेक्षा स्वामीजी के प्रगतिशील विचारों का उपहास करना ही उनका ध्येय रहा है, इसलिये श्रीयुत लोकहितवादी जी के मतानुसार—'उपहास करने के उद्देश्य से ही विष्णु शास्त्री चिपलूणकर ने निरुपाय होकर वक्ताओं की श्रेणी में स्वामीजी की गणना की है। फिर भी चिपलूणकर जी का यह निबंध सरस, रोचक व मार्मिक शैली में लिखा हुआ है और स्वामी जी का एक प्रत्यक्ष सजीव चलचित्र सा सक्रिय शब्द चित्र प्रस्तुत करता है।

३५ ५२ २०-२२ **संत तुकाराम (बोवा) का छल करने के लिये जिस प्रकार चांडाल वृत्ति का ब्रह्मपुरुष (ब्राह्मण) रामभट्ट वाघोलकार हुआ था—**

संत तुकाराम की जैसे-जैसे कीर्ति फैलने लगी। वैसे-वैसे ईर्ष्यालु लोगों की ओर से उन्हें छला और सताया जाने लगा। एतद्विषयक एक आख्यायिका प्रायः सुनाई जाती है:—पुणे के पास वाघोली गांव में रामेश्वर भट्ट नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था। वह बड़ा ही ईर्ष्यालु था, उसे तुकाराम की प्रगति असह्य होने लगी, वह उनका द्वेष्टा बन गया। एकदिन उसने तुकाराम को बुलाकर कहा कि—तू लोगों को बहका रहा था, ब्राह्मण न होते हुये भी वेदों का अर्थ बतलाने का तूने बहुत बड़ा पाप किया है। तुम्हें अभंगों (काव्य) की रचना करना तुरंत बंद कर देना चाहिये। यह सुनकर तुकाराम को बहुत बड़ा आघात हुआ। ईश्वरीय प्रेरणा से वे काव्य रचना करते थे, पुनरपि उन्होंने रामेश्वर भट्ट की इच्छानुसार अभंग लिखना बंद करने का तो निश्चय कर लिया, पर प्रश्न यह उठा कि अब तक जो अभंग रचे गये थे, उनका क्या करना चाहिये। रामेश्वर भट्ट ने उत्तर दिया-नदी में फेंक दो। यह सुनकर तुकाराम को असीम दुःख हुआ, फिर भी उन्होंने कठोर अन्तःकरण से सभी गीत, भजन, अभंगादि काव्य पत्र के साथ कपड़े में बांधकर इंद्रायणी नदी में डाल दिये और यह अनुभव किया कि—'स्वयं ईश्वर को ही मेरी सेवा की आवश्यकता नहीं है। यह सोचकर उन्होंने अपने जीवन का अंत करने का निश्चय कर लिया। मंदिर के सामने बैठकर उन्होंने अनवरत ईश्वर

[विट्ठल] का जप करना शुरु कर दिया। इसी तरह तेरह दिन बीत गये। न तो भोजन किया और न ही पानी पिया। सभी तुकाराम के भक्त चिंतित हो उठे। चौदहवें दिन एक चमत्कार हुआ-एक भक्त ने आकर सूचना दी कि अभंग (काव्य) की गठरी नदी पर तैर रही है। यह जानकर तुकाराम को अतिशय प्रसन्नता हुई। वे नदी पर गये और उन्होंने अपना अमूल्य ग्रंथ-अभंग काव्य-बाहर निकाल लिया। जब यह समाचार रामेश्वर भट्ट को मिला तो उन्हें अपने किये कर्मों पर बहुत ही पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने सत तुकाराम का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार देहू गांव के पुजारी मंवाजी भी, संत तुकाराम का द्वेष किया करते थे। तुकाराम द्वारा मंदिर मार्ग से कांटे हटाने पर उन्होंने उन पर बगिया को तहस-नहस करने का आरोप लगाकर उनकी कीकर की कंटारी डार से पिटाई की थी।

टि० सं० पृष्ठ पं०

३६ ५३ ३-४ **इन अमेरिका प्रदेशस्थ थियोसाफिकल सोसाइटी के लोगों से तो हमारे पाठक सुपरिचित होंगे ही।**

यहां पर 'थियोसाफिकल सोसाइटी के लोगों से' तात्पर्य कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवेटस्की से है, 'कर्नल अल्काट की जन्मभूमि अमेरिका थी तो मैडम ब्लैवेटस्की की रूस थी। मैडम ब्लैवेटस्की रूस में एक जर्मन परिवार में उत्पन्न हुई थी, परन्तु कालांतर में उन्होंने रूस से मिश्र होते हुये अमेरिका में आश्रय लिया था'।

—इन्द्र विद्या वाचस्पति, आर्यसमाज का इतिहास प्रथम भाग पृ० ११७

"कर्नल अल्काट का जन्म अमेरिका के आरेंज नगर में ई० सन् १८३२ में हुआ। आप वहां कृषि विभाग में अफसर थे। फिर वकालत शुरु की। उसी समय रूसी महिला काउन्टेस मेडम ब्लैवेटस्की से उनकी भेंट हो गई। दोनों ने मिलकर करामात की चर्चा फैलायी कि वे स्वर्ग से चीजें मंगा देते हैं और भूत-प्रेत उनके हाथ में हैं। वहां न्यूयार्क शहर में इन्होंने ८ सितम्बर १८७५ ई० को अपने नये मत 'थियोसाफिकल सोसायटी' की नींव डाली और आर्यसमाज से अपना सम्बन्ध जोड़ने व ऋषि दयानन्द के दर्शनार्थ १६-२ १८७९ ई० को भारत में आये। इनकी संस्था को आर्यसमाज की शाखा घोषित करने के कुछ दिन बाद जब दयानन्द को ज्ञात हुआ कि ये ईश्वर को नहीं मानते हैं और झाड़े झपटे की बातें भी इनमें हैं, तब इनसे कोई सम्बन्ध न रक्खा। तब सन् १८८२ ई० में इस युगल जोड़ी ने मद्रास के आडियार स्थान में थियोसाफिकल सोसाइटी की इमारत बनवाई, १८९१ ई० में मैडम ब्लैवेटस्की मर गई। कर्नल अल्काट भी १७ फरवरी १९०७ ई० को इस संसार से चल बसे। कर्नल के शव का अग्नि संस्कार हुआ। भस्मी आधी तो समुद्र में डाली व आधी (काशी में) गंगा में प्रवाहित हुई। यह बात हिंदू धर्मानुकूल हुई। इन्होंने ३१ वर्ष में अपनी सभा की लगभग १ हजार शाखाएं खोली।"

—ऋषि द० स० के पत्र और विज्ञापन, परिशिष्ट, पृ० ९८३-९८४

३७ ५३ २०-२१ **अत्यल्प समय में उनसे जितना कार्य संभव हो सका उतना उन्होंने किया।**

स्वामी जी का जन्म विक्रमी संवत् १८८१ में, व निर्वाण विक्रमी संवत् १९४० में हुआ था। तदनुसार उनकी आयु ५१ वर्ष की थी। परन्तु विद्याध्ययन [मथुरा] के दो वर्ष पश्चात् विक्रमी संवत् १९२२ में स्वामी जी ने सर्वप्रथम कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया था, तदनुसार १८ वर्ष का अत्यल्प समय ही उनके कार्यकाल का रहा है।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

३८ ५४ २६ **मृत्यु-पत्र तैयार करके रखा है।**

मृत्यु पत्र से तात्पर्य स्वीकार-पत्र (वसीयतनामा) से है, प्रथम स्वीकार पत्र ऋषि दयानन्द जी ने अत्यधिक शारीरिक अस्वस्थता के कारण तैयार किया था, इसकी रजिस्ट्री १६ अगस्त १८८० के दिन मेरठ में हुई थी, और द्वितीय स्वीकार पत्र २७ फरवरी संवत् १८८३ ई० को, मंगलवार के दिन सायंकाल ७ बजे, उदयपुर में, श्रीमानों के हस्ताक्षर और राजकीय मोहर लगाने के पश्चात् माननीय व प्रतिष्ठित हुआ था, प्रथम स्वीकार पत्र में परोपकारिणी सभा के अष्टादश सभासद् थे तो द्वितीय स्वीकार पत्र में त्रयोविंशति सभासद् थे।

३९ ५५ ६ **हमें इसमें कोई संशय नहीं कि स्वामीजी के मृत्युपत्र के अनुसार ही सभी कार्य सम्पन्न होंगे।**

स्वामी जी ने अपने मृत्युपत्र [स्वीकार-पत्र] में परोपकारिणी सभा के सभासदों को निम्नांकित ३ कर्त्तव्यों को पूर्ण करने के लिये, निजो सम्पत्ति व्यय करने के अधिकार प्रदान किये थे। **पहला कर्त्तव्य वैदिक शिक्षा का प्रबन्ध था, दूसरा कर्त्तव्य लेख वेदवाणी द्वारा उपदेशक मंडली को भेजकर प्रचार-व्यवस्था करना था और तीसरा कर्त्तव्य दीनों, अनाथों को उठाना उनकी सहायता करना था।** इस प्रकार आर्यसमाज की संरक्षिका परोपकारिणी सभा को स्थापित करने की पृष्ठ-भूमि में स्वामी जी के ३ उद्देश्य थे - १—वेद और वेदांग आदि के पढ़ने-पढ़ाने व वैदिक ग्रन्थों के छपवाने की व्यवस्था। – २—देश और देशांतर में भेजने के लिये उपदेशक मंडलियों का प्रबन्ध। ३—भारत के दीन और अनाथ जनों को सहायता देना।

'लोकहितवादी' को इस बात का पूर्ण विश्वास था कि स्वामीजी के मृत्यु-पत्र के अनुसार सभी कार्य सम्पन्न होंगे। इसी लिये उन्होंने यह कहा है कि हमें इसमें कोई संशय नहीं है। यहां पर 'हमें' शब्द भाषा लोकानुसारिणी होती है, इस सिद्धान्त के आधार पर व्यक्तिवाचक है, वैसे परोपकारिणी सभा के सभासदों में लोकहितवादी जी के अतिरिक्त मुम्बई राज्य से अन्य दो सभासद् लिये गये थे। मुम्बई राज्य के लिये गये तीनों परोपकारिणी सभासदों के नाम निम्न प्रकार हैं—

१—(लाला) राव बहादुर रा० रा० पंडित गोपालराव हरि देशमुख [लोकहितवादी] —पूना

मेम्बर कौंसिल गवर्नर बंबई और प्रधान आर्यसमाज, बंबई। —पूना

२—(लाला) राव बहादुर रा० रा० महादेव गोविंद रानडे जज।

३—पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा प्रोफेसर संस्कृत यूनिवर्सिटी आक्सफोर्ड, लंडन। —बंबई

टि० संख्या	पृष्ठ	पं०	
४०	५५	२३	**इस प्रकार……यह लिखा हुआ भी हम उस सत्पुरुष के चरण कमलों में समर्पित करते हैं।**

मूल मराठी लोकहितवादी मासिक [पं० स्वामी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती विशेषांक] पत्र में—'इस प्रकार……समर्पित करते हैं'—इस वाक्य से न तो कोई नया परिच्छेद प्रारम्भ होता है और न ही समाप्त होता है, इससे पूर्व व पश्चात् के परिच्छेद मूल लेख में एक परिच्छेद के रूप में ही हैं, अर्थात् तीनों परिच्छेद मूल मराठी लेख में इस हिन्दी अनुवाद की तरह तीन परिच्छेदों में न होकर मूलतः एक परिच्छेद के रूप में ही एकाकार हैं, हमने प्रसंगानुकूलता, सरलता और सुविधा की दृष्टि से मूल मराठी लेख के एक परिच्छेद को तीन परिच्छेदों में विभक्त कर दिया है।

—अनुवादक

४१ ५६ १६-१७ **इससे आगे हमने……उससे यह समझ में आ जायेगा कि उनका कैसा और कौन सा प्रयास (उद्योग) किस प्रकार चल रहा है—**

मूल मराठी लोकहितवादी मासिक [पं० स्वामी श्रीमद्दयानंद सरस्वतीः विशेषांक] में यह [इससे…चल रहा था] संपूर्ण परिच्छेद—'पं० दयानंद सरस्वतीः अनेक समाचार पत्रों के अभिप्राय'—इस शीर्षक से पूर्व प्रकाशित किया गया है, पर हमने उसे मूल लेख से कम और समाचार पत्र विषयक शीर्षक से अधिक संबंधित होने के कारण [दयानंद सरस्वतीः समाचार पत्रों के अभिप्राय] इस कोष्ठान्तर्गत शीर्षक की छाया में (अंतर्गत) दिया है, शब्दांकित किया है

४२ ५६ २७ **बंगाली, (कलकत्ता)**—द्र०—३ नवंबर, १८८३ ई०। [इस पत्र के संपादक भारतीय ग्लैडस्टन, बंगाल केसरी सुप्रसिद्ध देशभक्त और राष्ट्रीय नेता-बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी थे]।

४३ ५४ ७ द्र० **ट्रिब्यून, (लाहौर)**—द्र० ३ नवंबर, १८८३ ई०

४४ ५७ १२ द्र० **इंडियन एम्पायर, (कलकत्ता)**—द्र०—४ नवंबर, १८८३ ई०

४५ ५७ १६ द्र० **हिंदू पेट्रिअट, (कलकत्ता)** द्र०—८ नवंबर, १८८३ ई० [मराठी में पेट्रियट का उच्चारण पेट्रिअट किया जाता है]

४६ ५७ २२ **इंडियन क्रानिकल (बांकीपुर)**

इंडियन क्रानिकल कलकत्ता [तिथि अज्ञात] संभवत 'इंडियन क्रानिकल' बांकीपुर व कलकत्ता से, एक ही समय प्रकाशित होता होगा। लोकहितवादी पं० गोपालराव हरि देशमुख जी ने इसे बांकीपुर से प्रकाशित बताया है तो पं० गोपालराव हरि प्रणतांकर ने दयानंद दिग्विजयार्क [महर्षि के जीवन काल में लिखा प्रथम प्रामाणिक जीवन चरित्र] में इसे [इंडियन क्रानिकाल

को] कलककत्ता से प्रकाशित बताया है। संभव है इंडियन क्रानिकाल के कलकत्ता संस्ककरण के अतिरिक्त बांकीपुर संस्करण भी एक साथ निकलता होगा, क्योंकि दोनों संस्करणों [श्रद्धांजलि] की भाषा मूलतः एक ही है।

टि० संख्या पृष्ठ पं०

४७ ५७ २५ हिंदू आब्झरवर, मद्रास—
हिंदू अब्जरवर, मद्रास: १८ नवंबर, १८८३ ई०

अब्जरवर का मराठी उच्चारण 'आब्झरवर' होता है। हिंदू अब्जरवर-मद्रास की तरह, मद्रास से ही प्रकाशित होने वाले थिंकर (११ नवंबर, ८३) तथा हिंदू में भी इस प्रकार की सम्मतियां छपी थीं।

४८ ५८ ६ **पंजाब टाईम्स, (रावलपिंडी)**—टाईम्स पंजाब [केवल शब्द विपर्यय], रावलपिंडी,: १० नवम्बर १८८३ ई०

४९ ५८ १८ गुजरात मित्र, (सूरत)—द्र०—११ नवंबर १८८३ ई०

—गोपालराव हरि-दयानंद दिग्विजयार्क-पृ० २२१-२२४।

[इसी प्रकार-बंगाल पब्लिक ओपिनियनःकलकत्ता (८ नवंबर, १८८३), लिबरल: कलकत्ता (११ नवंबर १८८३), इंडियन मैसेञ्जर: कलकत्ता (११ नवंबर १८८३), बंगवासी, संजीवनी, एज्युकेशन गजट, सलवा समाचार तथा ग्राम बांट प्रकाशिका: (सम-सामयिक कलकत्ता के पत्र), इंडियन स्पीकर: बंबई (१८ नवंबर १८८३), इंग्लिश क्रानिकल: बांकीपुरः पटना (५ नवंबर १८८३), दीनबंधु: बंबई (४ नवंबर १८८३), बंबई प्रांत के गुजराती: बंबई (४ नवंबर १८८३), दैनिक समाचार: बंबई (२ नवंबर १८८३), सुबोध पत्रिका, यजदान परस्त, सन्मार्ग दीपिका (सम-सामयिक बंबई के पत्रों, जमशेद दैनिक: बंबई (२ नवंबर, १८८३), वर्त्तमान सार, सूर्यप्रकाश (सूरत के सम-सामयिक पत्रों), रास्त गुफ्तार (सत्यवक्ता) [संभवत] बंबई (४ नवंबर १८८३] अवध अखबार: उर्दू दैनिक (८ नवंबर १८८), हिंदुस्तानी, नसीम हिंद, बुल्द केसरी, क्षत्रिय हितकारी, बनारस (संयुक्त प्रांत के सम-सामयिक पत्र), कोहिनूर, लाहौर, आफताब पंजाब, अंजुमन अखबार, ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका, लाहौर विक्टोरिया पेपर, स्यालकोट (पंजाब के सम-सामयिक पत्र), मध्यप्रदेश विलासपुर-समाचार (सामयिक मध्य प्रदेश का पत्र), सज्जन कीर्ति सुधारक-उदयपुर (राजस्थान का सामयिक पत्र), हिंदी प्रदीपः प्रयाग (यह पत्र हिंदी के विख्यात लेखक पं० बालकृष्ण भट्ट के संपादन में प्रकाशित होता था), भारतबंधु: अलीगढ, शुभचिंतकः शाहजहांपुर, आर्य समाचार: मेरठ, बदायूं समाचार (सम-सामयिक संयुक्त प्रांत के पत्र) आर्यावर्त्त-कलकत्ता, दि आर्य मैगजीन-लाहौर, रीजेनेरेटर आफ आर्यावर्त्त-लाहौर, देशहितैषी अजमेर, आर्यदर्पण-शाहजहांपुर, देशोपकार-लाहौर (आर्यसमाजिक पत्र) आदि सम-सामयिक पत्रों में भी महर्षि के महानिर्वाण पर सम्मतियुक्त श्रद्धांजलियों व लेखों द्वारा शोक व्यक्त किया गया था। [—द्रष्टव्य-गोपालरावहरि प्रणतकार: दयानंद दिग्विजयार्क-[सं० डा० भवानीलाल भारतीय] पृ० २०० से २२७)

टि० संख्या पृष्ठ पं०

५० ५८ १६ **श्रीमद्दयानंद सरस्वती की ग्रंथमाला—**

वर्णानुक्रमानुसार ऋषि दयानंद जी के स्वरचित ग्रंथों की सूची निम्न प्रकार है:—

१, अनुभ्रमोच्छेदन
२. अष्टाध्यायी भाष्य
३. आत्मचरित
४, आर्यसमाज बंबई के २८ नियमों की व्याख्या
५. आर्याभिविनिय
६. आर्योद्देश्यरत्नमाला
७. काशी शास्त्रार्थ
८. कुरान हिंदी
९. गोकरुणानिधि
१०. गौतम अहिल्या की कथा
११. जालंधर की बहस
१२. पञ्चमहायज्ञविधिः संध्याभाष्य-प्रथम संस्करण
१३. पञ्चमहायज्ञविधिः द्वितीय संस्करण
१४. पोपलीला
१५. प्रतिमापूजनविचार
१६. प्रश्नोत्तर हलधर
१७. प्रश्नोत्तर उदयपुर
१८. प्रश्नोत्तरी (जगन्नाथ कृत) का उत्तर
१९. भागवतखंडनम् (वैष्णम् मत खंडन)
२०. भ्रमोच्छेदन
२१. भ्रांतिनिवारण
२२. मेला चांदापुर (सत्यधर्म विचारः चांदापुर शास्त्रार्थ)
२३. वेदभाष्यः —
 १. चतुर्वेद-विषय सूची
 २. ऋग्वेद-विषय-स्मरणार्थ-सूची (अप्राप्त)
 ३. ऋग्वेद भाष्यम्: प्रथम 'नमूने का अक (गुजराती और मराठी अनुवाद सहित
 ४. ऋग्वेद भाष्यम्: द्वितीय नमूना अंक
 ५. ऋग्वेद के कुछ सूक्तों का विस्तृत भाष्य (अप्रकाशित)

६. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका
७. ऋग्वेदभाष्य } १. 'अपूर्व वेदभाष्य'
८. यजुर्वेदभाष्य } ऋङ्-माध्यन्दिन—संहिता।
२४. वेदविरुद्ध मत-खंडनम् (बल्लभ [आचार्य] मत खंडन)
२५. वेदन्ति-ध्वान्त-निवारणम् (अद्वैतमत खंडन)
२६. व्यवहार भानु
२७. शिक्षापत्री-ध्वान्त-निवारणम् (स्वामी नारायण मत खंडन)
२८. संस्कारविधि प्रथम संस्करण
२९. संस्कारविधि द्वितीय संस्करण
३०. संस्कृत-वाक्य-प्रबोध
३१. सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण
३२. सत्यार्थ प्रकाश द्वितीय संस्करण
३३. सत्यासत्य-विवेक (स्काट के साथ शास्त्रार्थ)
३४. वेदांग प्रकाशः—

१. वर्णोच्चारण शिक्षा
२. संधि विषय
३. नामिक
४. आख्यातिक
५. पारिभाषिक
६. सौवर
७. उणादि कोष
८. निघण्टु
९. अव्ययार्थ

३५. निरुक्त [निरुक्त ब्राह्मण आदि के प्रसिद्ध शब्दों की सूची]
३५, पाणिनि के ग्रन्थः—

१. अष्टाध्यायी
२. धातुपाठ गण
३. उणादि गण
४. शिक्षा
५. प्रातिपदिक गण

३७. आलंकारिक कथाः—

[१. प्रजापति और उसकी दुहिता, २. गौतम और अहल्या, ३. इन्द्र और वृत्रासुर : ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन, प्रथम भाग, पृ० ७२-७६]

विशेष:—"ऋषि दयानन्द के हस्तलेखों की जो सामग्री परोपकारिणी-सभा के संग्रह में इस समय तक सुरक्षित है, उसमें अभी भी बहुत सी सामग्री वा पुस्तकें ऐसी हैं, जिनका प्रकाशन अभी तक सम्भव नहीं हो सका। हमारा तो मन्तव्य है कि न केवल ऋषि के बनाये या बनवाये ग्रन्थ वा अन्य अप्रकाशित सामग्री (सूचियां आदि) ही छपनी चाहियें, अपितु जिन मुद्रित ग्रन्थों का उपयोग ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों के लेखन में किया था, उनके मार्जन-स्थान (=हाशिये) पर कहीं-कहीं उनके हाथ के संकेत वा शुद्धिकरण किया गया है, उनका भी संकलन प्रकाशित करना चाहिये" अतः आवश्यक है कि इस प्रकार के कार्य को परोपकारिणी सभा के सदस्य विशेष महत्त्व दें, अन्यथा "वह सामग्री जो प्रकाश में आनी चाहिये, कुछ समय पश्चात् काल के महागर्त में विलीन हो जायेगी"।

—युधिष्ठिर मीमांसक

द्रष्टव्य:—

१. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन (द्वितीय भाग)—पृ० १३-१८
२. दयानन्दीय लघु संग्रह पृ० ३-६०
३. इन्द्र विद्यावाचस्पति: आर्यसमाज का इतिहास (प्रथम भाग)—पृ० ३३३

टि० सं० पृष्ठ पं०

५१ ५६ २३ **[नियतकालिक] पत्र** ।

क:—**आर्य** (अंग्रेजी)—द आर्य मेगजीन [The Arya Magazine] इस पत्र के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए टिप्पणी संख्या २२ देखें।

ख:—**भारत सुदशा प्रवर्त्तक**– यह आर्यसमाज फर्रुखाबाद का मुखपत्र था। आर्यसमाज फर्रुखाबाद की स्थापना २२ जुलाई १८७६ को हो चुकी थी। पत्र का प्रकाशन भी जुलाई १८७६ में ही आरम्भ हुआ। पहले इस पत्र का नाम 'भारत दुर्दशा प्रमर्दक' था स्वामी दयानन्द जी ने इस नाम को बदलकर 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक' रखा'। "स्वामी जी महाराज ने कहा कि आरम्भ में जो पत्र का नाम 'भारत दुर्दशा प्रमर्दक' रखा है। उसमें यह दोष है कि यदि कोई आधा नाम ले तो 'भारत दुर्दशा' इतना कथन कटूक्त होगा, इस कारण 'भारत सुदशा प्रवर्त्तक', कहना चाहिये।" पत्र के प्रारम्भिक दस अंकों का संपादन, महाराष्ट्रीय विद्वान् पं० गोपाल हरि प्रणतांकर ने किया था। बाद में पं० गणेश प्रसाद शर्मा संपादक बन गये,...पत्र का आकार १०×१६ था...वार्षिक मूल्य २ रु० रक्खा गया।...जुलाई १८८१ के अंक में मैनपुरी, एटा, दातागंज, पेशावर और अजमेर में आर्यसमाजों के स्थापित होने की सूचना है,...दिसंबर १८८१ के अंक में स्वामी दयानन्द के अजमेर आगमन और उनकी इस यात्रा में एक व्यक्ति द्वारा असफल बाधक बनने का रोचक वृत्तांत भी छपा है।...स्वामी दयानन्द जी के जयपुर प्रवास का विवरण जून तथा उदयपुर प्रवास का

विवरण दिसंबर १८८२ के अंक में दिया है··· जुलाई ८३ के अंक में स्वामी दयानंद का संपादक के नाम वह पत्र छपा है जिसमें श्री ए० ओ० ह्यूम के वेदविषयक विचारों की आलोचना की गई है। ह्यूम ने एक स्थान पर लिखा था कि यदि स्वामीजी अपने वेदभाष्य को ईश्वर प्रेषित घोषित कर दे तो उनके वेद व्याख्यान को निर्भ्रान्ति माना जा सकता है। इसके उत्तर में स्वामी दयानंदजी ने लिखा —मैं ईश्वर नहीं किन्तु ईश्वर का उपासक हूँ। वेद मनुष्यों के हितार्थ परमात्मा ने प्रकाशित किये हैं, इसलिये यावत् मेरी बुद्धि और विद्या है तावत् निष्पक्षपात होकर वेदों का अर्थ प्रकाशित करता हूं।" अक्टूबर १८८३ के अंक में स्वामी जी की रुग्णावस्था तथा अंततः उनके निधन का समाचार प्रकाशित हुआ है। सुदशा प्रवर्तक के अंकों में साहित्य समालोचना का स्तंभ भी रहता था। इसके अंतर्गत भारतेन्दु हरिश्चंद्र,···सुधारवादी उदार विचारधारा के अनुयायी राधाकृष्ण गोस्वामी की पुस्तकों की समालोचनायें प्रकाशित हुई हैं। इसी प्रकार 'साहित्य समीक्षा' के अंतर्गत पं० लेखराम द्वारा संपादित 'धर्मोपदेश', राधाचरण गोस्वामी द्वारा संपादित 'भारतेंदु' बद्रीनारायण चौधरी प्रेमधन द्वारा संपादित 'आनंद कादंबिनी' तथा प्रतापनारायण मिश्र द्वारा संपादित ब्राह्मण-पत्र का परिचय दिया गया है। ···भारतसुदशा प्रवर्त्तक का फाइलें आर्यसमाज के इतिहास की जानकारी की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। अप्रेल १९१५ के बाद यह गौरवशाली पत्र बंद हो गया। ···३६ वर्ष तक निरंतर प्रकाशित होने के बाद भारत सुदशा प्रवर्त्तक का तिरोधान हुआ'।

अजमेर हितैषी (देश हितैषी)—'स्वामी दयानंद जी के जीवनकाल में ही आर्यसमाज अजमेर से एक मासिक पत्र-'देश हितैषी' निकलने लगा था। पत्र का प्रथम अंक १८८२ में प्रकाशित हुआ। इसके मुखपत्र पर लिखा होता था—'देश हितैषी=अर्थात् एक मासिक जो प्रतिमास की पहली तारीख को बाबू मुन्नालाल के प्रबंध से आर्यसमाज की आज्ञानुसार प्रकाशित होता है जिसमें वेदादि सत्य शास्त्रानुकूल सनातन धर्मोपदेश, देशोन्नतिकारक व्याख्यान, और विविध समाचार तथा प्रेरित पत्रादि निष्पक्षतायुक्त सरल भाषा में मुद्रित होते हैं"। यह धर्म संबंधी पत्र लीथो पर छपता था। वार्षिक मूल्य २ रु० था। आकार रायल अष्ट-पत्री २२ पृष्ठ था"। पहले····"इस पत्र का नाम 'शुभ-चिंतक' रखने का विचार था परंतु कतिपय हितैषी मित्रों के सुझाव के अनुसार पत्र का नाम देश हितैषी रख गया"। लोकहितवादी जी ने देशहितैषी पत्र को अजमेर हितैषी के नाम से संबोधित किया है। अजमेर से प्रकाशित होने के कारण "अजमेर, और पत्र नामों को आधे अधूरे ढंग से संबोधित करने के कारण देश हितैषी का हितैषी शेष रह गया है व इस प्रकार अजमेर व हितैषी मिलकर [देश हितैषी के स्थान पर] अजमेर हितैषी हो गया है। ····"देशहितैषी के प्रथमांक में आर्यसमाज बंबई के उत्सव का समाचार प्रकाशित हुआ था। यह उत्सव २० मार्च ८८२ को संपन्न हुआ था तथा स्वयं स्वामीजी इसमें उपस्थित थे। १५ जनवरी १८८२ को मथुरा नगर में आर्यसमाज की स्थापना का समाचार भी छपा है। ···ज्येष्ठ १९३९ के अंक में मसूदा (राजस्थान) में स्वामी दयानन्द के निवास तथा यहां जैन सिद्धकरण से हुये उनके शास्त्रार्थ का विवरण विस्तारपूर्वक प्रकाशित किया गया है स्वामी जी के शिष्य स्वामी आत्मानंद जी सरस्वती के उद्योग से ११ मार्च १८८२ को विलासपुर (मध्यप्रदेश) में आर्यसमाज के स्थापित होने का समाचार भी महत्त्वपूर्ण है। ···तत्कालीन

वायसराय को प्रेस एक्ट वापस लेने पर धन्यवाद अर्पित करते हुये 'लार्डरिपन की जय' शीर्षक लेख में यह प्रार्थना की गई है कि गोवध बंद किया जाये। ...लाहौर से प्रकाशित 'मित्रविलास' आर्यसमाज तथा स्वामी दयानंद का विरोधी था''। देशहितैषी ने मित्रविलास में छपे एकांगी समाचारों की समीक्षा 'एक स्वतंत्र जीव' के नाम से छापी है। ''तथा मित्र विलास को कृकल (गिरगिट) नीति त्यागने का उपदेश दिया है। भाद्रपद १९३९ के अंक में भारतेंदु हरिश्चंद्र के मित्र व समकालीन, हिंदी के प्रसिद्ध लेखक पं० राधाचरण गोस्वामी का 'स्वामी दयानंद और आर्यसमाज'शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है।......देशहितैषी में स्वदेशी और विदेशी समाचारों का संग्रह भी रहता था। आश्विन १९३९ के अंक में जापान में बाल विवाह पर प्रतिबंध तथा इटली के सिद्ध देशभक्त गैरी बाल्डी के मृत शरीर का दाह संस्कार करने पर हर्ष व्यक्त किया गया है। ...पं० प्रतापनारायण मिश्र की 'देशदशा' शीर्षक कविता का दूसरा भाग इस अंक में छपा है कसौली, शिमला, और जयपुर आदि स्थानों में आर्यसमाज स्थापना का उल्लेख समाचारों के अंतर्गत हुआ है। समालोचना स्तंभ के अंतर्गत लाहौर आर्यसमाज के सभासद् लाला साईंदास की 'एक आर्य' पुस्तक की चर्चा है। इसमें कलकत्ता के विश्वविद्यालय के सिनेट हाल में स्वामी दयानंद के विरोध में आयोजित पौराणिक पंडितों की 'आर्य सन्मार्गदर्शिनी सभा' की कार्यवाही की आलोचना की गई है। यह पुस्तक ऐतिहासिक महत्त्व की है। ...पौष १९३९ के अंक में स्वामी दयानंद के शिष्य स्वामी आत्मानंद जी की प्रचार-यात्राओं का विवरण छपा है''। [देशहितैषी (मासिक पत्र खंड-१ अंक १० माघ संवत् १९४० वि०) में परोपकारिणी सभा की कायवाही भी छपी है जिसमें श्रीयुत राव बहादुर गोपालराव हरि देशमुख जी ने समुपस्थित आर्यों को स्वामी दयानंद जी के सिद्धांत सुनाये हैं व तदनुसार आचरण करने की अपील है। (द्रष्टव्य-दयानंदीय लघुग्रंथ संग्रह–संपादक युधिष्ठिर मीमांसक-पृ० ८४-८५] ''देशहितैषी को राजस्थान से प्रकाशित होनेवाले आर्यसमाज के प्रथम-पत्र होने का गौरव प्राप्त है''।

[स्वामी दयानंद के समकालीन अन्य नियत कालिक आर्य पत्र निम्न प्रकार हैं:—**'आर्यदर्पण'** शाहजहाँपुर (सन् १८७८-१९०६), **आर्य-समाचार**-मेरठ (१८७८ ई०), **धर्मोपदेशक**-पेशावर (१८८०-१८८३), **रीजेनेरेटर आंफ आर्यावर्त्त**-लाहौर (१८८२), **आर्यभूषण**-शाहजहाँपुर (१८७६), अजाब [अनजान] (१८७७) आदि।

—द्रष्टव्यः डा० भवानीलाल भारतीय-आर्यसमाज के पत्र और पत्रकारी(परोपकार विशेषांक) पृ० १९-३७, १२४, १३१-१३५।

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित और प्रसारित ग्रन्थ

संशोधित सूची-पत्र (१ जनवरी १९८२ से)

१. यजुर्वेदभाष्य-विवरण (प्रथम भाग) अप्राप्य— यजुर्वेदभाष्य-विवरण (द्वितीयभाग) — २५-००
२. ऋग्वेदभाष्य — भाग — १ ३५-०० भाग २ — ३०-०० भाग ३ — ३५-००
३. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पर किए गए आक्षेपों के उत्तर २-५०
४. अथर्ववेदभाष्य — पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय काण्ड १४-१७ २४-०० काण्ड १८, १९ — २०-००; काण्ड २० — २०-००
५. माध्यन्दिनपदपाठः — (यजुर्वेद पदपाठ) २५-००
६. गोपथ ब्राह्मण (मूल) ४०-००
७. ऋग्वेदानुक्रमणी वेङ्कटमाधव कृत — व्याख्याकार पं० विजयपाल जी। २०-००, राजसं० ३०-००
८. दर्शपौर्णमास-पद्धति — पं० भीमसेन। २५-००, विना जिल्द २०-००।
९. वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा — यु० मी० ३०-००
१०. ऋग्वेद की ऋक्संख्या — ,, २-००
११. वेद-संज्ञा-मीमांसा — ,, १-००
१२. वैदिक-छन्दोमीमांसा — ,, १५-००
१३. वेदों का महत्त्व, वेदार्थ-मीमांसा — ,, ५-००
१४. देवापि और शन्तनु के वैदिक आख्यान का स्वरूप — श्री पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु १-००
१५. निरुक्तकार और वेद में इतिहास — ,, १-००
१६. त्वाष्ट्री-सरण्यू आख्यान का वास्तविक स्वरूप — पं० धर्मदेव निरुक्ताचार्य १-००
१७. वेद में आर्य-दास युद्ध सम्बन्धी पाश्चात्य मत का खण्डन — श्री वैद्य रामगोपाल शास्त्री १-००
१८. यजुर्वेद का स्वाध्याय तथा पशुयज्ञ समीक्षा — सजिल्द १६-००, बढ़िया जिल्द २०-००
१९. वैदिक-पीयूष-धारा — श्री देवेन्द्रकुमार कपूर। सजिल्द १०-००, बढ़िया जिल्द १५-००
२०. शिवशंकरीय लघुग्रन्थ पञ्चक — वसिष्ठ-नन्दिनी, चतुर्दश भुवन आदि ५-००
२१. संस्कार-विधि — ५-२५, बढ़िया सजिल्द ७-५० आर्य-समाज-शताब्दी संस्करण — विविध सूचियों सहित सजिल्द १२-००, राज-संस्करण १५-००
२२. वैदिक-नित्यकर्म-विधि — (व्याख्या सहित) युधिष्ठिर मीमांसक ३-००, सजिल्द ४-००
२३. वैदिक-नित्यकर्म-विधि — मूलमात्र ०-६०
२४. पञ्चमहायज्ञप्रदीप — मदनमोहन विद्या० ३-००
२५. हवनमन्त्र — (मूलमात्र) ०-३५
२६. सन्ध्योपासनविधि - (अर्थसहित) ०-३५
२७. सन्ध्योपासनविधि — अर्थ और दैनिक हवन-मन्त्र सहित — ०-५०
२८. वर्णोच्चारणशिक्षा — ऋषि दयानन्द ०-५०
२९. शिक्षासूत्राणि — आपिशल-पाणिनीय-चान्द्र २-५०
३०. शिक्षा-शास्त्रम् — जगदीशाचार्य ५-००
३१. अरबी शिक्षा-शास्त्रम् — ,, ५-००
३२. अष्टाध्यायीसूत्रपाठः — शुद्ध पाठ ३-०
३३. अष्टाध्यायी परिशिष्ट — ५-००
३४. धातुपाठ - धातु सूची सहित ३-००
३५. अष्टाध्यायी-भाष्य - प्रथम भाग — २४-०० द्वितीय भाग २०-००, तृतीय भाग २०-००
३६. महाभाष्य — यु०मी० कृत हिन्दीव्याख्या सहित प्रथम भाग ५०-००, द्वितीय भाग २५-०० तृतीय भाग २५-००
३७. संस्कृत पठनपाठन की अनुभूत सरलतम विधि प्रथम भाग ८-००, द्वितीय भाग १०-००
३८. उणादिकोष — ऋषि दयानन्द कृत व्याख्या सहित। शतशः टिप्पणियों और विविध परि-शिष्टों सहित अजिल्द ८-००, सजिल्द १२-००
३९. संस्कृत-धातु-कोष १०-००
४०. दैवम्-पुरुषकारवार्तिकोपेतम् — १०-००

४१. काशकृत्स्न-व्याकरणम् — ६-००
४२. काशकृत्स्न-धातु-व्याख्यानम्— १५-००
४३. वामनीय लिङ्गानुशासन—नया संस्करण ८-००
४४ लिट् और लुङ् लकार की रूप-बोधक सरलविधि— ३-००
४५. शब्दरूपावली—(विना रटे स्मरण योग्य) २ ००
४६. भागवृत्तिसंकलनम्—अष्टाध्यायी-वृत्ति ६-००
४७. ईशोपनिषद् व्याख्या—(हिन्दी अंग्रेजी) पं० रामगोपाल वैद्य १-५०
४८. केनोपनिषद् व्याख्या—(हिन्दी अंग्रेजी) पं० रामगोपाल वैद्य १-५०
४९. कठोपनिषद् व्याख्या—(हिन्दी अंग्रेजी) पं० रामगोपाल वैद्य ३-२५
५०. ध्यानयोगप्रकाश—स्वामी लक्षमणानन्द १०-००
५१. अनासक्ति-योग—मोक्ष की पगदण्डी—१५-००
५२. आर्याभिविनय—ऋ० द० सजिल्द ४-००
५३. Aryabhivinaya English Translation and notes स्वामी भूमानन्द सजिल्द ६-००
५४. विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रम् (सत्यभाष्य-सहितम्) ४ भाग। प्रति भाग १२-५०, सैट ५०-००
५५. वैदिक-ईश्वरोपासना—ऋ० द० १-००
५६. श्रीमद्भगवद्-गीता-भाष्यम्—श्री पं० तुलसी राम स्वामी कृत। चिरकाल से अप्राप्य। गीता की सरल सुबोध व्याख्या। ६-००
५७ अगम्य पन्थ के यात्री को आत्मदर्शन—३ ००
५८. मानवता की ओर—श्री शान्तिस्वरूप कपूर ४-००
५९ वाल्मीकि-रामायण (हिन्दी अनुवाद सहित)— युद्ध काण्ड मात्र १०-५०
६० सत्याग्रहनीतिकाव्य—भाषानुवादसहित ५-००
६१ संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास—नया संस्करण तीन भाग। पूरा सैट ७५-००
६२. संस्कृत व्याकरण में गणपाठ की परम्परा और आचार्य पाणिनि— १२-००
६३. विरजानन्द-चरित्र—भीमसेन शास्त्री। नया परिवर्धित परि संस्करण ३-००
६४. ऋषि दयानन्द सरस्वती का स्वलिखित और स्वकथित आत्म-चरित— १-००
६५. ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की संस्कृत साहित्य को देन— सजिल्द १२-००
६६. मीमांसा-शाबरभाष्य व्याख्या—युधिष्ठिर मीमांसक कृत। प्रथम भाग ४०-००, द्वितीय भाग ३०-००, राज सं० ४०-०० तृतीय भाग ५०-००। चौथा भाग यन्त्रस्थ।
६७. परमाणुदर्शनम्— ५-००, सजिल्द ६-००
६८. षट्कर्मशास्त्रम्— ८-००, सजिल्द ९-००
६९. नाड़ी-तत्त्व-दर्शनम्—(हिन्दी सहित) २०-००
७०. सत्यार्थप्रकाश—आर्यसमाज-शताब्दी संस्क०— बड़ा २४-०० (राज-संस्करण) ३०-००
७१. व्यवहारभानु—ऋषि दयानन्द १-००
७२. आर्योद्देश्यरत्नमाला—,, ,, ०-५०
७३. दयानन्दीय लघुग्रन्थ संग्रह—१४ ग्रन्थ २५-००
७४. ऋ० द० के पत्र और विज्ञापन—नया परिवर्धित सं०। प्रथम भाग ३५-००, द्वितीय भाग ३०-००; तीसरा भाग छप रहा है।
७५. ऋषि दयानन्द और आर्य समाज से संबद्ध महत्त्वपूर्ण अभिलेख— ८-००
७६. अष्टोत्तरशतनाममालिका—व्याख्यासहित ६-००
७७. प्यारा ऋषि—श्री आनन्द स्वामी १-००
७८. आर्य-मन्तव्य-प्रकाश—श्री पं० आर्यमुनि जी प्रथम भाग ५-००, द्वितीय भाग ५-००
७९. Vegetarianism Vs : Meat-Eating ०-५०
८०. अमीरसुधा—भक्त अमीचन्द १-००

पुस्तक-प्राप्तिस्थान—१. रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, जिला—सोनीपत (हरयाणा)

२. रामलाल कपूर एण्ड संस पेपर मर्चेन्ट्स—

गुरु बाजार, अमृतसर ❀ ५१ सुतारचाल, बम्बई ❀ नई सड़क, देहली ❀ बिरहाना रोड़, कानपुर

३. रामलाल कपूर एण्ड कम्पनी, बारी मार्केट, सदर बाजार, देहली।

४. ठा० शंकरसिंह आर्य, वैदिक साहित्य भण्डार, द्वारका पुरी चाल में, इन्दौर।

५. श्री हरिकिशन मलिक जज, सी ४, सी० सी० कालोनी, दिल्ली।